ऋत् धर्म देशना"
भाग-7

**फेसबुक के" आर्यमित्र "नामक पेज के लिए सम्यक शास्ता ,परम आर्यवर ,आप्त पुरुष ,
सद्गुरु श्री जगदीश्वरम् जी महाराज द्वारा वर्ष 2024 के दौरान लिखी गई सम्यक धर्म सम्बन्धी देशनाओं का संकलन**

इन देशनाओं के लेखक परम पूज्य सदगुरुदेव

19 May 2024

बाहर से आँख बंद रखते हुए नाक के दो छिद्रों के ठीक मध्य < मूँछों के ऊपर वाले भाग में भली-भाँति संतुलन-पूर्वक अविचल स्थिर हो आसन < दृष्टि का आसन लगा के बैठे रहना है,
बिल्कुल भी हिलना-डुलना नही है,
यही आरंभिक ध्यान के लिए सर्वाधिक संवेदनशील बिन्दु है,
बाहर से आँख बंद करके भीतर से इस बिन्दु पर भली-भाँति स्थिरता-पूर्वक सीधे हो आसन लगाने पर सीधे ही directly भीतर ही भीतर श्वास-प्रश्वास पर दृष्टि बनी रहती है,
एक क्षण भी दृष्टि भंग नही होती,
ध्यान रहे ऐसी स्थिति में ही अंततः दृष्टि का पूर्णतः सिमटाव होता है,
जब दृष्टि का पूर्ण सिमटाव होता है
तभी दृष्टि & दृष्टा से अनिमित्त आदि-अंत से रहित ^ अंतरालरहित दर्शनमात्र में स्थिति होती है,
दर्शनमात्र की स्थिति में ही तथ्यतः यथार्थ स्पष्टता है,
दर्शनमात्र में उपस्थिति भर का निमित्त पूरा होने पर ही यथार्थतः पूर्ण सत्यता स्पष्ट है उससे पहले नही,
यहाँ दर्शनमात्र का तात्पर्य विशुद्धतः बस केवल दिखने भर से है,
जब केवल बस दिखना भर होता है तब संस्कारगत् < कोई भी संबंधित आरोप नही हो पाता है,
इसलिए जब केवल बस दिखना भर होता है तभी बिना किसी भ्रान्ति के जैसा है ठीक वैसा ही परिस्पष्ट होता है,
दृष्टा होने में अर्थात् देखने में ही संस्कारगत् आरोप होता है,
दृष्टा होने को, साक्षी होने को अध्यारोपित धर्म-शास्त्रों में स्वभावगत् माना गया है,
पर दर्शनमात्र के निमित्त होते ही यह भ्रान्ति भंग हो जाती है,
ध्यान रहे दृष्टा होने पर ही, साक्षी होने पर ही संस्कार ग्रहण होता है, चैतसिक वृत्ति ग्रहण होती है, मनोविज्ञान ग्रहण होता है,
दर्शनमात्र में संस्कार ग्रहण नही होता,
संस्कार ग्रहण नही होने से स्वभाव की भ्रान्ति नही होती,
अतः दृष्टा होने से, साक्षी होने से अनिमित्त दर्शनमात्र के निमित्त यथा सहज-यथा सजग होना आवश्यक है,
जब आत्म-अनात्म, द्वैत-अद्वैत आदि कोई भी आरोप किए बिना सीधे ही दर्शनमात्र के निमित्त अर्थात् विशुद्धतः बस केवल दिखने भर के निमित्त समर्पण परिपूर्ण होता है तभी दर्शनमात्र के निमित्त उपस्थित भर होना हो पाता है,
दर्शनमात्र की स्थिति सर्वोत्कृष्ट है,
दर्शनमात्र पवित्रतम-विशुद्धतम स्थिति है,
दर्शनमात्र पूर्णतः निर्दोष-निष्पाप स्थिति है,
दर्शनमात्र की स्थिति किसी भी दृष्टि-दृष्टिकोण में सीमित नही है, आबद्ध नही है,
हर दृष्टि-दृष्टिकोण से परे तथा पवित्र है, दर्शनमात्र में न आरंभ है, न अंत,
न क्रिया है, न प्रतिक्रिया, न आरोप है,
न प्रत्यारोप, न मिलना है, न मिलाना है, (दर्शनमात्र किसी भी दृष्टिकोण से, किसी भी अर्थ में शामिल होने से, साझा होने से, शरीक होने से पाक है),
लोकदृष्टि में मोहित साधारण जनों की दृष्टा-भाव से अनिमित्त दर्शनमात्र में यथास्थिति संभव नही है,
कर्ता-भाव से अनपेक्ष ^ अनिमित्त बस उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका स्पष्ट होने पर ही कर्म-फल के बंधन से मुक्ति है उससे पहले कदापि नही,
साधारण जन कर्ता-भोक्ता के तल पर ही गिरे रहते हैं,
साक्षी-भाव ही कर्ता-भोक्ता का स्वभावगत् आधार है, इसलिए साक्षी-भाव से गिरना स्वाभाविक है,
दर्शनमात्र से गिरना असंभव है,
यद्यपि व्यवहारतः भोक्ता-भाव से साक्षी-भाव श्रेष्ठ है,
अध्यारोपित धर्म-शास्त्रों के सम्मोहन में पड़े हुए साधारण जनों के लिए भोक्ता-भाव से उठने के लिए सीधे दर्शनमात्र के निमित्तमात्र होना असंभव है,
उन्हें भोक्ता-भाव से उठने के लिए साक्षी-भाव की भावनीय भावना का अवलंबन लेना पड़ता है,
और तभी फिर साक्षी-भाव से अनिमित्त हो दर्शनमात्र के निमित्तमात्र होना पड़ता है, ध्यान रहे अंतरालरहित होने से दर्शनमात्र में सापेक्षिक स्थिति संभव नही है,
अनपेक्षतः उपस्थितिमात्र की भूमिका ही सहज सिद्ध है.........
जितना हो सके कम से कम स्थान-समय

अंतराल में संभलकर उपस्थित होने का अभ्यास जारी रखना है,
स्थूल श्वास के समय से लेकर उत्तरोत्तर यथा सहज सूक्ष्म होती श्वास के समय तक निरंतर भली-भाँति संभलकर उपस्थित होने का अभ्यास जारी रखना है,
स्थूल श्वास के समय से लेकर सूक्ष्मतः आंतरिक चित्त के समय तक उत्तरोत्तर सूक्ष्मतर होते क्रम में निरंतर भली-भाँति संतुलन-पूर्वक संभलते हुए उपस्थित रहने का अभ्यास जारी रखना है,
जितना ही कम से कम स्थान-समय अंतराल में उत्तरोत्तर निरंतर भली-भाँति संभलना पूरा होता जाता है भली-भाँति संभलकर उपस्थिति पूर्ण होती जाती है,
उत्तरोत्तर उतनी ही अधिक से अधिक आंतरिक स्फूर्ति बढ़ती जाती है,
उत्तरोत्तर उतनी ही अधिक से अधिक आंतरिक गति पर नियंत्रण होता जाता है, उत्तरोत्तर उतनी ही अधिक से अधिक मूर्छा भंग होती जाती है,
उत्तरोत्तर उतना ही अधिक से अधिक होश बढ़ता जाता है,
आंतरिक तरो-ताजगी बढ़ती जाती है, आंतरिक स्वस्थता बढ़ती जाती है,
इतनी अधिक सक्षमता & सामर्थ्य बढ़ जाती है कि भौतिक वैज्ञानिक जिसकी कल्पना भी नही कर सकते,
_आरंभिक अभ्यासी को यथा सहज श्वास की प्रकृति के अनुसार चलने का नैमित्तिक मापदंड पूरा करना आवश्यक है,
_श्वास के आने-जाने के ठीक समय में उपस्थित होने की ईमानदारी पूरी हो यह आवश्यक है,
कम से कम एक घंटा सुबह के समय तथा एक घंटा शाम के समय श्वास के साथ अवश्य बिताना चाहिए,
इतने भर से ही जीवन में प्राथमिक स्तर पर शारीरिक तथा मानसिक संतुलन स्थापित हो जाएगा,
पर इतने भर से दर्शनमात्र में स्थिति संभव नही है,
ध्यान रहे दर्शनमात्र में ही तथ्यतः यथार्थ सत्यता स्पष्टता है अपेक्षित दृष्टिकोण में नही,
जब श्वास-प्रश्वास के मध्य के समय से भी कम समय में उपस्थित हो जाने की सक्षमता हो जाती है,
तभी श्वास-प्रश्वास पर (श्वास-प्रश्वास संबंधित दबाव पर) नियंत्रण हो जाता है,
जब भी श्वास-प्रश्वास के मध्य के समय से कम समय पर उपस्थिति पूरी होती है
तभी श्वास से भी सीधे जो तथ्य है वह स्पष्ट हो जाता है,
जहाँ ठीक सामने सीधे ही दृष्टि के लिए उस तथ्य का अवलंबन ग्रहण होता है,
जितना ही सीधे से सीधे हो भली-भाँति संतुलन-पूर्वक संभलना पूरा होता है
उतना ही और कम समय पर (और निकट वर्तमान में) उपस्थित होना हो पाता है,
इस सनातन नियम के अनुसार
श्वास-प्रश्वास के समय पर ही नही बल्कि सेकेंड के सौवें भाग के समय पर भी
उपस्थिति संभव है,
सेकेंड के सौवें भाग पर ही नही बल्कि सेकेंड के हजारवें भाग पर, इससे भी आगे लाखवें भाग पर ही नही बल्कि सेकेंड के खरब-खरब-खरब भाग से भी कम समय अंतराल में उपस्थिति संभव है,
इस सनातन नियम के अनुसार
भौतिक-पदार्थ के सूक्ष्मतम भाग के समय पर ही नही बल्कि अभौतिक चेतना के अभौतिक समय पर (चेतना के बीतने-उत्पन्न होने के अभौतिक समय पर) भी उपस्थिति संभव है,
अभौतिक समय की भौतिक-वैज्ञानिक कभी कल्पना भी नही कर सकते,
उत्तरोत्तर सम्यग् अभ्यास के निमित्त अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत स्थिति का अनुत्तर लाभ संभव है,
जहाँ सामान्यतया लोकदृष्टि < लोकाचार में प्रतिष्ठित सुपर मैन, सुपर गाॅड super god आदि की कल्पना भी पूरी तरह से फीकी पड़ जाती है,
>> उत्तरोत्तर कम से कम समय अंतराल पर (निकट से निकट वर्तमान में) उपस्थिति का निमित्त पूरा होने पर ही अंततः अंतरालरहित दर्शनमात्र > (ज्ञानमात्र) के निमित्त संभलना पूरा हो पाता है,
सबसे कम समय में (सबसे निकट वर्तमान में) संभलकर जहाँ फिर निमित्तमात्र उपस्थिति भर की भूमिका ही सहज सिद्ध है,
जो पूर्णतः पूर्ण सिद्धता है....
यद्यपि चेतना भौतिक समय से परे है,
पर अभौतिक समय से परे नही है,
अभौतिक समय (अंतः सूक्ष्म समय) पर उसकी स्थिति है,
अंतः सूक्ष्म समय पर चेतना अनित्य,अस्थिर,
वीतधर्मी है,
चेतना (विज्ञान) का बीतना तथा उत्पन्न होना इतने अत्यधिक कम समय पर होता है,

चेतना के बीतने तथा उत्पन्न होने की गति इतनी अत्यधिक होती है कि वह अल्पज्ञ साधारण जनों की बुद्धि की पकड़ में नही आ पाती,
वह अल्पज्ञ साधारण जनों की दृष्टि में > (बुद्धि में) स्थिर प्रतीत होती है,
जिससे साधारण जनों में तादात्म्यतावश चेतना consciousness के परिप्रेक्ष्य आत्म-भाव स्थापित होता है,
यह दिग्भ्रम ही सम्यग् यथार्थ स्पष्टता में बहुत बड़ी बाधा है,
_तादात्म्यतावश ही अज्ञानी जन चेतना को नित्य, स्थिर तथा आत्म स्वरूप कहते हैं,
पर ध्यान रहे चेतना भी अनित्य है, अस्थिर है, अनात्म है,
दृष्टा से अनिमित्त दर्शनमात्र के निमित्तमात्र ही आत्म की < (आत्मा की) सम्यग् यथार्थ सत्यता स्पष्ट है,
लोकदृष्टि < लोकाचार में प्रचलित धर्म-शास्त्रों के अध्यारोपित अपेक्षित दृष्टिकोण में तादात्म्यतावश जिसे भी नित्य, स्थिर आत्मा कहा जाता है,
दर्शनमात्र में वह भी अनात्म ही सिद्ध है,
ध्यान रहे!
आत्म अपेक्षित दृष्टिकोण में आत्म संबंधित सत्यता स्पष्ट नही होती,
बल्कि आत्म संबंधित भ्रान्ति बनी ही रहती है, आत्मा के संबंध में भ्रान्ति बनी ही रहती है,
अपेक्षित दृष्टिकोण से अनपेक्ष, दृष्टा से अनिमित्त दर्शनमात्र में ही निभ्रान्ततः आत्म संबंधित < (आत्मा संबंधित) यथा सत्यता स्पष्ट है......

21 May 2024(I)

यथार्थतः सत्य ही तुम्हारा इष्ट हो, अभीष्ट हो, आराध्य हो, उपास्य हो,
यथार्थतः सत्य में ही तुम्हारी निष्ठा हो, श्रद्धा हो, समर्पण हो,
यथार्थतः सत्य स्पष्टता के निमित्त ही तुम्हारी स्फूर्ति हो, गति हो|
_जो भी स्थापना में है, कृति में है, प्रकृति
में है उसकी उपासना से, भावना से
विरत हो यथार्थतः सत्य ओर ही मात्र उपासनारत् रहो,
द्वैत-अद्वैत इत्यादि अपेक्षाकृत दृष्टिकोण से
अनिमित्त हो बस दर्शनमात्र के निमित्त समर्पित रहो|
_जो असत्य की उपासना करते हैं,
जो अविद्या की उपासना करते हैं,
जो कृत्रिमता की उपासना करते हैं,
जो अज्ञानी मनुष्यों के~अपेक्षाकृत आरोपित दृष्टिकोण में घोषित हुए, स्थापित हुए, तराश कर गढ़े हुए झूठे ईश्वर, अवतार, देवी-देवताओं आदि की उपासना करते हैं वे अज्ञान-अंधकार में ही भटकते रह जाते हैं|
_उन्हीं का सही अर्थ में मंगल है, सही अर्थ में कल्याण है, सही अर्थ में उद्धार है जो किसी भी दृष्टिकोण विशेष के स्थापित होने से सावधान रहते हुए सम्यग् यथार्थतः निभ्रान्त स्पष्टता के निमित्त तथ्यतः दर्शनमात्र में यथा सहज-यथा सजग स्थिर हैं|
_दृष्टिकोण विशेष का स्थापित होना ही मूलतः बंधन है,
दृष्टिकोण स्थापित होने पर दिग्भ्रम होना स्वाभाविक है,

किसी भी दृष्टिकोण के स्थापित होने पर कदापि निभ्रान्त यथार्थ स्पष्टता संभव नही,
अपेक्षाकृत दबाव में ही किसी कोण विशेष से ^ (किसी कोण विशेष में देखने के लिए) दृष्टिकोण उत्पन्न होता है,
अपेक्षाकृत दबाव न हो तो दृष्टिकोण उत्पन्न होगा ही नही,
इसलिए किसी भी दृष्टिकोण में रहने पर 'यह सत्य है' की भ्रान्ति होना स्वाभाविक है,
अपेक्षाकृत दबाव में ही तुलनात्मक दृष्टि उत्पन्न होती है,
अपेक्षाकृत दबाव में ही अन्य अर्थ का अन्य अर्थ में आरोप होता है,
सारी मिलावट, सारी बेईमानी ही अपेक्षाकृत दबाव में गिरने पर है,
अपेक्षाकृत दबाव न हो तो कोई मिलावट नही, कोई अशुद्धि नही, कोई अपवित्रता नही,
किसी भी अन्य अर्थ को किसी भी अन्य अर्थ में मिलाने से, शामिल करने से, साझा करने से, शरीक करने से सावधान रहना, अन्यथा अर्थ का अनर्थ हो जाएगा,
तथ्य का तो कुछ नही बिगड़ेगा,
पर हाँ तुम ही अपनी दृष्टि में स्वसम्मोहनवश दिग्भ्रमित हो जाओगे, दुःखद बंधन में हो जाओगे,
तुम्हारी ही आंतरिक पवित्रता, आंतरिक शुद्धता दूषित हो जाएगी......
_द्वैत-अद्वैत आदि अपेक्षाकृत मतों को स्थापित करने वाले अध्यारोपित धर्मग्रन्थों से सावधान रहना,
अपनी तरफ से दृष्टि बनाने से सावधान रहना, बिना किसी दृष्टि के सीधे ही तथ्यतः दर्शनमात्र के निमित्त रहना,
जो जिस अर्थ में है उसे ठीक उसी अर्थ में रहने देना इस अर्थ में तुम अपनी ईमानदारी पूरी करना,
अपनी तरफ से बिना कुछ भी मिलाए जो जिस अर्थ में है उसे ठीक उसी अर्थ में दर्शनमात्र के निमित्त अर्थात् दिखने भर के निमित्त यथा सहज-यथा सजग स्थिर रहना विचलित नही होना......
तथ्य ने तुम्हें दिग्भ्रमित नही किया,
तुम अपने ही आरोप से स्वसम्मोहनवश दिग्भ्रमित हो......
_बीतने पर ही उत्पन्न होने के लिए दबाव बनता है,
हर बार पूर्व के बीतने पर दबाव में उसके बाद के उत्पन्न होने के लिए स्थान-समय का अंतराल स्थापित होता है,
स्थान-समय के अंतराल में ही किसी अन्य अर्थ की किसी अन्य अर्थ से तुलना संभव है,
अपेक्षाकृत होना संभव है......
दबावरहित पूर्ण सहजता में अंतराल स्थापित होने के लिए दबाव नही बनता है,
अपेक्षाकृत होने के लिए दबाव नही बनता है,
दृष्टिकोण स्थापित होने के लिए दबाव नही बनता है,
पूर्ण सहजता में ही पूर्ण पवित्रता है, पूर्ण शुद्धता है,
दबावरहित पूर्ण सहजता < ओर ही उत्तरोत्तर सहज होने का (उत्तरोत्तर सहज से और सहज होते रहने का) तुम्हारा लक्ष्य हो,
श्वास के प्रति यथा सहज रहो,
वेदना के प्रति यथा सहज रहो,
चित्त के प्रति यथा सहज रहो,
गुणधर्म के प्रति यथा सहज रहो,
उत्तरोत्तर सहज से सहज होते रहो,
पूर्ण सहजता में सहज ही पूर्ण स्थिरता है,
सहज ही पूर्ण शान्ति है.......

21 May 2024(II)

पूर्व सुनिश्चित दृष्टिकोण स्थापित होने से यथा सहज-यथा सजग सावधान रहो,
क्योंकि पूर्व सुनिश्चित दृष्टिकोण स्थापित होने पर कदापि यथार्थ सत्य स्पष्ट नही हो सकता,
पूर्व सुनिश्चित दृष्टिकोण स्थापित होने पर ही 'यह सत्य है' की भ्रान्ति होती है,
दर्शनमात्र की पूर्णतः स्पष्ट पारदर्शिता में कोई भी भ्रान्ति नही है, कोई भी दिग्भ्रम नही है, निभ्रान्त यथार्थता परिस्पष्ट है,
इसलिए दृष्टिकोण स्थापित होने से यथा सहज-यथा सजग सावधान हो दर्शनमात्र के निमित्त रहो,
दर्शनमात्र से इतर पूर्व निर्धारित दृष्टिकोण में आबद्ध आत्म-अनात्म, द्वैत-अद्वैत सभी मत 'यह सत्य है' की भ्रान्ति में ही उलझे हुए हैं,
ध्यान रहे आत्म-अनात्म, द्वैत-अद्वैत आदि कोई भी दृष्टिकोण पूर्णतः सत्य नही है,
इसलिए जो मत जिस दृष्टिकोण से < जिस अर्थ में है वह उसी दृष्टिकोण से < उसी अर्थ में ही अर्थसंगत < अर्थयुक्त है अन्य दृष्टिकोण से < अन्य अर्थ में नही,
अतः किसी अन्य मत का किसी अन्य मत से विरोध होना स्वाभाविक है,
किसी भी दृष्टिकोण की यथा-सत्यता उस दृष्टिकोण में रहते हुए कदापि स्पष्ट नही हो सकती,
दृष्टिकोण विशेष से अनिमित्त दर्शनमात्र के निमित्त ही हर दृष्टिकोण की यथा-सत्यता स्पष्ट है,
हर दृष्टिकोण की भावना का निमित्त पूरा होने पर ही तब अंततः सहज दर्शनमात्र के निमित्त स्थिति हो पाती है,
किसी भी दृष्टिकोण विशेष का अनावश्यक विरोध कर अपना अमूल्य समय तथा ऊर्जा व्यर्थ मत करो,
न समर्थन, न विरोध, बस दर्शनमात्र के निमित्त रहो,
जीवन की सबसे अधिक सार्थकता दर्शनमात्र अर्थात् बस केवल दिखने भर के निमित्त उपस्थित भर होने से है,
किसी भी कोण विशेष से देखने से यथा सहज-यथा सजग हो सावधान रहो,
सीधे ही दर्शनमात्र में ही (दिखने भर में ही) हर सापेक्षिक कोण की यथावत सत्यता स्पष्ट है,
क्योंकि दर्शनमात्र अपने-आप में सम्पूर्ण सापेक्षता का, सभी सापेक्षिक कोणों का केन्द्र है,
दर्शनमात्र में ही सभी कोणों के आर-पार की सत्यता स्पष्ट है,
जब सीधे केन्द्र से दर्शन होता है तभी एक ही समय में एक साथ सभी कोणों का दर्शन होता है,
जब एक ही समय में एक साथ सभी कोणों का दर्शन होता है,
तभी सभी कोणों का सापेक्षिक रहस्य स्पष्ट होता है,
यद्यपि कोणों की भी भ्रान्ति ही है,
दर्शनमात्र में ही इस भ्रान्ति की सच्चाई स्पष्ट होती है दृष्टा रहते हुए नही,
यथार्थतः स्पष्टता के निमित्त यथा सहज-यथा सजग हो स्थिरता पूरी होने की देर है अवश्य ही यथार्थता स्पष्ट है,
साधारण जनों की सीधे दर्शनमात्र के निमित्त स्थिति नही हो सकती है,
ध्यान रहे हर संदर्भ में सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों ही पहलू हैं,
इसका सम्यग् विवेक स्पष्ट होना आवश्यक है,
सम्यग् विवेक स्पष्ट होने पर ही तुम सम्यग् कल्याणार्थ किसी भी संदर्भ के नकारात्मक प्रभाव में गिरने से बच सकते हो,
इसलिए अगर दृष्टिकोण विशेष से सावधान होने के लिए कहा जाए तो इसे नकारात्मक अर्थ में नही लेना है,
उत्तरोत्तर सीधे से सीधे स्थिरता का निमित्त पूरा करना ही साधक का लक्ष्य है,
श्वास की सीध से लेकर, चित्त की सीध से लेकर, गुणधर्म की सीध से लेकर अंततः सीध रहित > अंतरालरहित ज्ञानमात्र ही साधक का नैमित्तिक लक्ष्य है,
पूर्व की स्थिरता भी भंग न हो उसी स्थिरता में और सीधे स्थिर होते हुए उत्तरोत्तर स्थिरता का निमित्त पूरा करते जाना है,
पूर्व का होश भी भंग न हो उसी होश में और होश में आते हुए उत्तरोत्तर और होश में आते जाना है,
मनमुखी, स्वेच्छाचारी, असंयमी, अनुशासनहीन, आचरणहीन, बेईमान व्यक्ति कितना ही सार्थक संदर्भ क्यों न हो उसको अकुशल < नकारात्मक अर्थ में ही ग्रहण करने के लिए विवश है,
इसलिए वह कहीं भी सीधे नही ठहरते हुए इधर-उधर भटकता ही रह जाता है,
किसी सीध में पूरा ठहरने पर ही उस सीध का निभ्रान्त स्पष्टीकरण होता है,
और तभी उससे भी सीधे जो सीध है वह स्पष्ट होती है,
ध्यान रहे दृष्टिकोण विशेष से सावधान रहने का उपदेश सम्यग् जिज्ञासुओं के लिए ही है लोकदृष्टि में मोहित < सम्मोहित साधारण जन इसके लिए तैयार नही है,
साधारण जन पूर्व निर्धारित दृष्टिकोण में आबद्ध होने के लिए पूरी तरह से विवश हैं,

साधारण जनों को विकास तथा संतुलन के निमित्त ठहरने के लिए किसी न किसी पूर्व निर्धारित दृष्टिकोण का अवलंबन चाहिए,
इसलिए उनके लिए शास्त्र विधि से चलने की
आज्ञा है,
साधना के परिप्रेक्ष्य में किसी भी दृष्टिकोण विशेष में पूर्णतः स्थिरता का निमित्त पूरा होते ही सहज ही उससे भी सीधे-सही जो दृष्टिकोण है स्पष्ट हो जाता है,
इस तरह उत्तरोत्तर सही से सही दृष्टिकोण स्पष्ट होता जाता है,
जब सभी दृष्टिकोणों की भावनीय भावना का निमित्त पूरा हो जाता है जब भावित होने के लिए कोई भी दृष्टिकोण शेष नही रह जाता तब सहज ही सीधे दर्शनमात्र के निमित्त स्थिति होती है,
साधारण जन पूर्व निर्धारित दृष्टिकोण में ही जीने के लिए विवश हैं,
इसलिए ज्ञानियों को भी अपने ज्ञान से पहले से ही दिग्भ्रमित साधारण जनों को और अधिक दिग्भ्रमित नही करना चाहिए,
उन्हें उनके स्तर पर शास्त्र विधि से निष्ठापूर्वक अनुशासनबद्ध हो चलने के लिए प्रेरित करना चाहिए,
क्योंकि शास्त्र विधि में स्वेच्छाचारी होकर न भटकते हुए कहीं न कहीं ठहरने के लिए अवलंबन उपस्थित है,
ध्यान रहे लोकदृष्टि में प्रतिष्ठित-प्रचलित कोई भी शास्त्र पूर्णतः शुद्ध नही है
उसमें विशुद्धतः ऋत् संगत भाग बहुत ही अल्प है, ऋत् असंगत भाग ही अधिक है,
इसलिए वेद-शास्त्रों में वर्णित क्या ऋत् संगत है, और क्या ऋत् असंगत है जिसे इसका भली-भाँति पूर्णतः सम्यग् विवेक स्पष्ट है, और जिसे निभ्रान्त सम्यग् यथार्थता स्पष्ट है उसका अनुशासन ग्रहण कर पूर्वाग्रह से रहित हो सविनय निवेदनपूर्वक उपदेश ग्रहण करे,
और सम्यग् कल्याणार्थ उसे अपने आचरण में उतारे .....

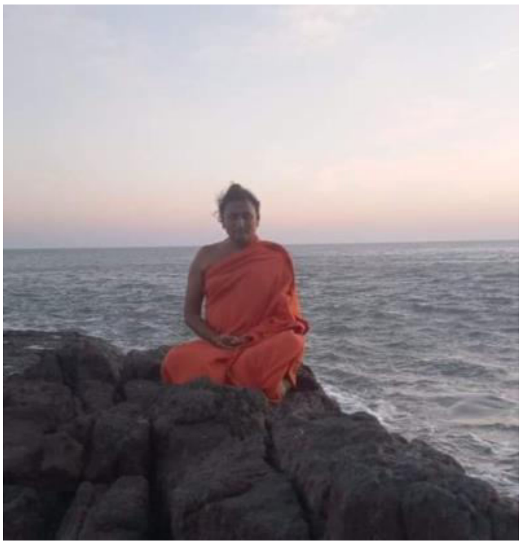

23 May 2024

लोकदृष्टि के अनुसार मनुष्य अपने शुद्ध स्वभाव में ईश्वरीय स्वभाव के अनुसार है,
इसलिए मनुष्य में जो कुछ भी सकारात्मक है उसकी परिपूर्णता में ही पूर्णतः < ईश्वर का व्यावहारिक परिचय है,
पर मनुष्य सकारात्मकता में कितना ही क्यों न बढ़ जाए फिर भी उसकी एक सीमा है,
एक सीमा के बाद गिरना अवश्य होता है,
इसलिए अपेक्षाकृत दृष्टिकोण के वशीभूत मनुष्य कभी भी पूर्णतः परिपूर्ण नही हो पाता,
पुरुषविशेष (ईश्वर) कहने की अपेक्षा अपौरुषेय कहना सार्थक < संकेतप्रद है,
कर्ताविशेष की अपेक्षित भूमिका की उपस्थितिमात्र की पूर्णतः आधारीय भूमिका से कदापि तुलना नही हो सकती,
फिर भी अपेक्षित दृष्टिकोण के वशीभूत साधारण जनों के लिए निरीश्वरवादी होने की अपेक्षा सम्यग् ईश्वर की भावना अधिक श्रेयस्कर है..........
_अपौरुषेय उपस्थितिमात्र की भूमिका के अनुसार ही दर्शनमात्र के निमित्त उपस्थिति भर की भूमिका है,
अपौरुषेय उपस्थितिमात्र की भूमिका दर्शनमात्र पर निर्भर नही है,

परंतु तुम्हारी उपस्थित भर होने की भूमिका दर्शनमात्र पर निर्भर है,
तुम दर्शनमात्र के मोहताज हो,
तुम दर्शनमात्र के बिना कुछ भी नही हो,
इसलिए दर्शनमात्र से इतर कर्ता-भाव के दबाव में तुम्हारी अहंकार संबंधित सभी घोषणाएँ व्यर्थ हैं,
दर्शनमात्र से इतर कर्ता-भाव के दबाव में आकर ही अज्ञ-मनुष्यों ने अपने लिए कृत्रिम (झूठे) ईश्वरों को गढ़ लिया,
दर्शनमात्र से इतर कर्ता-भाव के दबाव में गिरकर ही मनुष्य कर्म-फल के बंधन में दुःख तथा शोक को प्राप्त है,
कौन उपस्थित है, किसकी उपस्थिति है,
यह पूछते ही कोई अल्लाह, कोई ईश्वर, कोई ब्रह्म आदि कुछ भी कहेगा,
परंतु ये सारे उत्तर अपेक्षित दृष्टिकोण के अंतराल में ही सिद्ध हैं,
क्योंकि कौन उपस्थित है, किसकी उपस्थिति है यह प्रश्न ही अपेक्षित दृष्टिकोण में सिद्ध होता है (अपेक्षित दृष्टिकोण के अंतराल में सिद्ध होता है) बिना अपेक्षित दृष्टिकोण के सिद्ध नही होता,
उपस्थितिमात्र की सहज सिद्ध भूमिका अपेक्षित दृष्टिकोण में सिद्ध नही है,
उपस्थितिमात्र की सहज सिद्ध भूमिका अपेक्षित दृष्टिकोण में नही वरन सहज दर्शनमात्र में स्पष्ट है,
किसी दृष्टाविशेष अर्थात् किसी
पुरुषविशेष की उपस्थिति न कहकर अपौरुषेयतः बस उपस्थितिमात्र कहना ही संकेत अर्थ में उपयुक्त है,
अंतरालरहित उपस्थितिमात्र की भूमिका विशुद्धतम् है, पवित्रतम् है,
बस केवल उपस्थिति भर होने से ही कार्य-कारण की ऋत् अनुशासनबद्ध सनातन सुव्यवस्था चल रही है,
प्रतीत्य समुत्पाद के सिद्धांत में अपौरुषेय उपस्थितिमात्र की सदा-सनातन, नित्य-स्थिर भूमिका को अनित्यवादी, निरीश्वरवादी बौद्धों ने स्वीकार नही किया,
जिसके बिना निरीश्वरवादी बौद्धों का उक्त मत आधारहीन सिद्ध होता है, ऋत् असंगत सिद्ध होता है,
बीतने पर ही उत्पन्न होने के लिए दबाव बनता है, दबाव में ही जो उत्पन्न हो रहा है उसके लिए उसी अनुपात में उतना ही स्थान-समय का अंतराल भी स्थापित होता है जो बिना उपस्थितिमात्र की आधारीय भूमिका के सिद्ध नही है,
इसी सनातन नियम के अनुसार हर बार ही अपने से पूर्व कल्प के बीतने पर हर बार वर्तमान कल्प उत्पन्न होता है,
हर बार अपने से पूर्व कल्प के अनुसार ही हर वर्तमान कल्प में अंतरिक्ष, सूर्य, तारे, चंद्रमा, पृथ्वी आदि की स्थिति होती है,
इसमें अपौरुषेय की उपस्थितिमात्र की सदा-सनातन, नित्य-स्थिर आधारीय भूमिका है जिसमें पुरुषविशेष की भूमिका बस निमित्त-कारण की है,
जो कहते हैं पहली बार किसी कर्ताविशेष < पुरुषविशेष सृष्टिकर्ता ने सृष्टि की रचना की है उनका मत ऋत् असंगत है,
सृष्टि-रचना के कर्ताभाव के दबाव के बिना सृष्टिकर्ता का होना सिद्ध नही है,
सम्यग् परम् भगवान् की स्थिति पूर्णतः सहज है किसी दबाव में नही,
अतः किसी भी कर्ताविशेष < सृष्टिकर्ता creator से श्रेयस्कर पूर्णतः आधारीय संतुलन के निमित्त सम्यग् परम् भगवान् की स्थिति है....
यहाँ सम्यग् परम् भगवान् कहने का सांकेतिक तात्पर्य लोकाचार में प्रचलित मिथ्यादृष्टव्यतः भगवान की मान्यता से नही है.........

25 May 2024

पूरी महत्वबुद्धि से उत्तरोत्तर सीधे से सीधे हो स्थिरतापूर्वक ध्यान-अभ्यास के निमित्त रहो,
जब तक तुम्हारी महत्वबुद्धि बँटी हुई है तब तक तुम्हारा ध्यान सीधे से सीधे स्थिर नही हो सकता,
सर्वप्रथम दोनों आँखों के समानान्तर मध्य से ४५ अंश के कोण में झुककर नासिकाग्र में जहाँ श्वास ज्ञात हो रही है वहीं संतुलनपूर्वक भली-भाँति संभलकर स्थिरतापूर्वक सीधे हो ध्यान-दृष्टि का आसन लगाना है,
पहले के होश के रहते उसी होश में सीधे हो और होश में आते जाना है,
ध्यान रहे हर बार पहले के होश के भंग होने से पहले ही और सीधे होश में आने का उत्तरोत्तर (आगे से आगे का) क्रम भंग न होने पाए तभी होश की पूर्णता संभव है,
पहले की स्थिरता में रहते हुए उसी स्थिरता में और सीधे हो स्थिर होते जाना है,
ध्यान रहे हर बार पहले की स्थिरता भंग हो इससे पहले ही और सीधे स्थिर होने का उत्तरोत्तर (आगे से आगे का) क्रम भंग न होने पाए तभी स्थिरता की पूर्णता है,
जहाँ भी पूरे होश में पूरी स्थिरता है वहाँ की सहज ही पूर्णतः निभ्रान्त स्पष्टता है,
यह तुम्हारे पर निर्भर है कि तुम किसे महत्व देते हो,
तुम जिसे भी महत्व देते हो उसी तरफ तुम्हारा ध्यान खिंचता चला जाएगा,
अगर तुम्हारी दृष्टि में स्त्री-पुत्र, धन-संपत्ति, मान-सम्मान, पद-प्रतिष्ठा, यश-ऐश्वर्य, शक्ति-सत्ता-ईश्वरत्व आदि का महत्व है तब तो तुम्हारा ध्यान पूर्णतः निश्चिंततापूर्वक सीधे से सीधे हो पूर्ण स्थिर नही हो सकता,
तुम्हारा ध्यान इधर-उधर चलायमान हो बँटता ही रहेगा,
जब तम्हारी दृष्टि में केवल बस सम्यग् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त ही महत्व रह जाता है
तभी सम्यग् यथार्थ स्पष्टता निमित्त सहज ही
बल का आधार रहता है,
जब लोकदृष्टि का < लोकाचार का सम्मोहन भंग हो जाता है,
जब कहीं का भी कोई अर्थ नही रह जाता है,
कोई महत्व नही रह जाता है, कोई आकर्षण नही रह जाता है,
तब सहज ही सम्यग् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त गति होती है,
बस सम्यग् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त ही पूरा का पूरा समर्पण रहे,
जो कुछ स्थापित है उससे अनिमित्त हो मात्र सही-सही ओर ही अभिमुख हो < उपासनारत् रहो,
उत्तरोत्तर सीधे से सीधे अभिमुख हो
स्थिरता का निमित्त पूरा करो,
यहाँ सीधे से सीधे होने का तात्पर्य कम स्थान-समय अंतराल से और कम स्थान-समय अंतराल में स्थित होने से है,
निकट वर्तमान अंतराल से और निकट वर्तमान अंतराल में स्थित होने से है न कि समानान्तर अंतराल से,
सामान्य दृष्टि में उत्तरोत्तर समानान्तर क्रम में सीधे होने की भ्रान्ति होती है,
जब तक अंतराल स्थापित है तब तक अपेक्षित दृष्टिकोण का होना स्वाभाविक है,
व्यवहारतः लक्ष्य यही है कि उत्तरोत्तर आकाश (स्थान)-समय का अंतराल कम होते-होते अंततः अंतराल ही न रह जाए तभी अंतरालरहित यथार्थ स्पष्टता है,
श्वास के आने-जाने के मध्य के स्थान-समय < अंतराल से भी कम स्थान-समय < अंतराल में संभलना पूरा हो,
इससे भी आगे चित्त के बीतने-उत्पन्न होने के मध्य अंतराल से भी कम अंतराल में संभलना पूरा हो इसके लिए बिना कोई विलंब किए प्रमाद रहित हो तत्परतापूर्वक अभ्यास का निमित्त पूरा करो,
तथ्यतः जैसा है ठीक वैसा ही स्पष्ट हो इस निमित्त से यथा सहज हो सजग रहो,
यथा सहज हो सजग रहने पर ही संतुलनपूर्वक संभलना पूरा होता है गिरना नही हो पाता,
जब तक कहीं भी अर्थ नजर आ रहा है,
जब तक कहीं का भी आकर्षण है तब तक कदापि सम्यग् यथार्थतः सत्य क्या है यह सम्यग् जिज्ञासा नही उभर सकती,
जब आत्म-अनात्म, द्वैत-अद्वैत आदि अपेक्षित दृष्टिकोण का जरा सा भी अर्थ नही रह जाता है,
जरा सा भी महत्व नही रह जाता है,
जरा सा भी आकर्षण नही रह जाता है तब सहज ही तथ्यतः निभ्रान्त स्पष्टता है.......
_जब सम्यग् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त ही पूरा का पूरा अर्थ रह जाता है, पूरा का पूरा महत्व रह जाता है, पूरा का पूरा समर्पण रह जाता है तब लोकदृष्टि में < लोकाचार में स्त्री-पुत्र, धन-संपत्ति, मान-सम्मान, यश-ऐश्वर्य, लोक-परलोक के भोग-पदार्थ, शक्ति-सत्ता-ईश्वरत्व, ब्रह्मत्व, राम, कृष्ण, शिव आदि जिसे भी अर्थ दिया जाता है, महत्व दिया जाता है तब सहज ही उसके प्रति उपेक्षा पूर्ण रहती है,

न कोई अपेक्षाकृत अर्थ रह जाता है, न कोई अपेक्षाकृत महत्व रह जाता है, न कोई अपेक्षाकृत आकर्षण रह जाता है,
ऐसी स्थिति मे ही पूर्णतः सहज शान्ति है,
पूर्णतः सहज मुक्ति है......

27 May 2024 (I)

सम्यग् परम् भगवान् की महिमा अपरिमित है,
जिसकी तुलना में लोकदृष्टि में प्रतिष्ठित असंख्य-असंख्य ब्रह्मा, विष्णु, शिव, राम, कृष्ण आदि की सम्मिलित महिमा भी नगण्य है,
अनंत-अनंत ब्रह्मांडों के परम् प्रभु > अपरिमित महिमामय सम्यग् परम् भगवान् का न कोई अवतार है, न कोई अंश है,
लोकदृष्टि के अनुसार सारे अवतार ही विष्णु के हैं,
जगदीश्वर का भिन्न-अंश प्रथमत् विष्णु है,
प्रथमत् विष्णु का अंश महाविष्णु है, जिसका अंश क्षीरोदकशायी नारायण < विष्णु है,
और उसका अंश स्वरूप बैकुंठाधीश विष्णु है,
क्षीरोदकशायी विष्णु के अंश स्वरूप के ही राम, कृष्ण आदि अवतार हैं.......

27 May 2024 (II)

साधारण जनों की सीधे ही दर्शनमात्र में स्थिति संभव नही है,
वे दृष्टा-भाव में ही रहने के लिए विवश हैं, लाचार हैं,
दृष्टा-भाव की साधना में तुम बस केवल दृष्टा हो, तुम बस केवल देखने वाले हो,
जैसे ही तुम श्वास के प्रति दृष्टा भर होते हो,
ज्ञाता भर होते हो, साक्षी भर होते हो
श्वास से तुम्हारी तादात्म्यता भंग हो जाती है,
इससे आगे जब तुम वेदना के दृष्टा भर होते हो, ज्ञाता भर होते हो, साक्षी भर होते हो
तब वेदना से तुम्हारी तादात्म्यता भंग हो जाती है,
जब वेदना से तुम्हारी तादात्म्यता भंग हो जाती है तब तुम्हें यह स्पष्ट हो जाता है कि तुम वेदना नही हो वेदना से अलग हो,
इसी तरह विचारों-भावनाओं के, संकल्प-विकल्प के दृष्टा भर होते ही
ज्ञाता भर होते ही, साक्षी भर होते ही
तुम्हारी विचारों-भावनाओं से, संकल्प-विकल्प से तादात्म्यता भंग हो
जाती है,
दृष्टा भर होने की ऐसी स्थिति में तुम अपने शरीर से बाहर निकलकर अपने शरीर को शव की तरह अलग पड़ा हुआ देख सकते हो, और फिर अपने शरीर के भीतर प्रवेश कर सकते हो,
यद्यपि दृष्टा भर होने की साधना में एक सीमा तक अवश्य ही तादात्म्यता भंग होती है,
और एक सीमा तक अवश्य ही ऋद्धि-सिद्धि का प्रभाव भी रहता है,

पर ध्यान रहे दृष्टा-भाव के दबाव में गिरना स्वाभाविक है, दृष्टा होने पर ही सापेक्षिक दिग्भ्रम उत्पन्न होता है,
दृष्टा के रहते कदापि सापेक्षिक दिग्भ्रम नही भंग हो सकता,
दृष्टा-भाव से अनिमित्त दर्शनमात्र के निमित्त ही सापेक्षिक दिग्भ्रम भंग होता है, सम्पूर्ण भ्रम, संशय, अज्ञान भंग होता है, सम्पूर्ण दुःख भंग होता है,
क्या तथ्यगत् है, क्या आरोपित है इस संबंध में विवेक स्पष्ट होना आवश्यक है,
दिखना भर होना, ज्ञात भर होना सीधे ही तथ्यगत् है अलग से आरोपित नही,
दृष्टा होना, ज्ञाता होना, साक्षी होना सीधे तथ्यगत् नही है अपितु आरोपित है,
जब दिखने में ठहरना पूरा होता है, ज्ञात होने में ठहरना पूरा होता है तब दिखने में जो है, ज्ञात होने में जो है वह पूरी तरह से स्पष्ट हो जाता है, उसकी पूरी यथा सत्यता स्पष्ट हो जाती है, उसकी सच्चाई खुल जाती हे,
जब बस दिखने भर में > बस ज्ञात होने भर में बस उपस्थिति भर का निमित्त पूरा होता है तब सहज ही पूर्णतः निभ्रान्त परिस्पष्टता है......

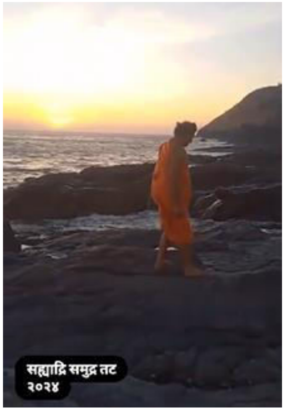

31 May 2024

यद्यपि सभी भावनाएं अपेक्षाकृत आरोपित होने से कृत्रिम हैं,
पर सामान्य जन अपेक्षाकृत दबाव में किसी न किसी भावना में भावित होने के लिए विवश हैं,
देवता हो, मनुष्य हो, कोई भी क्यों न हो
अपेक्षाकृत दबाव में किसी न किसी भावना में भावित होने के लिए विवश हैं,
भावनीय भावनाओं का निमित्त पूरा होने पर
दृष्टा-भाव से निरपेक्ष अपेक्षाकृत दर्शनमात्र में ही स्थिति संभव है,
ज्ञाता-भाव से निरपेक्ष अपेक्षाकृत ज्ञानमात्र में ही स्थिति संभव है,
पर कदापि अंतरालरहित ज्ञानमात्र की पूर्णता में स्थिति संभव नही है,
जिस तरह किसी विद्यालय में योग्यतानुसार कई स्तर की कक्षाएं तथा उसके विषय होते हैं,
इसी तरह लोक में योग्यतानुसार कई स्तर की भावनाएं हैं,
विवेकवान व्यक्ति किसी भी भावनीय भावना से द्वेष नही रखता,
लोक में नाना प्रकार की भावनाएं हैं,
_उदाहरण के लिए जैसे बोधिसत्व की भावना है,
जहाँ बोधिसत्व बिना किसी स्वार्थ के कारुणिक हृदय से सभी के कल्याण के लिए व्यवहारतः अभिरत रहता है,
बोधिसत्व की यह भावना सराहनीय है,
_इसी तरह मसीह की भी अपनी भावना है,
जहाँ वह प्रेमपूर्ण-क्षमापूर्ण हृदय
से सभी के उद्धार के लिए अपने प्राण तक न्योछावर कर देता है,
मसीह की यह प्रेमपूर्ण-क्षमापूर्ण भावना भी सराहनीय है,
_जो बिना कोई आरोप किए सम्यग् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त ही पूर्णतः समर्पित-भावना से रहता है,
उसकी यह संयमपूर्वक-पवित्रतापूर्वक पूर्णतः समर्पित-भावना बहुत ही सराहनीय है,
_दृष्टा-भाव से अनिमित्त दर्शनमात्र के निमित्तमात्र होने की पूर्णतः संयमपूर्वक भावना बहुत ही सराहनीय
है,

_नैष्ठिक भक्त की अव्यभिचारिणी भक्ति-भावना सराहनीय है,
_एक नैष्ठिक < ईमानदार मुसलमान
निर्धारित < किबले की ओर रुख करते हुए सिर्फ़ बस अल्लाह के आगे ही निष्ठापूर्वक समर्पित होता है, सजदे में होता है,
उसके लिए अल्लाह सबसे पहले व सबसे बढ़कर है,
उसके लिए न कोई अल्लाह के दर्जे में है,
न कोई अल्लाह के बराबर है, और न कोई अल्लाह के जैसा है,
वह अल्लाह के अलावा किसी को नही पुकारता है,
वह अल्लाह के अलावा किसी से नही माँगता है,
वह कभी भी अल्लाह की जात में, सिफ़ात में, कुदरत में < फितरत में किसी को भी साझा नही करता, शामिल नही करता, शरीक नही करता,
उसकी यह संयमपूर्वक-पवित्रतापूर्वक नैष्ठिक भावना सराहनीय है,
लोक में और भी भावनाएं हैं,
_राम की नैतिक-मर्यादा, वचन-पालन, कर्तव्य-पालन की भावना सराहनीय है,
_सूर्यवंश में ऋषभदेव, भरत, पृथु, हरिश्चंद्र, मान्धाता, शिवि, रघु, राम, सुवर्त, सिद्धार्थ, राहुल, आनंद, वर्धमान आदि का चरित्र, आचरण, व्यावहारिक सत्यता सराहनीय है,
_सूर्यवंश के पुरुष स्वप्न में भी परस्त्री का स्मरण तक नही करते थे,
और नारियां स्वप्न में भी परपुरुष का स्मरण तक नही करती थीं,
ऐसा अद्भुत संयम, ऐसी अद्भुत पवित्रता की भावना सराहनीय है,
_नानक आदि भक्तों की भक्ति तथा सेवा-भावना सराहनीय है,
_ऋषभदेव, पार्श्व, नेमि, वर्धमान, सिद्धार्थ (शाक्यमुनि) आदि की त्याग-तपस्या-वैराग्य भावना सराहनीय है.........
भावना योग्य < भावनीय भावनाओं का निमित्त पूरा होने पर जब भावित होने के लिए कोई भी भावनीय भावना शेष नही रह जाती है तब सीधे ही दृष्टा से, दृष्टि से, दृष्टिकोण से अनिमित्त अकृत्रिमतः सहज दर्शनमात्र में सहज स्थिति स्पष्ट होती है,
जो पूर्णतः सहज शान्त स्थिति है,
हर भावना किसी एक सीमा तक विकास तथा संतुलन के निमित्त है,
चाहे कोई भी किसी भी भावना में क्यों न हो भावनीय भावनाओं का निमित्त पूरा कर अंततः सबकी मुक्ति अकृत्रिम ज्ञानमात्र के निमित्त ही है,
अकृत्रिम ज्ञानमात्र ही सभी भावनीय भावनाओं का केन्द्रीय आधार है.....
_पूर्व भव-शृंखला के अनुसार ही वर्तमान भव-शृंखला में भी अंतिम जन्म में निर्वाण का लाभ होता है,
अमीबा से लेकर मनुष्य तक हर कोई मोक्ष के मार्ग में ही है,
जन्मों-जन्मों तक उत्तरोत्तर विकास क्रम का निमित्त पूरा कर अंततः हर किसी का मोक्ष है...

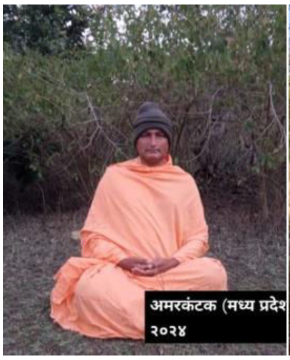

****

02 Jun 2024

_पूर्व कल्प के अनुसार ही इस वर्तमान कल्प के आरंभ में अपौरुषेय ऋत्<नियम के सम्यग् संकेतार्थ को स्पष्ट अध्यारोप रहित विशुद्धतः एक ही वेद था,
कालान्तर में अपेक्षाकृत दबाव में आकर मनुष्यों ने वेद के नाम पर छंदबद्ध ऋचाओं के अध्यारोप में ऋग्वेदादि का संकलन किया,
अभी वर्तमान काल में ऋग्वेद,यजुर्वेद,
सामवेद,अथर्ववेद यही वेद के नाम पर प्रचलित है < जिसका बहुत ही कम भाग शुद्ध है जो अपौरुषेय ऋत् संगत है,
अधिक भाग अशुद्ध है जो अपौरुषेय ऋत् संगत न होकर स्वार्थी मनुष्यों द्वारा रचित है, जैसे- ....यथापूर्वमकल्पयत्....
जैसी ऋचाएँ अपेक्षित दृष्टिकोण में होने पर भी संकेत अर्थ में अपौरुषेय ऋत् संगत हैं,
और जैसे- ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्...
जैसी ऋचाएँ ऋत् असंगत हैं < जो अप्राकृतिक, अन्यायपूर्ण, शोषणपूर्ण वर्णव्यवस्था का आधारीय प्रमाण है,
जो जन्म के आधार पर ऊँच-नीच का भेद करता है वह मनुष्यता का घोर शत्रु है,
घोर अपराधी है, घोर पापी है,
मरने के बाद उसका नारकीय योनियों में जन्म होता है,
जन्म से सभी मनुष्य हैं, सबकी एक ही जाति है मनुष्य जाति,
कुदरत की तरफ से हर कोई इंसान है,
कुदरत की तरफ से कोई भेद नही है,
हर किसी में विकास की पूरी संभावना है,
जन्म के आधार पर किसी को नीच कहकर
उसको हीनभाव में आबद्ध मत करो,
और जन्म के आधार भर से श्रेष्ठ मानने से अवश्य ही तुम्हारी अधोगति है, पतन है,
अहंकार तथा हीनभाव के रहते यथा सहजता-पूर्वक सजग हो ध्यान में संतुलन-पूर्वक स्थिरता नही हो सकती,
स्वार्थप्रेरित धूर्तों ने झूठे धर्म, झूठे ईश्वर की आड़ में अप्राकृतिक, आपत्तिजनक,
शोषणपूर्ण कुव्यवस्थाएँ खड़ी कर रखी हैं,
जब से हिन्दुओं में यह अप्राकृतिक, अन्यायपूर्ण, शोषणपूर्ण वर्ण-कुव्यवस्था है
तब से हिन्दू बार-बार गुलाम होता आया है, और जब तक यह कुव्यवस्था रहेगी
तब तक आगे भी गुलाम होता ही रहेगा, जलील होता ही रहेगा,
वर्णव्यवस्था में खंडित मनुष्य का कभी भी यथा सहजता में पूरी तरह से खुलकर पूरा विकास नही हो सकता है,
वर्णव्यवस्था में खंडित मनुष्य स्वावलंबी न होकर एक-दूसरे की पराधीनता में है,
लाचार है, एक-दूसरे के मोहताज है,
प्रकृतितः हर किसी का पूर्ण < अखंडित मनुष्यत्व की गरिमा में जन्म हुआ है,
वर्णवाद की कुव्यवस्था में आकर अपने को खंडित मत करो, अपना अपमान मत करो,
दूसरे मनुष्य का अपमान मत करो,
हर कोई स्वभावतः जन्म सिद्ध पूर्ण मनुष्यत्व की गरिमा में है,
उसका एक ही साथ शास्त्र पर भी अधिकार है, शस्त्र पर भी अधिकार है, धन पर भी अधिकार है,
सेवा-परिचर्या पर भी अधिकार है,
यह ध्यान रहे जन्म आधारित वर्णव्यवस्था अपौरुषेय नही है, अपौरुषेयतः ऋत् संगत नही है, सच्चे धर्म, सच्चे ईश्वर की ओर से नही है,
बल्कि स्वार्थलोलुप धूर्त मनुष्यों ने अध्यारोपित (झूठे) धर्म, अध्यारोपित (झूठे) ईश्वर की आड़ में खड़ी की है,
स्वार्थलोलुप धूर्त मनुष्यों ने वेद में मिलावट कर वेद के अर्थ का अनर्थ कर दिया है,
इक्ष्वाकु के समय में ही वेद के पुरुष-सूक्त में मिलावट हो गयी थी,
कालान्तर में मनु के नाम पर झूठी मनुस्मृति रचकर अन्यायपूर्ण, शोषणपूर्ण कुव्यवस्था को खड़ा किया गया,
मनु के समय पर न ही वेद में मिलावट थी, और न ही उस समय वर्णव्यवस्था थी,
मनु के समय में ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्....
यह मंत्र वेद में नही था,
इसे कालान्तर में धूर्त मनुष्य ने रचकर वेद में मिला दिया,
इसी तरह बहुत से अनर्गल मंत्र वेद में मिला दिए हैं,
वेद का शुद्ध भाग बहुत ही अल्प है,

अशुद्ध भाग बहुत अधिक है,
जिस कारण आज हिन्दू दिग्भ्रमित है,
यह बात कल्प के आरंभ से अंत तक के त्रिकालज्ञ सम्यग् आप्त-पुरुष द्वारा कही जा रही है........
वेद के कौन से मंत्र ऋत् संगत हैं, और कौन से मंत्र ऋत् असंगत हैं इसका सम्यग् विवेक स्पष्ट होना आवश्यक है,
जिसे अपौरुषेय ऋत्<नियम स्पष्ट है < उसे ही क्या अपौरुषेय ऋत् संगत है, और क्या ऋत् असंगत है इसका भली-भाँति सम्यग् विवेक स्पष्ट है,
अपेक्षाकृत दबाव में आकर ही अज्ञ मनुष्यों ने अपेक्षित दृष्टिकोण में अध्यारोप स्वरूप गीता-उपनिषद-शास्त्र-पुराण आदि की रचना की,
अपेक्षाकृत दबाव में आकर ही अज्ञ मनुष्यों ने अपेक्षित दृष्टिकोण में वैष्णव, शैव,
शाक्त आदि संप्रदायों की स्थापना की,
द्वैत,अद्वैत,विशिष्टाद्वैत,शुद्धाद्वैत,द्वैताद्वैत,
त्रैत आदि मतों की स्थापना की,
सनातन के नाम का अहंकार पालने वालो सावधान!
कोई भी स्थापित संप्रदाय, कोई भी स्थापित मत सनातन धर्म नही,
अपौरुषेय उपस्थितिमात्र की सहज सिद्ध भूमिका सनातन है,
अपौरुषेय अकृत्रिम ज्ञानमात्र सनातन है,
ज्ञानमात्र के निमित्त उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका सनातन है,
अपेक्षाकृत दबाव में ही आरंभ है,
जिसका आरंभ है वह सनातन नही,
दृष्टा-भाव का आरंभ है, दृष्टि का आरंभ है, दृष्टिकोण का आरंभ है,
आरोपित दृष्टा-भाव से अनिमित्त अनारंभिक ज्ञानमात्र के निमित्त रहो,
तुम्हारा धर्म कोई हिन्दू, कोई मुस्लिम नही है,
कोई दृष्टि, कोई दृष्टिकोण नही है,
कोई मत, कोई संप्रदाय नही है,
तुम्हारा धर्म है दर्शनमात्र में उपस्थित भर होना,
तुम्हारी भूमिका निमित्तमात्र बस उपस्थिति भर की है,
गुणों का धर्म तुम्हारा धर्म नही,
गुण<धर्म के दबाव में आकर तुम कर्ता बन गए हो तुम अपने स्वधर्म से गिर गए हो,
पर ध्यान रहे तुम कर्ता नही हो तुम बस निमित्तमात्र उपस्थित भर हो,
दृष्टा नही, साक्षी नही बल्कि दर्शनमात्र में बस केवल उपस्थित भर होने का निमित्त पूरा करो निभ्रान्त यथार्थतः सत्य स्पष्ट है|
_वेद का आधारीय तात्पर्य ऋत् ज्ञान से है,
ऋत्<ज्ञान स्पष्ट हो यह बहुत ही आवश्यक है,
अपौरुषेय < यह संकेत बहुत ही सार्थक है पर मताग्रहियों ने इस संकेत के अर्थ का अनर्थ कर दिया है,
मताग्रहियों ने अपौरुषेय के संकेत को पुरुषविशेष < कर्ताविशेष ईश्वर के अपेक्षित अर्थ में कर अर्थ का अनर्थ कर दिया,
अपौरुषेय के संकेत में बस उपस्थितिमात्र से ही जीवन & जगत की स्थिति है,
संकल्प करना, कुन < हो जा ऐसा कहना अपेक्षित दृष्टिकोण में मनुष्य की मानसिक प्रवृत्ति है,
अपौरुषेयतः ऋत् संकल्प अपेक्षित दृष्टिकोण की मानसिक प्रवृत्ति नही है, मनुष्य के संकल्प की सीमित गति है,
अपौरुषेयतः ऋत् संकल्प की असीमित अनंत गति है जो उपस्थितिमात्र के ही आयाम में है,
अपौरुषेयतः उपस्थित भर होने से ही बिना मिलाए सबकुछ जो जिस अर्थ में है वह उसी अर्थ में स्थित है,
ऐसा है, वैसा है, ऐसा किया, वैसा किया <
ये सब तुम्हारे अपेक्षित दृष्टिकोण में है,
अपेक्षित दृष्टिकोण में आरोपित कृत्रिम (झूठे) ईश्वर की अपौरुषेय उपस्थितिमात्र से कदापि तुलना संभव नही.....
अपौरुषेय ऋत् संकल्प से ही हर बार अपने से पूर्व के अनुसार जीवन & जगत का आरंभ है, स्थिति है, तथा अंत है,
ऋत् संकल्प का आयतन मनुष्य का मानसिक आयतन नही है, बौद्धिक आयतन नही है,
इसलिए अपौरुषेय ऋत् संकल्प की मनुष्य के संकल्प से तुलना करना व्यर्थ है,
अपौरुषेय ऋत् संकल्प की तुम 'ऐसा है, वैसा है' ऐसी कल्पना नही कर सकते......

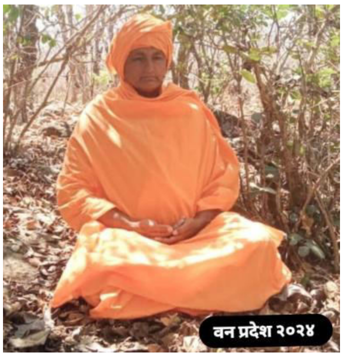

04 Jun 2024

सहजता में इतना सजग होना है कि जिससे सहजता भंग न हो,
सजगता में इतना सहज होना है कि जिससे सजगता भंग न हो,
ध्यान में << सहजता में सजगता का, सजगता में सहजता का ऐसा संतुलन बन जाए कि न तो सहजता भंग हो, न सजगता भंग हो, इस अर्थ में स्थिरता पूरी हो जाए,
स्थिरता का आधार संतुलन है,
इसलिए एक नैष्ठिक साधक के लिए संतुलन को साधना आवश्यक है,
सीधे से सीधे वर्तमान में संभलने पर संतुलन स्थापित होता है,
निरंतर ही सीधे से सीधे वर्तमान में संभलते रहने पर संतुलन भंग नही होता है,
पहले की सीध की अपेक्षा और सीधे हो संभलने पर ही संतुलन बनता है गिरना नही होता,
_श्वास की प्रकृति से < श्वास के स्वरूप से अभिप्रेरित हो श्वास की प्रकृति के अनुसार चलना है,
श्वास का व्यावहारिक स्वरूप जाना-ठहरना-आना अपौरुषेय ऋत्<नियम के अनुसार है < जहाँ ठहरने में आने-जाने का दबाव समाहित है,
श्वास के आने-जाने के मध्य का अंतराल खाली नही है यह श्वास के आने-जाने के लिए जो दबाव है < उससे भरा हुआ है,
जब तक प्रत्यक्ष<व्यवहार में इस दबाव से अधिक सहजता नही हो जाती
तब तक श्वास संबंधित दबाव का बंधन बना हुआ है < प्राण का बंधन बना हुआ है,
श्वास के स्वरूप में श्वास के आने-जाने के मध्य जो अंतराल है वह अंतराल संभलने के लिए है,
ताकि हर आती-जाती श्वास के मध्य के अंतराल में संभलकर हर आती-जाती श्वास के ठीक समय पर उपस्थिति हो सके,
हर आती-जाती श्वास के ठीक समय पर
निरंतर उपस्थित होते रहने से जब सकारात्मक प्रभाव बढ़ जाता है तब एक समय ऐसी स्थिति हो जाती है कि जिसमें श्वास के मध्य के अंतराल के समय से भी कम समय में संभलना हो जाता है,
ऐसी स्थिति में ही तब श्वास संबंधित दबाव के बंधन से मुक्ति हो जाती है,
इसी तरह चित्त के समय पर संभलने के लिए भी संकेत है,
जब हर तरह के दबाव से अधिक सहजता की स्थिति होती है तभी पूर्णतः दबाव-रहित सहज मुक्ति है.....
_उत्तरोत्तर कम से कम समय में सीधे से सीधे हो संभलते रहना है,
श्रम का यह निमित्त पूरा करना आवश्यक है,
श्रम का निमित्त पूरा किए बिना कदापि सहज स्थिति का लाभ नही हो सकता,
अध्यारोपग्रस्त शास्त्रीय तुष्टि से सावधान रहना आवश्यक है,
आत्मवादी आत्मा का मत स्थापित कर एक दृष्टिकोण में आबद्ध हो जाते हैं,
इसी तरह अनात्मवादी भी अनात्म का मत स्थापित कर एक दृष्टिकोण में आबद्ध हो जाते हैं,
लोकदृष्टि में स्थापित हुए, प्रतिष्ठित हुए, प्रचलित हुए गीता-उपनिषद-वेदांत-पुराण आदि अध्यारोपित धर्मग्रंथ अपेक्षाकृत<अपेक्षित दृष्टिकोण में आबद्ध होने से बुद्धिगत<दार्शनिक तुष्टि के सम्मोहन में बाँधते हैं,
बुद्धिगत<दार्शनिक तुष्टि के सम्मोहन में समाधान हो जाने का भ्रम हो जाता है जो बहुत बड़ा धोखा है,
दुःख जीवन की मूलभूत प्रत्यक्ष<व्यावहारिक समस्या है,
जिसका आधार बहुत ही प्रबल है, जिसकी नींव बहुत ही मजबूत है,
दार्शनिक तुष्टि होने भर से जीवन की दुःख संबंधित मूलभूत व्यावहारिक समस्या का समाधान कदापि संभव नही,

दार्शनिक समाधान तो तुम्हारे दृष्टिकोण का भ्रम है इससे प्रत्यक्ष<व्यावहारिक दुःख का सम्यग् निरोध नही होता है,
भले ही कोई अपने को नित्य-मुक्त आत्मा मान ले, ब्रह्म मान ले अथवा कुछ भी माने यह उसका अपना दार्शनिक दृष्टिकोण है < यह उसका अपनी तरफ से आरोपित किया हुआ (मिथ्या) अपेक्षित दृष्टिकोण है इससे प्रत्यक्ष में दुःख भंग नही हो जाता,
इससे प्रत्यक्ष में भ्रम,संशय,अज्ञान भंग नही हो जाता,
जीते जी अगर प्रत्यक्ष में भ्रम,संशय,अज्ञान,
दुःख भंग नही हुआ तो बहुत ही बड़ी हानि है जहाँ मरने के बाद फिर से भ्रम, संशय,अज्ञान,दुःख में अगला जन्म निश्चित है,
भ्रम,संशय,अज्ञानता,दुःख से मुक्ति का व्यवहारतः प्रत्यक्ष मार्ग है न कि दार्शनिक बुद्धिविलास......
_जब आना-जाना नही रह जाता है,
तब ठहरने के लिए मध्य का अंतराल भी नही रह जाता, आने-जाने के लिए मध्य का दबाव भी नही रह जाता < तभी स्थान-समय से रहित यथार्थ स्पष्टता है उससे पहले तो अपेक्षाकृत दबाव का बंधन ही है,
अपेक्षाकृत दृष्टिकोण का बंधन ही है,
_अपेक्षाकृत दृष्टिकोण में ही 'यह सत्य है' की भ्रान्ति होती है इसी भ्रान्ति में यह सम्पूर्ण लोक अंतरालरहित, दबाव-रहित निभ्रान्त यथार्थ स्पष्टता से वंचित हो सनातन दुःख-चक्र >
(दुःख < > दुःख निरोध) से आबद्ध है....
_श्वास के प्रति यथा सहज हो यथा सजग होने पर श्वास यथा सहजतापूर्वक सूक्ष्म से सूक्ष्म हो ठहरती जाती है,
अंततः पूर्णतः यथा सहजता में श्वास पूर्णतः ठहर जाती है,
इसी तरह चित्त के प्रति यथा सहज हो यथा सजग होने पर चित्त यथा सहजतापूर्वक ठहरता जाता है,
अंततः पूर्णतः यथा सहजता में चित्त पूर्णतः ठहर जाता है,
यद्यपि श्वास का ठहरना, चित्त का ठहरना अपेक्षित दृष्टिकोण में ही प्रतीत
होता है दर्शनमात्र में नही, यथार्थ स्पष्टता में नही,
अपेक्षित दृष्टिकोण से अनिमित्त होने पर सहज ही दर्शनमात्र स्पष्ट हो जाता है,
और सहज दर्शनमात्र में जिस अर्थ में है < ठीक उसी अर्थ में अंतरालरहित निभ्रान्ततः स्पष्ट है,
यथार्थ में > (अंतरालरहित में) न स्थान है, न समय है, न गति है, न परिवर्तन है,
साधनात्मक दृष्टिकोण में ही जो जिस अर्थ में है बिना मिलाए उसे उसी अर्थ में दिखने के निमित्त होने की बात कही जाती है,
परंतु दर्शनमात्र में यह बात नही है,
दर्शनमात्र में बस केवल दिखना भर रहता है,
कौन किस अर्थ में है यह दृष्टिकोण नही रहता,
बीतने पर ही किसी अर्थ के उत्पन्न होने के लिए दबाव बनता है, उस दबाव में उत्पन्न हुआ अर्थ अपने से पूर्व के अर्थ से बिल्कुल वही का वही भी नही है, बिल्कुल दूसरा भी नही है,
इसलिए जो जिस अर्थ में है उसके उसी अर्थ में स्थिर होने की भ्रान्ति है,
अंतरालरहित यथार्थ का संकेत जो जिस अर्थ में है अंतराल में होने से, दबाव में होने से उसी अर्थ से नही है,
अंतरालरहित यथार्थ दबाव-रहित होने से बीतने-उत्पन्न होने का कारण नही है अपितु बीतने-उत्पन्न होने का सदा-सनातन स्थिर आधार है,
अपौरुषेय का संकेत लोक प्रचलित खुदा, गाॅड, ईश्वर, ब्रह्म आदि से नही है
ईश्वर, ब्रह्म इत्यादि का अर्थ अपेक्षित दृष्टिकोण में ही है
दर्शनमात्र की स्पष्टता में नही....
अपौरुषेयतः उपस्थितिमात्र > (उपस्थितिमात्र) किसी का कारण नही है अपितु पूर्ण स्थिर आधार है,
अपौरुषेय उपस्थितिमात्र किसी के भी आरंभ होने का, अंत होने का कारण नही है अपितु आरंभ होने का, अंत होने का कारण शून्य है,
ध्यान रहे यहाँ शून्य का तात्पर्य अध्यारोपग्रस्त गणित के पारंपरिक शून्य से नही है,
और ध्यान रहे शून्यता कारण है आधार नही,
उत्पन्न होने के लिए प्रथम दबाव शून्य के होने पर ही है,
दबाव का आरंभ शून्य नही है,
अपितु शून्य के होने पर आरंभ होने के लिए जो दबाव बनता है < वही दबाव का आरंभ है........
_अपौरुषेय उपस्थितिमात्र की भूमिका शून्यता नही है, शून्य नही है अपितु शून्यता में है, शून्य में है,
जगत की शून्यता > शून्य में ही अपौरुषेय उपस्थितिमात्र की सदा-सनातन स्थिर आधारीय भूमिका है....

अपौरुषेयतः उपस्थितिमात्र से < (उपस्थित भर होने से) शून्य < (कारण) के दबाव में बार-बार > हर बार अपने से पूर्व के बीतने पर उसके अनुसार बार-बार > हर बार उत्पन्न होने का सनातन क्रम प्रवृत्त ही रहता है, चालू ही रहता है, न पहला प्रारंभ है, न ही अंतिम अंत है.....

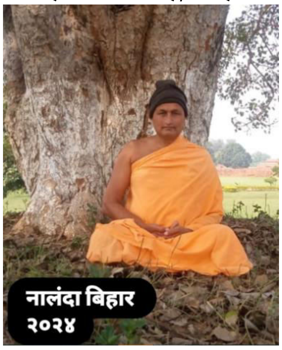

06 Jun 2024

व्यर्थ के दार्शनिक वाद-विवाद में समय को व्यर्थ न करते हुए प्रत्यक्ष व्यवहारतः practically ध्यान-अभ्यास में तत्पर रहो,
समय बीतता ही जा रहा है, आयु बीतती ही जा रही है, जीवन आयु के शेष रहते जीवन का उद्देश्य पूरा कर लो, जीवन की सार सार्थकता पूरी कर लो,
कोई व्यक्ति नदी किनारे बैठकर बस तैरने के बारे में बस केवल सोच-विचार करता रहे तो इससे वह नदी पार नही हो जाएगा बल्कि प्रत्यक्ष व्यवहारतः practically नदी में उतरकर तैरने से ही वह नदी पार होगा,
उपरोक्त संकेत से अवश्य ही अभिप्रेरित हो
व्यवहारतः practically उत्तरोत्तर सम्यग् ध्यान-अभ्यास में जुट जाओ अवश्य ही उत्तरोत्तर बुद्धि खुलेगी, अवश्य ही उत्तरोत्तर दृष्टि खुलेगी,
शत-प्रतिशत तक बुद्धि खुल सकती है,
व्यवहारतः practically ध्यान-अभ्यास में उतरने पर ही सम्यग् देशनाओं का सम्यग् तात्पर्य स्पष्ट होगा,
थ्योरी के साथ प्रैक्टिकल का होना बहुत ही आवश्यक है|
_किसी कोण विशेष में आबद्ध होने से सावधान रहो,
किसी कोण विशेष से देखने पर कदापि कभी भी पूर्णतः केन्द्रीय>आधारीय सत्यता स्पष्ट नही हो सकती,
किसी कोण विशेष से देखने पर अपेक्षाकृत अधूरे सत्य का ही दर्शन संभव है,
अधूरे सत्य में ही सापेक्षिक भ्रम होता है,
किसी कोण विशेष से देखने पर ही सापेक्षिक भ्रम में 'यह सत्य है' की घोषणा होती है,
लोकदृष्टि में प्रतिष्ठित गीता, आइंस्टीन आदि की अपेक्षित घोषणाएं इसी सीमा में हैं,
देखना अंतराल में होने से देखने का आरंभ है, पर दर्शनमात्र अंतराल में नही होने से दर्शनमात्र का आरंभ नही है,
जब भी देखना होता है तो अंतराल के किसी अंत से < किसी कोण विशेष से उसका आरंभ होता है,
दृष्टा-भाव में आत्मभाव-भावना के स्वसम्मोहनवश अपनी तरफ से देखने का भ्रम होता है,
दृष्टा-भाव से अनिमित्त दर्शनमात्र में अपनी तरफ से देखने का सम्मोहनात्मक भ्रम नही होता है,
अपनी ओर से देखने में अपनी ओर से आरोप स्वाभाविक है, अपनी तरफ से मिलावट लाज़मी है,
इसलिए अपनी तरफ से देखने से सावधान रहना है,
इसलिए देखने से सावधान रहते हुए बस दिखने भर के निमित्त रहना है,
दर्शनमात्र (बस दिखना भर होना) किसी भी सापेक्षिक कोण की ओर से नही है, किसी भी अंत की ओर से नही है अपितु अंतरहित-अंतरहित ओर से है,
अंतरहित-अंतरहित ओर ही पूर्णतः समर्पण हो,
अंतरहित-अंतरहित ओर ही मात्र समर्पण पूर्ण होने पर अपनी तरफ से देखना नही होता, अपनी तरफ से जानना नही होता, अपनी तरफ से आरोप नही होता,
अपनी तरफ से मिलावट नही होती,
अंतरहित-अंतरहित ओर ही मात्र समर्पण पूर्ण होने पर अंतरहित-अंतरहित ओर से ही जो दिखना भर हो रहा है, जो ज्ञात भर हो रहा है उसमें बस निमित्तमात्र उपस्थिति भर की भूमिका होती है,
बस निमित्तमात्र उपस्थिति भर की भूमिका होते ही पूर्णतः आधारीय सत्यता स्पष्ट हो जाती है,

दर्शनमात्र (बस दिखना भर होना) किसी की तरफ से नही है बल्कि सहज है,
ज्ञानमात्र (बस ज्ञात भर होना) किसी की तरफ से नही है बल्कि सहज है
'अंतरहित-अंतरहित' ओर से कहना बस संकेत-अर्थ भर है न कि प्रतीक-अर्थ ....
_दृष्टि विशेष से, दृष्टिकोण विशेष से सावधान हो यथार्थतः सत्य क्या है < इस अर्थ में सहज संवेदनशील रहो,
बिना किसी अंतराल के जैसा है<ठीक वैसा ही निभ्रान्ततः स्पष्ट हो बस इसी निमित्त से तथ्य के प्रति यथा सहज सजग रहो,
यथार्थ<सत्य स्पष्ट हुए बिना भ्रमजाल से मुक्ति नही.....

08 Jun 2024

मूर्ख जन ही हाड़-मांस, नस-नाड़ी, पीब-मज्जा, मल-मूत्र के शरीर में सौंदर्य की कल्पना कर उसके प्रति आसक्ति में घिरे रहते हैं,
तथ्यतः न कुछ सुंदर है, न कुछ कुरूप है, वासनात्मक दृष्टिकोण में ही सुंदरता की कल्पना जन्म लेती है,
यह वासनात्मक दृष्टिकोण ही है कि मरने के बाद भी स्वर्ग में, जन्नत में अप्सराएं चाहिए, हूरें चाहिए, गिल्में चाहिए,
वासना के रहते, असहज उत्तेजना के रहते कदापि यथा-सहज शीतल शान्ति संभव नही,
वासनात्मक दृष्टिकोण भंग हुए बिना कदापि पूर्णतः पवित्र, पूर्णतः स्थिर, पूर्णतः सहज शान्तमय स्थिति संभव नही है,
संसार की अशुभ भावना करने से संसार के प्रति वैराग्य-धर्म उत्पन्न होता है,
सांसारिकता के प्रति वैराग्य-भाव उत्पन्न हुए बिना मोक्षोपाय के निमित्त ध्यान-अभ्यास में तत्परता संभव नही, स्फूर्ति संभव नही, गति संभव नही,
संसार के प्रति वैराग्य-भाव का उत्पन्न होना बहुत ही दुर्लभ है,
जीवन में कभी-कभार ही कुछ क्षणों के लिए वैराग्य-भाव उत्पन्न होता है,
लोग श्मशान घाट जाते हैं, प्रियजनों के शवों को जलते हुए देखते हैं,
वहाँ किन्हीं क्षणों के लिए परिस्थितिजन्य वैराग्य-भाव उभरता है,
शरीर ही तो मरता है, आत्मा थोड़े ही मरती है, आत्मा तो सदा अमर-अजर है यह कहकर बुद्धि को तुष्ट कर उभरते हुए वैराग्य-भाव को वहीं ठंडा कर लोग घर चले आते हैं, और पूर्ववत सांसारिकता में प्रवृत्त हो जाते हैं...
_अमर-अजर आत्मा के अध्यारोपित दृष्टिकोण से सावधान हो तथ्यतः अभिप्रेरित रहो,
तथ्य ने कभी कोई मत स्थापित नही किया,
आत्म-अनात्म,द्वैत-अद्वैत आदि सभी मत अपेक्षाकृत दृष्टिकोण के वशीभूत अज्ञानी मनुष्यों ने ही स्थापित किए हैं,
इसलिए लोक को सांप्रदायिक मतभेद में दिग्भ्रमित करने वाले बेईमान,धूर्त संस्थापकों, भाष्यकारों से सावधान रहते हुए तथ्यतः दर्शनमात्र के निमित्त अभिप्रेरित रहो......
_सभी मनुष्यों का एक ही सहज धर्म < जो दृष्टि नही, दृष्टिकोण नही अपितु दृष्टि-दृष्टिकोण-दृष्टाभाव से अनिमित्त दर्शनमात्र के निमित्त उपस्थित भर होना है, सद्धर्म कोई द्वैत-अद्वैत आदि मत नही है, कोई संप्रदाय नही है अपितु अपौरुषेय है, अकृत्रिम है, ऋत् है, सनातन है,
जिसकी न कभी ग्लानि होती है, न कभी पुनः-पुनः स्थापना ही होती है.....

_अमर-अजर आत्मा की धारणा हो, अथवा अनात्मवाद की धारणा हो < दोनों ही तरह के अपेक्षाकृत वादों से सावधान रहो,
पूर्वाग्रह के दबाव में मत स्थापित होने पर, पक्ष स्थापित होने पर, दृष्टिकोण स्थापित होने पर पूर्णतः निष्पक्ष निभ्रान्त यथार्थ सत्य स्पष्टता से चूकना स्वाभाविक है......
बुद्धि को तुष्ट भर करने वाले अध्यारोपित धर्मग्रंथों से विशेषकर सावधान रहो.....
_इस तरह से श्वास के प्रति रहना है कि जिससे श्वास की यथा सहजता भी भंग न हो, और श्वास की यथावतता भी भली-भाँति स्पष्ट हो,
_इस तरह से श्वास के प्रति संतुलित अनुपात में यथा-सहज हो, यथा-सजग हो रहना है कि जिससे श्वास की यथा-सहज यथा-स्थिति भंग हुए बिना श्वास के बस केवल ज्ञात भर होने में ही स्थिति हो सके,
इसी तरह संवेदनाओं के प्रति, चित्त के प्रति,
गुणधर्म के प्रति भी रहना है,
दृष्टाभाव का अपना दबाव होता है,
जहाँ दृष्टाभाव के दबाव में श्वास की यथा सहजता भंग हो जाती है,
दृष्टाभाव से अनिमित्त दर्शनमात्र के निमित्त दबाव नही बनता है,
दबाव नही बनने से जिससे यथा सहजता भंग नही हो पाती है,
जिस तरह भौंरा पुष्प को कोई नुकसान पहुँचाए बिना उसका रस लेकर कुशलतापूर्वक निकल जाता है,
इसी तरह तुम भी संसार को कोई नुकसान पहुँचाए बिना बस उसका आधारीय सार ज्ञानमात्र ग्रहण कर कुशलतापूर्वक संसार-सागर के (भव-सागर के) पार हो जाओ,
संसार की संरचना < संसार का डिजाइन ही कुछ ऐसा है कि जो अपने से पूर्व के दबाव में < अपने से पूर्व के अनुसार ही निर्धारित है,
इसलिए अपनी तरफ से अनावश्यक हस्तक्षेप मत करो, अनावश्यक छेड़ने का प्रयास मत करो अन्यथा इसी में ही उलझ कर रह जाओगे, और पार नही हो पाओगे....

10 Jun 2024

कर्म होने पर जो दबाव बनता है उस दबाव में ही कर्म के अनुसार फल निर्धारित होता है,
अगर तुम्हें अभी बुरा परिणाम देखने को मिल रहा है तो इसके लिए तुम ही उत्तरदायी हो, तुम ही जिम्मेदार हो,
अगर आगे अच्छा परिणाम देखना चाहते हो तो अभी से अच्छे कर्मों का आरंभ कर दो........
_पंडों,ज्योतिषियों आदि के चक्कर में मत पड़ो,
तुम्हारा भविष्य तुम्हारे हाथ की लकीरों पर नही वरन दृढ़तापूर्वक कर्म की मुट्ठी पर निर्भर है,
भाग्य आदि के भरोसे मत बैठे रहो,
अकर्मण्य मत बनो श्रमशील रहो,
शगुन, अपशगुन, ताबीज, गंडा आदि पर विश्वास करने की अपेक्षा अपने कर्म पर विश्वास करो,
ध्यान-अभ्यास में बहुत ही अधिक शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक परिश्रम की आवश्यकता पड़ती है,

_आरंभिक अवस्था में कम से कम ३ घंटे तक बिना हिले-डुले संतुलित स्थिर पद्मासन में बैठो,
कम से कम ३ घंटे तक हर आती-जाती श्वास के ठीक समय पर यथा सहज-सजग रहते हुए संतुलनपूर्वक स्थिरतापूर्वक उपस्थित होना है,
इससे भी आगे श्वास के समय से भी कम समय में उपस्थित होना है,
यहाँ तक कि उत्तरोत्तर स्फूर्ती बढ़ाते हुए < उत्तरोत्तर क्षमता बढ़ाते हुए सेकेंड के दसवें, हजारवें, लाखवें, करोड़वें, अरबवें, खरबवें भाग पर उपस्थित होना है,
इस तरह उत्तरोत्तर कम से कम-कम से कम समय... में निरंतर सीधे से सीधे हो उपस्थित होते रहने से अंततः स्थान-समय के अंतराल से रहित सहज दर्शनमात्र में निमित्तमात्र उपस्थिति भर की भूमिका स्पष्ट होती है,
दर्शनमात्र के निमित्तमात्र उपस्थिति भर की भूमिका स्पष्ट होने पर ही भ्रम,संशय, अज्ञान पूर्णतः भंग होता है|
यद्यपि दर्शनमात्र के निमित्त उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका किसी कर्म का परिणाम नही है वरन सहज सिद्ध है,
कर्म का तो बस निमित्त है, अभ्यास का तो बस निमित्त है,
कर्म का < अभ्यास का निमित्त पूरा करना अनिवार्यतः आवश्यक है,
बिना अभ्यास का निमित्त पूरा किए सहज सिद्धता नही है......

12 Jun 2024

धनात्मक आवेश वाले मूलभूत कणों (प्रोटाॅनों) के सूक्ष्म अवयवों (क्वार्कों) के मध्य का प्रबल अन्योन्य क्रियात्मक बल (मजबूत नाभिकीय बल) प्रतिकर्षण वाले विद्युत चुंबकीय बल पर भी प्रबल रहता है, भारी रहता है
जो परमाणु के केन्द्रक को बिखरने से रोकता है, परमाणु के केन्द्रक को अपेक्षाकृत संतुलन में बाँधे रखता है,
इस तरह उत्तरोत्तर सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तर का नाभिकीय संतुलन है (उत्तरोत्तर सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तर का केन्द्रक का संतुलन है),
नाभिकीय भौतिकी का यह उदाहरण पूर्णतः तथ्यपरक न होने पर भी संकेत अर्थ में अपौरुषेय ऋत्<नियम के अनुसार ही है,
तुम्हें भी साधनात्मक परिप्रेक्ष्य में नाभिकीय भौतिकी के इस सांकेतिक उदाहरण से अभिप्रेरित होना चाहिए,
तुम्हें तुम्हारी सापेक्षिक बुद्धि के तल पर साधनात्मक परिप्रेक्ष्य में अभिप्रेरित होने के लिए यह सांकेतिक उदाहरण दिया गया है,
(सापेक्षिक बुद्धि के तल पर अपेक्षाकृत तुलनात्मक दृष्टिकोण में ही समझने की तुम्हारी इस विवशता के कारण तुम्हारे लिए इस तरह के सांकेतिक उदाहरण दिए जाते हैं),
नाक के आगे का ठीक केंद्रीय<सहजता का दबाव तुम्हारी दृष्टि को बिखरने से रोकता है, तुम्हारी दृष्टि को अपेक्षाकृत संतुलन में बाँधे रखता है,
इसलिए प्रतिकर्षण के दबाव से उदासीन हो नाक के आगे केंद्रीय सहजता के धनात्मक प्रभाव क्षेत्र में ही तुम्हारा ध्यान रहे,
यह ध्यान रहे प्रतिकर्षण के ऋणात्मक प्रभाव से अधिक प्रबलता आकर्षण के धनात्मक प्रभाव का है,
विवेक रखने वालों के लिए यह संकेत पर्याप्त है, समझदार के लिए इतना इशारा काफी है.........
_जैसे किसी रोग के निवारण के लिए औषधि तथा संयम (दवाई और परहेज) दोनों का साथ-साथ होना जरूरी है,

न ही बिना संयम के (बिना परहेज के) केवल औषधि से (सिर्फ दवाई से) रोग का पूर्णतः निवारण है,
और न ही बिना औषधि के (बिना दवाई के) केवल संयम से (सिर्फ परहेज से) रोग का पूर्णतः निवारण है,
रोग के पूर्णतः निवारण हेतु दोनों के साथ-साथ होने से ही दोनों एक-दूसरे के लिए बल का आधार हैं,
विवेक रखने वालों के लिए यह संकेत पर्याप्त है,
समझदार के लिए इतना इशारा काफी है,
इस संकेत के आधार पर इसी तरह समूलतः भ्रम, संशय, अज्ञान, दुःख भंग हो इसके लिए कुसंग, नशा, झूठ, चोरी, हत्या, व्यभिचार, मद्यपान, जुआ, सूदखोरी, छल, धोखाधड़ी, विश्वासघात, धूर्तता, बेईमानी आदि नकारात्मकता के प्रति उत्तरोत्तर उपेक्षा भी पूर्ण हो,
और साथ ही साथ उत्तरोत्तर सम्यग् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त यथा सहज-सजगता में उत्तरोत्तर संतुलित-स्थिरतापूर्ण ध्यान>समाधि भी पूर्ण हो यह आवश्यक है तभी समूलतः भ्रम, संशय, अज्ञान, दुःख भंग होगा,
सापेक्षिक दबाव में<सापेक्षता में बिखरी हुई दृष्टि का जब नाक के आगे > ठीक केन्द्र में सिमटाव पूरा होता है, तब दाएं-बाएं, आगे-पीछे, ऊपर-नीचे आदि दिशाओं का सापेक्षिक भ्रम भंग हो जाता है, यहाँ-वहाँ की, इधर-उधर की, सब-जगह की, सब-कुछ की भ्रान्ति भंग हो जाती है......
_तुम्हारी ध्यान<दृष्टि सापेक्षिक दबाव में<सापेक्षता में बिखरने से रुके, और उत्तरोत्तर केन्द्रीय स्थिरता पूरी हो इसके लिए तुम्हें संतुलन से गिराने वाले कारण से कार्य की ओर के अनुलोम क्रम के दबाव के प्रति यथा सहज-सजग रहना है ताकि अनुलोम क्रम के दबाव में गिरना न हो,
_ गुण-धर्म का दबाव बहुत ही सूक्ष्म है,
गुण-धर्म के दबाव में ही आत्म-भाव उत्पन्न हुआ है, कर्ता-भाव उत्पन्न हुआ है......
_जैसे आरोपित दृष्टिकोण में ही (शिर्किया नजरिए में ही) अणुओं में पदार्थ के होने का भ्रम हो रहा है,
परमाणुओं में अणु के होने का भ्रम हो रहा है,
इस तरह सूक्ष्म से स्थूलता की ओर उत्तरोत्तर स्थूलतर होते क्रम का भ्रम उत्पन्न हो रहा है,
पर यह भ्रम कोई कोरा भ्रम नही है अपितु इस भ्रम में व्यवहारतः एक नया आयाम भी उत्पन्न हो रहा है जिसके अपने व्यावहारिक नियम भी हैं, अपना प्रभाव भी है,
इसलिए दृष्टा-भाव के रहते, अपेक्षाकृत दृष्टिकोण के रहते सूक्ष्मदर्शी यंत्र से देखने भर से यह भ्रम भंग नही होता है,
सारे प्रचलित वैज्ञानिक दृष्टा-भाव में आबद्ध हैं, अपेक्षाकृत दृष्टिकोण में आबद्ध हैं जो मूल समस्या है, तथ्यतः यथा-स्पष्टता में मूल बाधा है,
दृष्टा-भाव के रहते, अपेक्षाकृत दृष्टिकोण के रहते कदापि तथ्यतः यथार्थ स्पष्टता संभव नही,
दृष्टा-भाव के दबाव में स्थान-समय का अंतराल स्थापित होता है,
दृष्टि की गति स्थापित होती है,
स्थान-समय का अंतर स्थापित होने से, गति स्थापित होने से जो जिस समय जैसा है उस समय से चूकना हो जाता है,
इसलिए तो तुम जब सूर्य को देखते हो तब वह ठीक उसी समय का सूर्य नही होता बल्कि लगभग आठ मिनट पहले का सूर्य होता है,
यद्यपि वह सूर्य भी नही होता बल्कि सूर्य का स्पंदित आभास होता है,
दृष्टा-भाव के दबाव अंतराल में ही अपेक्षाकृत दृष्टिकोण उत्पन्न होता है,
अपेक्षाकृत दृष्टिकोण के सम्मोहन में 'यह सत्य है' का भ्रम उत्पन्न होना स्वाभाविक है,
तुम्हारे सभी प्रचलित धार्मिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक आदि सब 'यह सत्य है' के आरोपित दृष्टिकोण में दिग्भ्रमित हैं,
लोकदृष्टि में प्रचलित गीता-उपनिषद-वेदान्त-पुराण आदि के संस्थापक, सूत्रकार, भाष्यकार, टीकाकार, टिप्पणीकार आदि सब के सब सापेक्षिक दबाव में आरोपित हुए दृष्टिकोण विशेष में ही आबद्ध हैं किसी को भी तथ्यतः यथार्थ स्पष्ट नही है,
दृष्टिकोण विशेष में ही ऐसा है, वैसा है का मत स्थापित होता है,
अपेक्षाकृत<आरोपित दृष्टिकोण में ही कर्ता-भाव के दबाव में आरोप करने की क्रिया के प्रतिक्रियात्मक दबाव में स्वसम्मोहन निर्मित होता है,
और स्वसम्मोहनवश अपना ही आरोपित किया हुआ दृष्टिकोण सत्य भासित होने लगता है < यही भ्रम है,
दृष्टा-भाव से अनिमित्त सहज दर्शनमात्र में दृष्टिकोण स्थापित नही होता,
'यह सत्य है' की भ्रान्ति नही होती,
ऐसा है, वैसा है का दिग्भ्रम नही होता,
बल्कि तथ्यतः यथार्थ परिस्पष्टता है....
कार्य से कारण की ओर उत्तरोत्तर विलोम क्रम का निमित्त पूरा होने पर ही सहजता की पूर्णता है.......

14 Jun 2024

यह जो कुछ भी प्रतीत हो रहा है <
जब तक यह भली-भाँति पूरी तरह से स्पष्ट नही हो जाता,
तब तक इसके प्रति 'यह सत्य है' अथवा 'यह मिथ्या है' का अपेक्षित मताग्रह रखे बिना, कोई प्रमाद किए बिना निरंतर ही < लगातार इसके प्रति यथा सहज-सजग रहो........
_आत्मवाद हो, चाहे अनात्मवाद हो,
ईश्वरवाद हो, चाहे निरीश्वरवाद हो,
द्वैतवाद हो, चाहे अद्वैतवाद हो, कोई भी वाद हो सबका अपना-अपना अपेक्षित दृष्टिकोण है < अपेक्षित मताग्रह है,
अतः सभी तरह के वादों के मध्य परस्पर मतभेद तथा विरोधाभास होना स्वाभाविक है,
ध्यान रहे मूल समस्या अपेक्षित दृष्टिकोण की है,
और आश्चर्य इस बात का है कि इस मूल समस्या की तरफ किसी का ध्यान नही जाता,
सभी अपने-अपने वाद को सत्य सिद्ध करने में तथा अन्य दूसरे वादों को असत्य सिद्ध करने में लगे हैं,
इसी में उलझकर पूरा जीवन व्यर्थ हो जाता है,
अपेक्षित दृष्टिकोण क्या है, इसका क्या कारण है, इसका क्या समाधान है यह स्पष्ट होना आवश्यक है,
आत्म-भाव भावना के स्वसम्मोहनवश ही निमित्त में दृष्टव्यतः दृष्टा-भाव का आरोप हुआ है,
ज्ञातव्यतः ज्ञाता-भाव का आरोप हुआ है, साक्षव्यतः साक्षी-भाव का आरोप हुआ है,
कर्तव्यतः कर्ता-भाव का आरोप हुआ है,
भोक्तव्यतः भोक्ता-भाव का आरोप हुआ है,
दृष्टा-भाव के आरोप में ही दृष्टि का आरोप हुआ है, दृष्टिकोण का आरोप हुआ है,
अपेक्षित दृष्टिकोण के सम्मोहन में ही 'यह सत्य है' की भ्रान्ति होती है,
व्यवहारतः हर कोई 'यह सत्य है' की भ्रान्ति में है,
व्यवहारतः यह एक ऐसा दिग्भ्रम है जिससे स्थापित धर्मों < धर्मग्रंथों के संस्थापक भी नही बच पाए हैं,
{यद्यपि नेति-नेति इति वेदानुशासनम्.....
< यह उपनिषद का सबसे सार-सार्थक संकेत-प्रद वाक्य है, पर सूत्रकार द्वारा आगे अध्यारोप करने से नेति-नेति (न यह - न यह) के इस निषेधमुख वाक्य के अर्थ का अनर्थ ही हो गया,
प्रचलित वेदान्ती ब्रह्म (अपेक्षित मत) को सिद्ध करने के लिए नेति-नेति इस निषेधमुख वाक्य का अपेक्षित उद्देश्य ग्रहण करते हैं,
चूँकि नेति-नेति (न इति - न इति) इस वाक्य से इति (यह) सिद्ध करने पर नेति-नेति की सम्यग् संकेतार्थ प्रासंगिकता नही रह जाती है,
अपेक्षित इति (ब्रह्म इति) सिद्ध करने से जिससे प्रचलित वेदान्तियों की आरोपित दृष्टि-दिग्भ्रम में 'ब्रह्म (इति अर्थात् यह) सत्य है' का अपेक्षित दृष्टिकोण स्थापित होता है < अपेक्षित मताग्रह स्थापित होता है जो यथार्थतः सत्य नही,
यद्यपि नेति-नेति इस निषेधमुख वाक्य से अद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि का मताग्रह रखने वाले प्रचलित वेदान्ती बहुत घबराते हैं,

भीतर से भयभीत होते हैं,
क्योंकि मत असिद्ध होने लगता है....
नेति-नेति कहकर ब्रह्म (इस दृष्टिकोण) का भी निषेध कर दो,
सभी मत अपेक्षाकृत हैं,
उदाहरण के लिए द्वैत के अपेक्षाकृत अद्वैत है, अद्वैत के अपेक्षाकृत द्वैत है,
अतः सभी मतों का निषेध कर दो,
नेति-नेति कहते-कहते जब अपनी तरफ से कहने के लिए कुछ भी नही बचता,
(सबका निषेध होने पर अंततः जब निषेध का भी निषेध हो जाता है),
कोई भी आरोप < अध्यारोप नही बचता,
कोई भी दृष्टि < दृष्टिकोण नही बचता,
तब अपनी तरफ से नही वरन सीधे ही सत्य से सत्य स्पष्ट होता है अन्यथा तब तक अपेक्षित दृष्टिकोण में अपनी तरफ से घोषित 'यह सत्य है' की भ्रान्ति है,
साधक के लिए नेति-नेति < निषेधमुख होने के आधार में अपौरुषेय ऋत् मुख होना आवश्यक है अन्यथा मनमुखी हो भटकना पड़ सकता है,
तथ्यतः जैसा है ठीक वैसा ही निभ्रान्ततः स्पष्ट हो < सम्यग् आग्रह का यह आधार आवश्यक है सम्यग् आग्रह के सकारात्मक प्रभाव में निषेध होने योग्य का सहज ही निषेध हो जाता है,
ध्यान रहे सम्यग् आग्रह कोई मताग्रह नही है,
निभ्रान्त सम्यग् यथार्थ स्पष्ट हो इस निमित्त से पूर्णतः निष्ठापूर्वक समर्पण आवश्यक है,
न ऐसा, न वैसा जैसा है वैसा स्वीकार की निष्ठा ही ठीक अर्थ में सत्य<निष्ठा है,
सम्यग् यथार्थ<निष्ठा का, सम्यग् यथार्थतः जिज्ञासा का आधार होना आवश्यक है,
सम्यग् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त
सम्यग्-सम्यग् यथार्थ ओर ही पूर्णतः समर्पण हो यह आवश्यक है},
_अपेक्षित दृष्टिकोण के रहते कदापि भ्रम, संशय, अज्ञानता से मुक्ति नही,
अपेक्षित दृष्टिकोण ही निभ्रान्त यथार्थ स्पष्टता में बाधा है,
चाहे अद्वैत आदि वेदांतिक दृष्टिकोण हो, चाहे स्याद्वाद का दृष्टिकोण हो, चाहे सत्कार्यवाद का दृष्टिकोण हो, चाहे प्रतीत्य समुत्पाद का दृष्टिकोण हो...कोई भी दृष्टिकोण क्यों न हो < हर दृष्टिकोण का अपना बंधन है,
हथकड़ी सोने की ही क्यों न हो बंधन तो बंधन ही है,
लोकदृष्टि में प्रतिष्ठित गीता-वेदांत आदि कोई भी दृष्टिकोण क्यों न हो अपेक्षित मताग्रह में होने से दिग्भ्रम तो दिग्भ्रम ही है,
लोकदृष्टि में प्रतिष्ठित जितने भी अध्यारोप-ग्रस्त धार्मिक ग्रंथ हैं < भले ही उनमें कितना ही ईश्वरीय होने की घोषणा हो, दावा हो,
वे सभी अपेक्षित दृष्टिकोण में स्थापित हुए कृत्रिमतः गढ़े हुए (झूठे) ईश्वर के नाम पर अज्ञानी मनुष्यों का अपेक्षित दृष्टिकोण है < अपेक्षित मताग्रह है,
अपेक्षित दृष्टिकोण की मिथ्या अहंमन्यता की घोषणा को ईश्वर कहकर सम्यग् ईश्वर की अवमानना मत करो,
अपौरुषेय सनातन ऋत् सद्धर्म ही है जिसमें कोई अध्यारोप नही, कोई अध्यारोपित दृष्टिकोण नही सीधे ही अपौरुषेयतः ऋत् मुखी होने का सीधा मार्ग है,
जब तक ऐसा होना चाहिए, ऐसा हो > ऐसा है यह अपेक्षित आग्रह बना हुआ है,
तब तक कदापि तथ्यतः यथार्थ स्पष्ट नही हो सकता,
जब अपनी तरफ से जरा भी अपेक्षित आग्रह (ऐसा हो, वैसा हो, ऐसा है, वैसा है,) नही रह जाता है, जब अपनी तरफ से अलग से देखना नही रह जाता है,
जब सीधे ही तथ्यतः बस दिखने भर के निमित्त समर्पण पूरा होता है तभी तथ्यतः यथार्थ सत्यता स्पष्ट होती है,
सामान्यतः ऐसा हो, वैसा हो यह अपेक्षित आग्रह रहता ही है, ऐसा है, वैसा है यह अपेक्षित मताग्रह रहता ही है,
अपेक्षित मताग्रह से अनिमित्त हो सीधे ही तथ्यतः बस दिखने भर के निमित्त होने के लिए बहुत ही ज्यादा तैयारी की जरूरत है, बहुत ही ज्यादा ईमानदारी की जरूरत है|

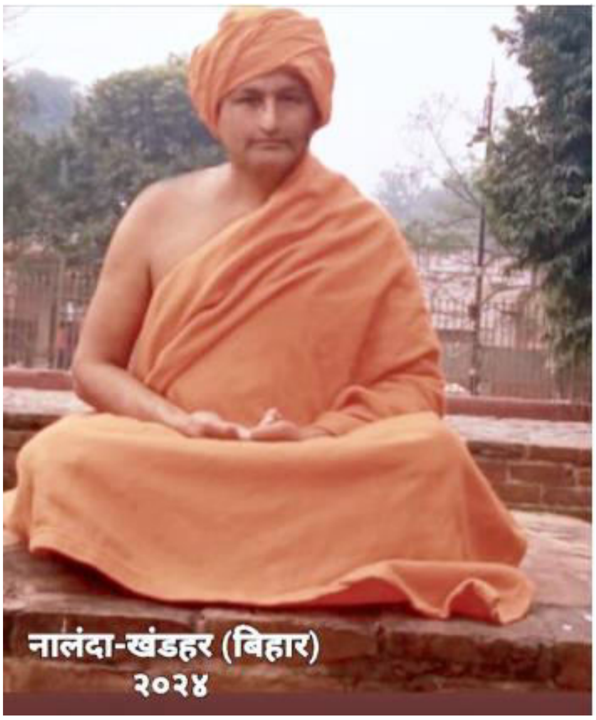

16 Jun 2024 (i)

भावनीय भावना-
पवित्रतापूर्वक परम् पवित्रतम् की उपासना में रहो,
पूरे प्रेमपूर्ण हृदय से, पूरे समर्पित हृदय से अपरिमित परम् महिमापूर्ण की उपासना में रहो,
सम्पूर्ण मन से, सम्पूर्ण बुद्धि से, सम्पूर्ण हृदय से अपरिमित महिमापूर्ण के आगे समर्पित रहो,
(जो) अनादि से अनंत तक एकरस, सदा-सनातन, नित्य-स्थिर है,
(जिसकी) उपस्थितिमात्र से हर बार अपने से पूर्व के अनुसार सबकुछ के बिना सबकुछ हो गया,
(उसी) अपरिमित महिमापूर्ण के आगे दंडवत हो पूर्णतः समर्पित रहो,
जो नाम-रूप आयतन से परे है, आकाश आयतन से परे है, विज्ञान आयतन से परे है,
संस्कार आयतन से परे है, अविद्या आयतन से परे है,
जिसका न कोई आरंभ है, न जिससे किसी का आरंभ है,
जिसमें न आना है, न जाना है, न ही ठहरना है,
जो न आने में है, न जाने में है, न ही ठहरने में है,
जो न आता है, न जाता है, न ही ठहरता है,
जो न किसी से एक है, जो न किसी में शामिल है, जो न किसी में शरीक है,
जिसमें न कोई एक है, जिसमें न कोई शामिल है, जिसमें न कोई शरीक है,
जो न किसी का कारण है, न जिसका कोई कारण है,
जो न किसी का कार्य है, न जिसका कोई कार्य है,
जो न किसी से उत्पन्न है, न जिससे कोई उत्पन्न है,
जो न किसी का स्वरूप है, न जिसका कोई स्वरूप में है,
जिसके न कोई समानता में है, न कोई महिमा में है,
जिसका न कोई अंश है, न जो किसी का अंश है,
जिसका न कोई अवतार है, न जो किसी का
अवतार है,
जिसके जैसा कोई नही, जिसके तुल्य कोई नही,
जो किसी की दृष्टि नही, किसी का दृष्टिकोण नही,
जो वेदांतिक धारणा के कल्पित घोषित हुए ब्रह्म से भी परे है,
जो मन, बुद्धि, वाणी से परे है,

हर बार कितना भी परे कहें उससे भी परे है,
(जो) जैसा है ठीक वैसा ही है जरा भी अन्य नही,
जिस अपरिमित तेजोमय के सामने कोई भी कुछ भी नही, कोई भी कुछ भी नही,
जिसके सामने असंख्यों ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दुर्गा, राम, कृष्ण, बुद्ध, तीर्थंकर, नानक, कबीरा आदि कोई कुछ भी नही है, कोई कुछ भी नही है,
(उसी) अपरिमित महिमामय का महिमा-गान करो, स्तुति-गान करो,
ढोल, मृदंग, डफ, सारंगी बजाकर पूरी भावविभोरता में आह्लादित हो छंदबद्ध < लयबद्ध मधुर स्वर में झूमते हुए स्तुति-गान करो.....
अपेक्षित दृष्टिकोण में आबद्ध साधारण जनों के लिए अपेक्षित दृष्टिकोण में यह एक तरह की भावना योग्य भावनीय भावना है,
सब तरह की भावनीय भावनाओं का निमित्त पूरा होने पर जब भावना योग्य कोई भी भावना शेष नही रह जाती है, तब सहज ही सीधे परम् शान्त > सहज स्थिर ज्ञानमात्र में स्थिति होती है...

16 Jun 2024 (ii)

_अव्यक्त<बीज के दबाव में यों तो बार-बार जन्म-मृत्यु की यह सनातन शृंखला है,
हर बार पूर्व जन्म के अनुसार ही दबाव में फिर से जन्म होता है,
कर्म का साक्षी होने पर ही कर्म-संस्कार (कर्म-बीज) के दबाव में कर्म-चेतना उत्पन्न होती है,
कर्म-चेतना के दबाव में ही फल-भोगने के निमित्त फिर से जन्म होता है,
चूँकि कर्ता-भाव के दबाव में कर्म होता है,
कर्म का साक्षी होने पर अचेतन में साक्षी-भाव के दबाव में कर्म-संस्कार बनता है,
अंतरालरहित दर्शनमात्र में > (ज्ञानमात्र में) साक्षी-भाव स्थापित नही हो पाता,
साक्षी-भाव स्थापित नही होने से कर्म-संस्कार नही बनता है,
चूँकि कर्म-संस्कार के दबाव से ही भव-चक्र की गति है,
इसलिए कर्म-संस्कार नही बनने से अंततः भव-चक्र से मुक्ति हो जाती है.......
_कर्म-संस्कार का आधार अचेतन है,
परिपूर्ण स्पष्ट जागृति में कर्म-संस्कार का आधार अचेतन ही नही रह जाता है,
होश परिपूर्ण हो जाता है, चेतनता परिपूर्ण हो जाती है, जागृति परिपूर्णतः स्पष्ट हो जाती है,
मूर्छा परिपूर्णतः भंग हो जाती है,
कुछ भी अचेतन नही रह जाता है, कुछ भी अस्पष्ट नही रह जाता है, सब-कुछ स्पष्ट हो जाता है,
अहो परम् धन्य, परिपूर्ण परिस्पष्ट पारदर्शिता की ऐसी स्थिति में जरा सा भी न कोई दिग्भ्रम रह जाता है, जरा सा भी न कोई संशय रह जाता है, जरा सा भी न कोई संदेह रह जाता है, जरा सी भी न कोई दुविधा रह जाती है, जरा सा भी न कोई अज्ञान रह जाता है, जरा सा भी न कोई दुःख रह जाता है,
ऐसी परम् धन्यता की स्थिति में ही पूर्णतः पूर्ण मुक्ति है......
_ऐसा कोई काल नही था जब निमित्तमात्र नही था, ऐसा कोई काल नही होगा जब निमित्तमात्र नही होगा,
रूप बदल जाता है, नाम बदल जाता है,
पर निमित्तमात्र कभी नही बदलता,
न निमित्तमात्र का कभी जन्म हुआ, न कभी मृत्यु ही है,
तुम सदा से-सदा तक के लिए बस निमित्तमात्र ही हो,
दर्शनमात्र में मात्र उपस्थित भर होने के लिए बस निमित्तमात्र हो,
यही तुम्हारा सदा-सनातन अकृत्रिम धर्म है,
यह तुम्हारी सदा-सनातन अकृत्रिम भूमिका है,
इससे इतर न तुम्हारा कोई धर्म है, न तुम्हारी कोई भूमिका है,
पर बहुत ही दुःख के साथ कहना पड़ रहा है, यह तुम्हारा दुःखद दुर्भाग्य है कि गुण<धर्म के दबाव में ही अचेतनवश तुम्हें स्वभाव की आधारीय भ्रान्ति हो रही है < स्वरूप की भ्रान्ति हो रही है, द्दष्टा की, ज्ञाता की, साक्षी की, कर्ता की भोक्ता की भ्रान्ति हो रही है, अहमता की, अस्मिता की, ममत्व की भ्रान्ति हो रही है,
जब तक तुम्हें स्वभाव की आधारीय भ्रान्ति हो रही है
तभी तक कदापि कारण स्पष्ट नही हो सकता, तब तक कदापि तथ्यतः यथार्थ स्पष्ट नही हो सकता.......

_गीताकार, उपनिषदकार, पुराणकार आदि सभी अध्यारोपित रचनाकार स्वभाव की भ्रान्ति में होने से तथ्यतः यथार्थ स्पष्टता से वंचित है.......
_गुण<धर्म के दबाव में स्वधर्म से च्युत होकर ही तुम कर्ता बने हो,
क्रिया के लिए उपादान की भूमिका उत्तरदायी नही है अपितु सापेक्षिक दबाव में < सापेक्षता में कर्ता की नैमित्तिक भूमिका ही उत्तरदायी है,
गुणधर्म के दबाव में ही निमित्त में कर्ता-भाव का आरोप हुआ है,
कर्ता-भाव का आरोप होने पर भी निमित्तमात्र उपस्थिति भर की भूमिका इससे अस्पृश्य है,
कर्ता-भाव के प्रतिक्रियात्मक दबाव में स्वसम्मोहनवश आरोपित भोक्ता-भाव के व्यावहारिक तल पर ही दुख होता है,
_गुण<धर्म के अपेक्षित दबाव में कर्ता बनने पर ही तुम कर्म-फल के बंधन में दुःखद भव-चक्र में पड़े हुए हो,
पर ध्यान रहे तुम कर्ता नही हो,
फल की इच्छा न रखते हुए कर्म करो ऐसा कहना यद्यपि व्यवहारतः अयुक्त है,
तुम्हें यही कहा जाता है सकारात्मक उद्देश्य के साथ कर्म का निमित्त पूरा करो,
कारण से कार्य की ओर के अनुलोम क्रम के दबाव में सूक्ष्म से स्थूलता की ओर क्रमशः स्थूलतर होते कर्म-स्थान में गिरना स्वाभाविक है........
_कर्ता-भाव के दबाव में कर्म-स्थान से च्युत होने पर प्रतिकर्म के स्थान में गिरना होता है,
प्रतिकर्म के स्थान से च्युत होने पर प्रति-प्रतिकर्म के स्थान में गिरना होता है,
और प्रति-प्रतिकर्म के स्थान से ही पुनः फिर से कर्म का आरंभ होता है,
अज्ञानी जनों का कर्म-स्थान से च्युत होना स्वाभाविक है,
क्योंकि अज्ञानी जनों की अचेतन के वशीभूत संबंधित कर्म में स्थिति होती है मात्रज्ञान में नही,
संबंधित क्रिया में > (संबंधित कर्म में) स्थिति होने पर फल के प्रतिक्रियात्मक दबाव में गिरना स्वाभाविक है,
मूर्छा से जगे हुए ज्ञानी जनों की संबंधित क्रिया में नही > (संबंधित कर्म में नही) वरन क्रिया के बस ज्ञान में स्थिति होती है,
दबावरहित > अक्रिय सहज ज्ञानमात्र से कर्म-फल के बंधन में गिरना संभव नही,
ध्यान रहे निमित्त की उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका न कर्म है, न प्रतिकर्म है, न प्रति-प्रतिकर्म है, न अन्योन्यकर्म है,
अगर तुम ध्यान में बैठो तो तुम्हारी वहाँ बस सीधे उपस्थिति भर ही होती है, तुम्हें अलग से कुछ भी नही करना होता है, न तुम्हें श्वास को लाना होता है, न तुम्हें श्वास के ज्ञान को लाना होता है,
सहज ही श्वास का ज्ञान हो रहा है,
अलग से आरंभ किए बिना ही अनारंभ से ही जो जहाँ होना चाहिए अपनी जगह पर सहज ही स्थित है......
तुम्हारा उपस्थित भर होना, श्वास का ज्ञात भर होना सीधे एक ही सीध में हो रहा है,
यथा-स्थिति भंग न हो इसके लिए अलग से तुम्हें कुछ भी नही करना,
तुम्हारे यथा-स्थिति से इतर अलग से कुछ करने से यथा-स्थिति भंग हो जाती है,
यथा सहजतापूर्वक सजग हो उपस्थित भर होने से यथा-स्थिति भंग नही होती है,
यथा-स्थिति भंग नही होने से यथा-स्थिति स्पष्ट हो जाती है,
यथा सहजता में उपस्थित भर होना स्पष्ट हो जाता है, यथा सहजता में दिखना भर होना स्पष्ट हो जाता है, यथा सहजता में ज्ञात भर होना स्पष्ट हो जाता है,
ऐसी सहज स्थिति में ही निभ्रान्त यथार्थ स्पष्टता है,
पर तुम्हें लोकदृष्टि में प्रचलित कृत्रिम ध्यान विधियों से सावधान होना है,
जप से, नाम-रूप की भावना से, क्रिया<योग आदि कृत्रिमता से सावधान रहना है.......
_ध्यान रहे योगी योगभ्रष्ट हो सकता है,
पर ज्ञानी ज्ञानभ्रष्ट नही हो सकता,
क्योंकि अक्रिय-अकृत्रिम ज्ञानमात्र की स्पष्टता में सहज ही होश पूरा होता है, जागृति पूरी होती है, सहजता पूरी होती है, सरलता पूरी होती है, स्थिरता पूरी होती है, शान्ति पूरी होती है,
इसलिए गिरना नही होता है,
ज्ञानमात्र से इतर अलग से आरंभ करने पर ही दबाव में गिरना होता है,
अलग से कुछ भी आरंभ किए बिना ही यथा-स्थिति में यथा सहज-सजग रहते हुए बस उपस्थित भर रहना है,
लोकदृष्टि में प्रचलित सैद्धांतिक दृष्टिकोण के अनुसार गुणों के तीन भेद हैं < सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण,
पर व्यवहारिक प्रयोग में गुणों के तीन भेद हैं < धनात्मकता, ऋणात्मकता, उदासीनता,
जिसका प्रभाव आकर्षण, प्रतिकर्षण, प्रति-प्रतिकर्षण के व्यवहारिक प्रयोग में दिखता है,

आकर्षण तथा प्रतिकर्षण के मध्य प्रति-प्रतिकर्षण की भूमिका के बिना संतुलन नही बन सकता,
तुम्हें ध्यान अभ्यास में संतुलन-पूर्वक स्थिरता के लिए इस संकेत से अवश्य ही अभिप्रेरित होना है,
दृष्टा नही, दृष्टि नही, दृष्टिकोण नही वरन सीधे ही दर्शनमात्र के निमित्तमात्र हो जाओ,
तथ्यतः बस दिखने भर के निमित्त स्थिति हो जाए तुम्हारा कल्याण है, तुम्हारा मंगल है....

18 Jun 2024

मुख के ऊपरी भाग में नाक के ठीक आगे भली-भाँति संज्ञानपूर्वक स्थिर रहो,
जरा भी दाएं-बाएं नही होना,
नाक के ठीक आगे का ठीक मध्य ही ब्रह्मांड का केन्द्र है,
नाक के ठीक आगे के ठीक मध्य में जब दृष्टि का सिमटाव हो जाता है,
तब ब्रह्मांड की आधारीय सच्चाई खुल जाती है < असलियत खुल जाती है,
तुम्हारी दृष्टि बिखरी हुई है,
इसलिए तुम्हें दाएं-बाएं, आगे-पीछे, ऊपर-नीचे का आभास हो रहा है,
दृष्टि का सिमटाव होते ही यह भ्रान्ति भंग हो जाती है,
यह जो विश्व-ब्रह्मांड का अंतहीन फैलाव प्रतीत हो रहा है,
दृष्टि का सिमटाव होते ही इसकी भ्रान्ति भंग हो जाती है,
जब बिखरी पड़ी हुई दृष्टि का अपने ठीक केन्द्र में सिमटाव पूरा होता है,
तब सीधे ही अंतरालरहित दर्शनमात्र स्पष्ट हो जाता है,
अंतरालरहित दर्शनमात्र में सहज ही तथ्यतः निभ्रान्त यथार्थता स्पष्ट है,
उत्तरोत्तर सीधे से सीधे के सूक्ष्म से सूक्ष्म केन्द्र की ओर दृष्टि का सिमटाव होते-होते अंततः सबसे सूक्ष्म केन्द्र (सबसे सूक्ष्म अंतराल) में जब दृष्टि का सिमटाव पूर्ण हो जाता है, तब मध्य का अंतराल नही होने से दृष्टिकोण स्थापित नही होता है
अन्यथा तब तक दृष्टिकोण का स्थापित होना स्वाभाविक है,
सबसे पहले श्वास के आने-जाने के मध्य > अंतराल में बाह्य दृष्टि का सिमटाव पूरा हो,
तब फिर चित्त के बीतने तथा उत्पन्न होने के मध्य > अंतराल में अंतः दृष्टि का सिमटाव पूरा हो यह आवश्यक है,
तभी अंतरालरहित यथार्थ स्पष्ट होगा....

20 Jun 2024

_सुगत (गौतम बुद्ध) को जो बोध हुआ < वह भी दृष्टिकोण ही है न कि पूर्णतः यथा-स्पष्टता......
_दृष्टिकोण में 'यह सत्य है' की भ्रान्ति होना स्वाभाविक है,
इसलिए दृष्टिकोण-विशेष से सावधान होना बहुत ही आवश्यक है,
चाहे बुद्ध हो, चाहे तीर्थंकर हो, चाहे कृष्ण हो.....
हर किसी का अपना-अपना दृष्टिकोण है,

सामान्यतया हर किसी का अपना-अपना अपेक्षित दृष्टिकोण है,
सामान्यतया हर कोई दृष्टिकोण-विशेष के सम्मोहन में दिग्भ्रमित है,
सामान्यतया हर किसी को सम्मोहनवश 'यह सत्य है' की भ्रान्ति है, ऐसा है, वैसा है, ऐसा नही है, वैसा नही है की भ्रान्ति है,
अंतरालरहित दर्शनमात्र के निमित्त ही 'यह सत्य है' की भ्रान्ति भंग होती है,
अपेक्षाकृत तुलनात्मक दृष्टिकोण के दबाव में ही ऐसा है, वैसा है का अध्यारोप स्थापित होता है,
(चाहे कोई ब्रह्म की घोषणा करे, अथवा कोई भी घोषणा करे वह उसका अपेक्षित दृष्टिकोण है न कि यथार्थतः सत्य),
गौतम बुद्ध को जो बोध हुआ < वह दुःख निरोध के अपेक्षित दृष्टिकोण में ही है,
बुद्ध को दुःख का अपेक्षाकृत कारण तो स्पष्ट था, पर अपेक्षाकृत कारण का आधार स्पष्ट नही था,
इसलिए बुद्ध ने अपौरुषेयता के आधार को स्वीकार नही किया,
अपौरुषेयतः उपस्थितिमात्र की सदा-अपरिवर्तित < नित्य-स्थिर आधारीय भूमिका स्वीकार न कर अनित्यवादी, अनात्मवादी, अनीश्वरवादी होने में बुद्ध का कोई दुराग्रह नही था बल्कि यह उसकी ईमानदारी थी.......
_अपौरुषेयतः उपस्थितिमात्र का आधार स्पष्ट नही होने पर भी अपेक्षाकृत कारण के दृष्टिकोण से अनित्यवाद, अनात्मवाद, अनीश्वरवाद का सिद्ध होना स्वाभाविक है,
अतः अपेक्षाकृत कारण के दृष्टिकोण से यह कोई मिथ्यादृष्टि भी नही है,
अपेक्षाकृत कारण के दृष्टिकोण से प्रतीत्य समुत्पाद का नियम ऐसा होने पर ऐसा होता है < यह अनुलोम क्रम सिद्ध होता है,
पर अपौरुषेय उपस्थितिमात्र का आधार स्पष्ट नही होने से प्रतीत्य समुत्पाद का मत आधारहीन सिद्ध होता है,
हेतु-प्रत्यय के दबाव में आधारीय उपस्थितिमात्र की भूमिका निमित्त-कारण की है,
इसके बिना प्रतीत्य समुत्पाद का मत अपूर्ण है,
_सामान्यतः हिन्दुओं ने अपौरुषेय सनातन ऋत्<धर्म से इतर अपेक्षित दृष्टिकोण में कृत्रिमतः मिथ्या ईश्वर आदि को स्थापित कर अपौरुषेयता की अवमानना की है,
सही ईश्वर की अवमानना की है,
इससे अच्छा तो बुद्ध की तरह नास्तिक होना अच्छा है ताकि कम से कम अवमानना तो न हो.........
_हिन्दुओं के आत्मवाद, ईश्वरवाद की अपेक्षा में बौद्धों का अनात्मवाद, अनीश्वरवाद का स्थापित होना लोक में सापेक्षिक संतुलन के निमित्त है,
(लोक में परस्पर विरोधी मतों का होना लोक में सापेक्षिक संतुलन के निमित्त है),
दर्शनमात्र में उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका से इतर होने पर ही आत्मवाद अथवा अनात्मवाद का दृष्टिकोण उत्पन्न होता है.........
न गीता-उपनिषद आदि का आत्मवाद, न ही
बौद्धों का अनात्मवाद,
दोनों ही मतों से निष्पक्ष हो ठीक मध्य की पूर्णतः संतुलित आधारीय भूमिका में स्थिर रहो,
न संबंधित ईश्वरवाद, न अनीश्वरवाद,
दोनों ही अपेक्षाकृत दृष्टिकोणों से अनिमित्त हो सदा-अपरिवर्तित > पूर्णतम् अपौरुषेय आधार के प्रति समर्पित रहो,
दृष्टा-भाव से अनिमित्त, दृष्टि से < दृष्टिकोण से अनिमित्त दर्शनमात्र में उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका ही आत्मवाद तथा अनात्मवाद दोनों ही मतों के ठीक मध्य की संतुलनपूर्ण आधारीय भूमिका है,
आत्मवाद तथा अनात्मवाद के सापेक्षिक संतुलन का आधार बस उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका ही है......
_बुद्ध को जिस अर्थ में जो स्पष्ट हुआ, जितना स्पष्ट हुआ उससे अन्यथा नही कहा,
यह बुद्ध की ईमानदारी का परिचय है < इससे तुम्हें भी अवश्य ही अभिप्रेरित होना चाहिए,
अगर बुद्ध को अपौरुषेय ऋत्<नियम स्पष्ट होता तो अपौरुषेयतः सनातन ऋत् सद्धर्म से इतर अनित्यवादी, अनात्मवादी, अनीश्वरवादी दृष्टिकोण में बौद्ध मत स्थापित नही हो पाता,
मिथ्या घोषणा करके < (झूठा दावा करके) दूसरों को कभी धोखा नही देना, दूसरों को कभी दिग्भ्रमित नही करना,
अगर इस अर्थ में तुम ईमानदार नही हुए
तो इसमें तुम्हारी ही हानि है तुम्हारी कदापि भ्रान्ति भंग नही होगी, दिग्भ्रम भंग नही होगा..........
यह इस देश का दुर्भाग्य है कि यहाँ कोई भी धूर्त, पाखंडी, झूठा < सिरफिरा आकर ईश्वर, अवतार आदि कुछ भी घोषणा कर देता है, कुछ भी दावा कर देता है,
और लोग भी इतने मूर्ख हैं, बेवकूफ हैं कि उसकी झूठी घोषणा पर विश्वास कर लेते हैं, उसके झूठे दावे पर यकीन कर लेते हैं,

बुद्ध प्रेरित प्रचलित बौद्ध धर्म में जो अनित्यवाद, अनात्मवाद, अनीश्वरवाद का अपेक्षित दृष्टिकोण बना हुआ है < इससे भी तुम्हें सावधान रहना है,
अगर कोई यथार्थतः सत्य के प्रति ईमानदार है तो कोई भी अपेक्षित दृष्टिकोण बन ही नही सकता,
बिना कुछ भी आरोप किए, बिना कुछ भी स्थापित किए सीधे ही तथ्यतः दर्शन के निमित्त होने में ही पूरी ईमानदारी है,
किसी भी संबंध में न दृष्टा रह जाए,
न दृश्य रह जाए बस केवल दर्शन भर रह जाए, न ज्ञाता रह जाए, न ज्ञेय रह जाए बस केवल ज्ञान भर रह जाए < संयमित ध्यान की पराकाष्ठा है,
जब देखना नही रह जाता, दृश्य नही रह जाता बस सीधे ही बिना किसी अंतराल के बस दिखना भर रह जाता है तभी संयमित ध्यान की पूर्णता है,
इतना संयम हो जाए कि विशुद्धतः बस केवल बस केवल दिखना भर ही रह जाए किसे दिख रहा है, क्या दिख रहा है < यह नही रह जाए,
तभी तुम्हारा जीवन धन्य है.........
_लोकप्रचलित मान्यता के अनुसार प्राचीन काल में जंबूद्वीप में पवित्र सूर्यवंश के पुरुष स्वप्न में भी परस्त्री का स्मरण तक नही करते थे,
और स्त्रियाँ स्वप्न में भी परपुरुष का स्मरण तक नही करती थीं,
उस समय आर्य-कन्या जिसे भी पहली बार वरण कर लेती थी < वही उसका जीवन भर के लिए पति होता था < उससे जरा भी उसका तन-मन किसी भी अन्य पुरुष की तरफ नही जाता था,
(यह दुःख की बात है कि नियोग जैसी घृणित कुप्रथा > (व्यभिचार) का समर्थन कर दयानंद ने < दयानंदियों ने आर्य-संस्कृति का अपमान किया है),
उपरोक्त व्यावहारिक संयम की, अव्यभिचारिणी निष्ठा की, पवित्रता की जितनी भी सराहना की जाए कम है,
इससे तुम्हें अवश्य ही अभिप्रेरित होना चाहिए,
जब तुम्हारा भी व्यावहारिक संयम तथा पवित्रता इतनी होगी तभी इससे आगे फिर दर्शनमात्र में तुम्हारा संयम हो सकता है अन्यथा नही.........
_जब तक तुम्हारी व्यावहारिक सत्यता, संयम, पवित्रता पूर्ण नही हो जाती,
तब तक कदापि सहज दर्शनमात्र में >
(सहज ज्ञानमात्र में) सहज उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका स्पष्ट नही है,
_दर्शनमात्र ही रह जाए बस,
दर्शनमात्र से इतर न दृष्टि रह जाए, न दृष्टिकोण रह जाए < यह संयम की पराकाष्ठा है, संतुलन की पराकाष्ठा है, स्थिरता की पराकाष्ठा है, शुद्धि की पराकाष्ठा है, पवित्रता की पराकाष्ठा है......

22 Jun 2024

_तथ्यतः सत्य का मार्ग स्पष्ट नही होने पर कृत्रिमतः भावना में भावित होने की विवशता रहती है,
सारा सम्मोहन ही कृत्रिमता का है, प्रतिकर्मात्मक दबाव का है,
प्रतिकर्मात्मक दबाव में सम्मोहन का उत्पन्न होना स्वाभाविक है,
तथ्यतः यथार्थ में कदापि सम्मोहन संभव नही,

कृत्रिमतः भावना में भावित होने पर सम्मोहन का उत्पन्न होना स्वाभाविक है,
और सम्मोहन में ही 'यह सत्य है' की भ्रान्ति होती है,
जो सम्मोहन में है उसे अपना सम्मोहन नही दिखता,
अगर दिख जाता तो 'यह सत्य है' की भ्रान्ति होती ही नही सीधे ही तथ्यतः यथार्थ स्पष्ट होता,
अपेक्षाकृत < (सापेक्षिक) दबाव में कर्ता-भाव के वशीभूत ही कर्म होता है,
और कर्म के होने पर प्रतिकर्मात्मक दबाव में फल के लिए सम्मोहन उत्पन्न होता है,
फल के लिए सम्मोहन उत्पन्न होने पर ही फल भोगने के लिए भोक्ता-भाव उत्पन्न होता है......
_अपेक्षाकृत < (सापेक्षिक) दबाव में ही आरोप करने की विवशता होती है,
आत्म-अनात्म, ब्रह्म-शून्य, द्वैत-अद्वैत आदि आरोप करना भी कर्म ही है > क्रिया ही है जिसके प्रतिक्रियात्मक दबाव में स्वसम्मोहनवश उसके सत्य होने की भ्रान्ति होती है........
_तथ्य की तरफ से कोई आरोप नही, कोई प्रत्यारोप नही,
तथ्य की तरफ से कोई भ्रान्ति नही, कोई दिग्भ्रम नही,
तथ्य की तथ्यता निभ्रान्त यथावत् स्पष्ट है,
अपनी तरफ से देखना नही,
क्योंकि अपनी तरफ से देखने में तुम्हारा अपनी तरफ से ऐसा है, वैसा है का आरोप होना स्वाभाविक है,
इसी से दृश्य का भ्रम खड़ा है,
जब तक द्रष्टा है तभी तक दृश्य का भ्रम भी हो रहा है,
दर्शनमात्र के निमित्त होने पर अर्थात् बिना किसी अंतर के सीधे ही बस दिखने भर के निमित्त होने पर दृश्य का भ्रम खड़ा नही होता,
जब तक दृश्य भासित हो रहा है,
तभी तक भ्रान्ति हो रही है, तभी तक दिग्भ्रम हो रहा है,
अज्ञानी को ही दृश्य भासित होता है ज्ञानी को नही.......
_दृश्य की, दृष्टव्यतः द्रष्टा की भ्रान्ति भंग होना
सबसे बड़ा सौभाग्य है,
तथ्यतः यथार्थ स्पष्टता में न आरोप-कर्ता द्रष्टा है, न आरोपित दृश्य ही है,
सापेक्षिक दबाव के वशीभूत ही द्रष्टा-दृश्य सत्य लग रहा है,
द्रष्टा के नही रहने से तुम्हारा अहम् नही रह जाता है, तुम्हारा अहंकार नही रह जाता है,
तुम्हारा बस निमित्तमात्र उपस्थित भर होना ही रह जाता है,
जो सहज सिद्ध नही है बल्कि दबाव में आरोपित > (स्थापित) है < पूर्णतः जागरण में उसका भंग होना स्वाभाविक है,
भ्रान्तिवश जो कुछ भी तुम अपने को मान रहे हो < उसे भंग होना ही चाहिए,
इसी में तुम्हारा सही अर्थ में मंगल है, सही अर्थ में कल्याण है......
कोई स्वयं को जीव कहे, आत्मा कहे, ब्रह्म कहे.....कुछ भी कहे यह उसके अपेक्षित दृष्टिकोण का भ्रम है तथ्यतः यथा-सत्य नही........
_घबराने की बात नही तुम्हारे द्वारा आरोपित किया हुआ तुम्हारा आरोपित होना ही भंग होता है उपस्थित भर होना भंग नही होता,
जो सहज सिद्ध है तुम्हारे द्वारा आरोपित नही है < (वह) भंग नही होता,
दर्शनमात्र सहज सिद्ध है तुम्हारे द्वारा आरोपित नही है,
दर्शनमात्र में तुम्हारा उपस्थित भर होना सहज सिद्ध है तुम्हारे द्वारा आरोपित नही है,
दर्शनमात्र में उपस्थिति भर की तुम्हारी निमित्तमात्र भूमिका सहज सिद्ध है तुम्हारे द्वारा आरोपित नही है,
इसलिए भंग होना पूर्णतः असंभव है,
जो कुछ भी दबाव में आरोपित है,
पूरे होश में जगने पर उसका भंग होना स्वाभाविक है,
सदा से सदा तक नित्य-स्थिर उपस्थित भर होने की अपनी निमित्तमात्र भूमिका को याद रखो,
तुम्हारा धर्म न हिन्दू है, न इस्लाम आदि,
तुम्हारा धर्म है > निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होना,
यही मनुष्यमात्र का धर्म है......
_अगर हर मनुष्य को उसका सहज सिद्ध धर्म स्पष्ट हो जाए तो इससे अच्छा कुछ भी नही है, तब मनुष्यों में परस्पर कोई मतभेद नही रह जाएगा, विरोधाभास नही रह जाएगा,
ईर्ष्या, द्वेष, कटुता, वैमनस्य, शत्रुता आदि कोई भी नकारात्मक भाव नही रह जाएगा,

सही अर्थ में सतयुग की कल्पना साकार हो जाएगी........
_अनीश्वरवादी होने से भी सावधान रहो,
और साथ ही कृत्रिमतः अध्यारोपित ईश्वरवादी होने से भी सावधान रहो,
अपौरुषेयतः ऋत् मुखी रहो,
सम्यग् ईश्वर की शरणागति स्वीकार करो,
जो अपौरुषेयतः ऋत् मुखी है वही सही अर्थ में सनातन धर्मी है,
जो कहते हैं मृत्यु के उपरांत अस्तित्व मिट जाता है, न इससे पहले कोई जन्म (पूर्वजन्म) था, न आगे कोई जन्म (पुनर्जन्म) है < यह दृष्टिकोण उद्देश्यहीन तथा घातक है.......
_हर बार जन्म से पहले ही, जन्म के समय, मृत्यु के समय, मृत्यु के पश्चात उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका सहज सिद्ध है,
उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका का न कभी आरंभ है, न कभी अंत है,
तुम्हारा निमित्तमात्र उपस्थित भर होना सदा-सनातन < (अनादि-अनंत), नित्य-स्थिर है,
निमित्तमात्र उपस्थित भर होने का कभी भी अभाव नही है, सामान्यतः निमित्तमात्र उपस्थित भर होना तुम्हें इतना ही स्पष्ट है कि जिससे तुम्हारी जीने भर की औपचारिकता पूरी हो सके,
पर जब स्थिरता का निमित्त पूरा होता है तो निमित्तमात्र उपस्थित भर होना पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है,
निमित्तमात्र उपस्थित भर होने की पूर्ण स्पष्टता में ही भ्रम, संशय, अज्ञानता, दुःख से पूर्णतः मुक्ति है........
तुम्हें अलग से कुछ भी आरंभ नही करना,
क्योंकि निमित्तमात्र उपस्थित भर होना अनारंभ से ही है......
_नासिकाग्र की सीध के आधार से उत्तरोत्तर सीधे से सीधे हो संतुलन-पूर्वक स्थिरता का निमित्त पूरा करना है,
संतुलनपूर्ण स्थिरता के निमित्त सबसे पहले श्वास के ज्ञानमात्र का अवलंबन ग्रहण करो,
फिर चित्त के ज्ञानमात्र का अवलंबन ग्रहण करो...
जब तक किसी भी संदर्भ में बस ज्ञानमात्र न रह जाए तब तक अभ्यास के निमित्त बने रहो,
अक्रिय<अकृत्रिम सहज सिद्ध ज्ञानमात्र की पूर्णतः परिस्पष्ट पारदर्शिता में कोई भी भ्रान्ति नही, कोई भी संशय नही, कोई भी संदेह नही, कोई भी दुविधा नही, कोई भी अज्ञानता नही, कोई भी दुःख नही....

24 Jun 2024

जब तक फल प्राप्ति के लिए पूर्ण नैमित्तिक योग नही बनता तब तक फल की प्राप्ति नही होती,
किसी भी जन्म के कर्म का फल किसी भी जन्म में प्राप्त हो सकता है,
जैसे किसी को १० वर्ष की सजा हो जाती है जिसका कि कोई पाप उसने इस जन्म में किया ही नही,
इसमें तुम कह सकते हो < यह तो सरासर अन्याय है,
पर यह अन्याय नही है,
क्योंकि किसी और जन्म के पाप-कर्म का फल नैमित्तिक योग नही बनने के कारण जो उसे अभी तक नही मिल पाया < वह अब इस जन्म में नैमित्तिक योग पूरा होने पर मिल जाता है,
समझदार के लिए यह इशारा काफी है,
जिन स्थापित धर्मों में एक ही बार का जन्म होना सिद्ध है,
कोई उनसे पूछे > यह जो जन्मजात अपंग है, अंधा है यह किस पाप-कर्म का फल है,
इसमें वे यही कहेंगे इस जन्म से पहले जब इसका कोई जन्म था ही नही तो कब का और कैसा पाप-कर्म यह तो खुदा की मर्जी है,
खुदा जिसे चाहे अंधा, लूला, बहरा पैदा करे,
जिसे चाहे अच्छा खासा तंदुरुस्त पैदा करे < यह खुदा की मर्जी है,
जिसे चाहे सीधा रास्ता दे दे, जिसे चाहे गुमराह कर दे,
इस तरह तो उनका खुदा (उनके नजरिए का खुदा) तो अन्यायी तथा पक्षपाती ही सिद्ध होता है,
पर इस तरह से अन्याय करने वाला, पक्षपात करने वाला ऐसा कोई ईश्वर है ही नही, ऐसा कोई खुदा है ही नही यह उनका दृष्टिकोण है, यह उनका नजरिया है,
कार्य-कारण की न्यायपूर्ण संतुलित अनुशासनबद्ध सुव्यवस्था में ऐसे किसी भी अतिरिक्त कर्ताविशेष (पुरुषविशेष) का हस्तक्षेप नही है जिससे अन्याय सिद्ध होता हो, पक्षपात सिद्ध होता हो,
कर्म-फल<सिद्धांत की शुद्धि के निमित्त बुद्ध तथा महावीर को अतिरिक्त हस्तक्षेप के अर्थ में ईश्वर के संदर्भ को अस्वीकार करना पड़ा.....

_अपेक्षाकृत दबाव में ही कर्ता-भाव उत्पन्न होता है,
सृष्टिकर्ता ईश्वर की मान्यता कर्ता-भाव के दबाव में ही आरोपित है,
अपेक्षाकृत दृष्टिकोण के अंतराल में ही अपेक्षित सृष्टिकर्ता का आरोप सिद्ध होता है,
दर्शनमात्र में किसी भी अपेक्षित सृष्टिकर्ता का आरोप सिद्ध नही होता,
उपस्थितिमात्र की भूमिका बिना किसी दबाव के सहज सिद्ध है,
अंतरालरहित उपस्थितिमात्र में कौन उपस्थित है < अपेक्षित दृष्टिकोण अंतराल ही स्थापित नही होता,
इसलिए आत्मा, ब्रह्म आदि जो भी तुम कहते हो < वह अपेक्षित दृष्टिकोण के अंतराल में ही सिद्ध है अंतरालरहित दर्शनमात्र में नही,
दर्शनमात्र से इतर अपेक्षाकृत दबाव में गिरने पर ही पतित शास्त्रकारों ने अपेक्षित दृष्टिकोण में शास्त्रों की रचना की.....
_वह खुदा भी क्या खुदा < जो कहने का मोहताज है < कहता है 'कुन'
हो जा > तो हो जाता है < ऐसा खुदा अपेक्षित दृष्टिकोण के अंतराल में ही सिद्ध है अंतरालरहित दर्शनमात्र में नही,
खुदा कहने की अपेक्षा अपौरुषेय कहना संकेतप्रद है,
अपौरुषेयतः > अंतरालरहित बस उपस्थित भर होने से ही कुछ भी नही से सब-कुछ के बिना सब-कुछ है < यह अंतरालरहित अपरिमित महिमा का संकेत है.......
_आत्म-अनात्म, ब्रह्म-शून्यता, ईश्वर-अनीश्वर, द्वैत-अद्वैत आदि अपेक्षाकृत मतों से सावधान रहो,
इतना अधिक संयम हो जाए कि अपनी तरफ से कुछ भी स्थापित न होने पाए,
जब अपनी तरफ से कुछ भी स्थापित नही होता < ऐसी पूर्णतः पूर्ण पवित्रता में सहज ही सीधे अंतरालरहित यथा-सत्य से अंतरालरहित यथा-सत्य स्पष्ट है,
आत्मा-ब्रह्म आदि ये सब तुम्हारे अध्यारोपग्रस्त मताग्रही शास्त्रकारों ने कहा है तथ्यतः कुछ नही कहा गया,
तथ्यतः अभिप्रेरित रहो तभी आत्मा-ब्रह्म इत्यादि अध्यारोपित आग्रह से मुक्ति है,
मिथ्यादृष्टि में आरोपित कृत्रिमतः आत्म-अनात्म, ईश्वर-अनीश्वर, द्वैत-अद्वैत आदि सापेक्षिक विरोधाभास से सावधान रहने की आवश्यकता है.......
_ध्यान रहे बुद्ध, महावीर का ईश्वर को स्वीकार न करना प्रतिक्रियात्मक दबाव का ही परिणाम था,
प्रचलित ईश्वरवाद के अपेक्षाकृत प्रतिक्रियात्मक दबाव में आकर इन्होंने अपौरुषेयतः सहज आधार को ही अस्वीकार कर दिया,
अपौरुषेयतः उपस्थितिमात्र के सदा-अपरिवर्तित, नित्य-स्थिर आधार पर ही कार्य-कारण की, कर्म-फल की सनातन ऋत्<अनुशासनबद्ध न्यायपूर्ण संतुलित सुव्यवस्था है,
इसलिए आलस्य-प्रमाद को त्यागकर परम् पूर्णतम् आधार के प्रति समर्पित रहते हुए उत्तरोत्तर सम्यग् अभ्यास का निमित्त पूरा करना है,
{सामान्यतः तुम्हें पक्षपातपूर्ण कृत्रिम ईश्वर की उपेक्षा कर पक्षपातरहित न्यायपूर्ण सम्यग् > (सही-सही) ईश्वर के प्रति निष्ठापूर्वक समर्पित रहना है,
और मनमुखी होने से, पथभ्रष्ट होने से, नास्तिक होने से बचना है}.....
जब तक फल भोगने के लिए हर ओर से निमित्तों का योग पूरा नही हो जाता तब तक फल भोगना रह जाता है,
सब ओर से नैमित्तिक योग बनने में कई जन्म भी लग सकते हैं,
कर्म का निमित्त अधिकार तो तुम्हारे पास है पर फल पर तुम्हारा इच्छित
अधिकार नही है,
अतः सम्यग् समर्पण में रहते हुए ही उत्तरोत्तर सम्यग् कर्म का निमित्त पूरा करते जाओ,
सम्यग् समर्पण का तात्पर्य मात्र सही-सही ओर ही समर्पित होने से है,
सम्यग् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त सम्यग् यथार्थ ओर ही जो समर्पण है < सम्यग् समर्पण है,
तथ्यतः यथार्थ स्पष्टता के निमित्त यथा सहज-सजग रहो,
कर्म-फल की न्यायपूर्ण सुव्यवस्था में जरा भी हेर-फेर नही है, जरा भी अन्याय नही है,
किए गए कर्म का फल अपौरुषेयतः ऋत्<व्यवस्था से सुनिश्चित है,
साधारण जन कृत्रिमतः भावना में भावित होने के लिए विवश हैं,
लोक में जितने भी मत हैं < सब कृत्रिमतः भावना ही है,
जो जिस मत में है उसके प्रति पूरी नैष्ठिकता से रहने पर, पूरी ईमानदारी से रहने पर उस अवलंबित मत के निमित्त विकास को पूरा कर उस पहले मत की अपेक्षा शुद्ध मत में प्रवेश करता है,
इस तरह उत्तरोत्तर शुद्ध से शुद्ध मत में प्रवेश करते हुए अंततः ज्ञानमात्र ही रह जाता है,
_अज्ञानी सांसारिक स्पर्श में लिप्त रहता है,
ज्ञानी की ज्ञानमात्र के निमित्त ही जल-कमलवत् सहज स्थिति रहती है,

जीवन में रहते हुए भी जीवन से अस्पृश्य, अलिप्त.... जीते जी मुक्ति......
दृष्टिकोण के अंतराल में ही तुम मत को (द्वैत-अद्वैत आदि मत को) स्थापित कर सकते हो,
अंतरालरहित दर्शनमात्र में > (ज्ञानमात्र में) नही, कदापि कभी भी नही....

26 Jun 2024

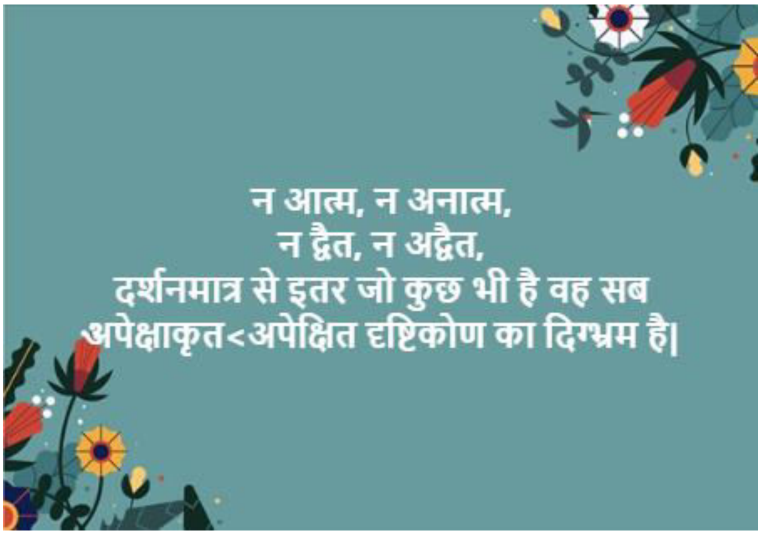

26 Jun 2024

_जैसे एक जवान पूरी मुस्तैदी के साथ चौकस रहते हुए सीमा में मजबूती से दृढ़तापूर्वक ठहरे रहता है,
तुम्हें भी पूरी मुस्तैदी के साथ चौकस रहते हुए नाक के आगे की ठीक सीध में मजबूती से दृढ़तापूर्वक ठहरे रहना है........
_दृष्टि के संयम के लिए नाक के आगे की ठीक सीध दृष्टि को ढालने के लिए एक स्थिर सांचा है < जिसमें दृष्टि को ढालना है,
आलस्य-प्रमाद को त्यागकर उठते, बैठते, चलते-फिरते हर समय मुख के ऊपरी भाग में नाक के दो छिद्रों के ठीक मध्य में ही दृष्टि को भली-भाँति संतुलनपूर्वक स्थिर रखो,
जरा भी दाएं-बाएं नही होना है........
_चौबीसों घंटे जिस समय तुम जहाँ रहते हो पूरी तरह से यथा सहज-सजग रहते हुए उस समय वहीं पर उपस्थित रहो, उपस्थिति बँटे नही,
जहाँ भी रहो उसका ज्ञान, उसका दर्शन पूरा स्पष्ट रहे तभी पूरा ध्यान है, पूरा होश है, पूरी उपस्थिति है,
जिसका ज्ञान हो रहा है < वह दर्शन में भी स्पष्ट हो तभी पूरा अखंड ध्यान है,
बिना दर्शन के ज्ञान अस्पष्ट है, बिना ज्ञान के दर्शन अस्पष्ट है,
जो भी जाना जा रहा है वह दिखने में भी स्पष्ट हो तभी बिना किसी भ्रान्ति के पूरी स्पष्टता है......
_निकम्मा, कामचोर, आलसी मत बने रहो,
निकम्मे, कामचोर, आलसी लोग मेहनत नही करना चाहते, बिस्तर में पड़े-पड़े ही पकी पकाई खीर खाना चाहते हैं < ऐसे लोगों के लिए धिक्कार है, लानत है,
अपनी तरफ से पूरा जी जान लगाकर मेहनत करो, पूरी तरह से तत्पर रहते हुए परिश्रमी बनो, अपने परिश्रम पर विश्वास करो, परिश्रम से क्या नही संभव है,
बिना हिले-डुले निरंतर लगातार नाक के आगे की ठीक सीध में ठहरे रहने में बहुत ही अधिक श्रम की आवश्यकता है........
_लगातार हर श्वास-प्रतिश्वास के ठीक समय पर उपस्थित होते रहने के लिए बहुत ही अधिक सजगता की आवश्यकता है, बहुत ही अधिक होश की आवश्यकता है, बहुत ही अधिक स्फूर्ति की आवश्यकता है, बहुत ही अधिक चौकस रहने की आवश्यकता है,
बहुत ही ज्यादा ईमानदार होने की जरूरत है,

जैसे एक ईमानदार चौकीदार की होश में रहते हुए पूरी चौकसी के साथ द्वार के भीतर तथा बाहर आने-जाने वाले लोगों पर एकटक निगरानी रहती है, एकटक नजर रहती है,
तुम्हारी भी एक ईमानदार चौकीदार की तरह होश में रहते हुए पूरी चौकसी के साथ नाक के द्वार में बैठकर हर आती-जाती श्वास-प्रतिश्वास पर एकटक निगरानी रहे, एकटक नजर रहे.......
_नाक के ठीक आगे की केंद्रीय सीध में भली-भाँति स्थिरता पूरी हो इसके लिए ही सबसे पहले श्वास का > (श्वास के ज्ञान का) अवलंबन है, सहारा है,
श्वास का दर्शनमात्र रह जाए, श्वास का ज्ञानमात्र रह जाए < इस निमित्त से यथा सहज-सजग स्थिर रहना है,
ज्ञानमात्र के निमित्त जब स्थिरता पूरी होती है,
तभी जल-कमलवत् सहज सिद्ध अवस्था है,
ध्यान रहे ज्ञानमात्र कहने का तात्पर्य बस सिर्फ मालूम भर होने से है, क्या मालूम हो रहा है, किसे मालूम हो रहा है < इससे नही,
पहली बात तो यह स्पष्ट होनी आवश्यक है
कि ज्ञान क्रिया का है पर ज्ञान क्रिया नही है,
ज्ञान क्रिया का होने पर भी ज्ञान क्रिया से अस्पृश्य है, अलिप्त है,
श्वास क्रिया है, पर श्वास का ज्ञान क्रिया नही है.......
_अगर जल-कमलवत् सिद्ध अवस्था चाहते हो तो ध्यान में तुम्हारी स्थिति सीधे ही श्वास अर्थात् क्रिया के ज्ञानमात्र में रहे श्वास अर्थात् क्रिया में नही,
विचारों तथा भावनाओं (क्रिया) के ज्ञानमात्र में स्थिति हो विचारों तथा भावनाओं (क्रिया) में नही,
संवेदनाओं (क्रिया) के ज्ञानमात्र में स्थिति रहे संवेदनाओं (क्रिया) में नही,
चित्तवृत्तियों (क्रिया) के ज्ञानमात्र में स्थिति रहे चित्तवृत्तियों (क्रिया) में नही,
गुण<धर्म (क्रिया) के ज्ञानमात्र में स्थिति रहे
गुण<धर्म (क्रिया) में नही,
जब क्रिया से अनपेक्ष सीधे ही अक्रिय ज्ञानमात्र में स्थिति होती है तब क्रिया में होते हुए भी क्रिया से अस्पृश्य की स्थिति होती है, क्रिया में होते हुए भी क्रिया से अलिप्त की स्थिति होती है < यही जल-कमलवत् सिद्ध अवस्था है......

28 Jun 2024

अंधी भावना में भावित होने पर अंधविश्वास का जन्म होता है,
सापेक्षिक सत्य से सावधान रहो,
साधारण जनों का सारा व्यवहार ही दो अंतों के मध्य के सापेक्षिक संतुलन पर निर्भर है,
अतः साधारण जन जीवन पर्यंत सापेक्षिक जाल में ही उलझे रहते हैं......

सापेक्षिक जाल से मुक्ति बहुत ही आवश्यक है,
_सामान्यतया जब भी तुम देखते हो स्थान-समय के अंतराल में ही देखते हो,
स्थूल चक्षु प्रकाश पर निर्भर हैं,
स्थूल चक्षु से देखना प्रकाश के माध्यम पर, प्रकाश की गति पर निर्भर है,
स्थान-समय का अंतराल होने से स्थूल चक्षु से ठीक उसी समय का दर्शन संभव नही है,
कितनी भी सूक्ष्म दृष्टि क्यों न खुल जाए अंतरालरहित यथार्थ स्पष्ट नही हो सकता,
कितना भी दृष्टि का सिमटाव क्यों न हो जाए
अंतरालरहित यथार्थ स्पष्ट नही हो सकता,
दृष्टा के रहते, दृष्टि के रहते, दृष्टिकोण के रहते कदापि अंतरालरहित यथार्थ स्पष्ट नही हो सकता,
बस दर्शनमात्र > (ज्ञानमात्र) के निमित्तमात्र ही अंतरालरहित यथार्थ स्पष्ट है,
अंतरालरहित यथार्थ में न जीवन की स्थिति है, न लोक-परलोक की स्थिति है,
अंतरालरहित यथार्थ में न कोई सृष्टि है, न कोई सृष्टिकर्ता है,
अंतरालरहित यथार्थ दर्शन का विषय नही है, ज्ञान का विषय नही है,
दर्शनमात्र > (ज्ञानमात्र) के निमित्तमात्र ही अंतरालरहित यथार्थ स्पष्ट है,
आत्मा का सम्यग् संकेतार्थ तात्पर्य स्पष्ट न होने पर आत्मवाद का दृष्टिकोण स्थापित होता है,
आत्मा का सम्यग् संकेतार्थ तात्पर्य उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका से है,
जो अनादि-अनंत, सदा-सनातन, सदा-अपरिवर्तित, नित्य-स्थिर है,
जिसका न कभी आरंभ हुआ, न ही कभी अंत है,
उत्तरोत्तर बीज से बीज में आते-आते अंततः कुछ भी नही बचता < कुछ नही होने में ही
तुम्हारी निमित्तमात्र भूमिका है,
तथ्य के प्रति ईमानदार रहो,
अपनी तरफ से तथ्य में कुछ भी मत मिलाओ,
अपनी तरफ से बिना कुछ भी मिलाए तथ्यतः जैसा है ठीक वैसा ही भली-भाँति स्पष्टता के निमित्त यथा सहज-सजग हो स्थिर रहो,
श्वास को उसकी यथा सहजता में चलने दो,
और यथा सहज स्थिर-शान्त होते जाओ,
इतना ही सजग रहना है कि श्वास की यथा सहजता भी भंग न हो, और उसका ज्ञानमात्र भी स्पष्ट हो,
_बौद्धों के अद्वय सिद्धांत के आधार पर ही विकृति में हिन्दुओं में शांकर वेदांत का अद्वैत सिद्धांत बना,
अद्वय सिद्धांत में संतुलनपूर्ण आधारीय माध्यमिक शून्यता को सिद्ध किया गया है,
अद्वय अर्थात् > दोनों ही अंत नही
(न यह अंत - न यह अंत) = माध्यमिक शून्यता......
द्वैत-अद्वैत आदि किसी भी मत की तथ्यगत सच्चाई नही है, इसमें बस भावित हुआ जा सकता है ताकि भावनात्मक सम्मोहन में उसकी पुष्टि हो सके,
अद्वय सिद्धांत उत्तरोत्तर माध्यमिक शून्यता को ही सिद्ध करता है,
जहाँ उत्तरोत्तर सूक्ष्मता में शून्य का आधार शून्य ही सिद्ध होता है,
(स्वभाव शून्यता कहकर फिर निःस्वभाव शून्यता कहने में प्रति-आपेक्षिक बुद्धि की सीमा ही निर्धारित होती है),
पर ध्यान रहे शून्यता आधार नही है आरंभ होने का कारण है,
उपस्थितिमात्र की आधारीय भूमिका के बिना परमाणुओं का अपेक्षाकृत संयोजन संभव नही है,
परमाणुओं के अपेक्षाकृत संयोजन के बिना
जगत की व्यावहारिक स्थिति संभव नही,
अपौरुषेयतः आधार पर शून्यता के कारण ही < शून्यता (कारण) के दबाव में शून्य से उत्पन्न हुआ जगत भी शून्यवत ही है,
जगत की स्थिति शून्यवत है,
पर कारण (शून्यता) का आधार < जगत का आधार शून्य नही है अपौरुषेयतः उपस्थित भर होना है......
अपौरुषेयतः उपस्थितिमात्र की आधारीय भूमिका स्पष्ट नही होने से बौद्धों का अद्वय सिद्धांत भी अशुद्ध है, अपूर्ण है,
अपौरुषेयतः उपस्थितिमात्र के सदा-अपरिवर्तित, नित्य-स्थिर आधार पर ही
दो अंतों के मध्य का सापेक्षिक संतुलन निर्भर है,
निमित्त (पुरुष) की निमित्तमात्र उपस्थिति भर की भूमिका पर ही हेतु-प्रत्यय की भूमिका निर्भर है.........

_ध्यान रहे यहाँ अपौरुषेय कहने का तात्पर्य लोकदृष्टि में प्रचलित अपौरुषेय की मान्यता से नही है, ब्रह्मा, ईश्वर, परमात्मा, ब्रह्म आदि किसी भी प्रचलित मान्यता से नही है,
सामान्यतया अपौरुषेय कहना पुरुषविशेष के निषेधार्थ में प्रयुक्त संकेत भर है,
अपौरुषेय को संकेत ही रहने देना,
अपौरुषेय को ईश्वर, आत्मा-ब्रह्म आदि किसी भी संबंधित धारणा में प्रयुक्त नही करना अन्यथा अपौरुषेय के अर्थ का अनर्थ हो जाएगा,
प्रचलित वैदिक कहलाने वालों ने अपौरुषेय के अर्थ का अनर्थ कर अपौरुषेयता की अवमानना की है,
बस उपस्थितिमात्र की भूमिका में ही अपौरुषेयता का संकेत स्पष्ट है.....

30 Jun 2024(I)

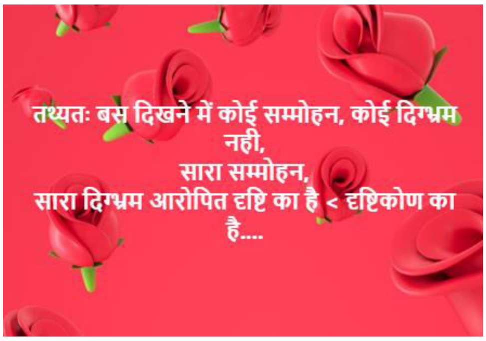

30 Jun 2024 (II)

दृष्टा बस केवल दृश्य को ही देख सकता है स्वयं को नही < यह दृष्टा की विवशता है, लाचारी है,
दृष्टा के रहते कदापि दृष्टा-दृश्य की सच्चाई नही खुल सकती,
दृष्टा से अनिमित्त दर्शनमात्र के निमित्त ही दृष्टा-दृश्य की सच्चाई स्पष्ट है,
दृष्टा-दृश्य का केंद्रीय आधार दर्शनमात्र है,
केंद्रीय आधार से ही दृष्टा-दृश्य < इन दो वर्तुलीय अंतों के आर-पार की यथा-सत्यता स्पष्ट है,
इसलिए दृष्टा-भाव से अनिमित्त दर्शनमात्र के निमित्तमात्र हो जाओ,
कौन देख रहा है < यह नही, किसे देख रहा है < यह नही, क्या देखने में आ रहा है < यह नही बल्कि बिना किसी अंतराल के सीधे ही बस जो दिखना भर हो रहा है < (उसमें) तुम्हारी बस केवल उपस्थित भर होने की निमित्तमात्र भूमिका हो,

जब तक निमित्त को अपनी उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका स्पष्ट नही है तभी तक बद्ध अवस्था है,
निमित्तमात्र उपस्थित भर होने में ही परिपूर्ण जागृति है, परिपूर्ण होश है, परिपूर्ण सहजता है, परिपूर्ण सरलता है, परिपूर्ण शान्ति है, परिपूर्ण स्थिरता है,
उपस्थितिमात्र की निमित्तमात्र भूमिका सदा-सनातन, सदा-अपरिवर्तित है,
निमित्तमात्र बस उपस्थिति भर होने में ही आत्म का < (आत्मा का) संकेत पूर्ण है,
निमित्तमात्र बस उपस्थिति भर से इतर जो कुछ भी है < वह सब अनात्म है,
प्रचलित आत्मवाद में 'अनात्म' में आत्म-भाव का आरोप है,
इसलिए प्रचलित आत्मवाद से सावधान रहना आवश्यक है,
(और साथ ही प्रचलित अनात्मवाद से भी सावधान रहना आवश्यक है),
जब तक इदं अहं, इदं मम्, इदं अहं आत्मा, इदं मम् आत्मा का अध्यारोप है तब तक अनात्म है < (अनात्मा) है,
तुम शरीर नही हो आत्मा हो < यह कहना भी अपेक्षाकृत अध्यारोपित दृष्टिकोण से है,
प्रचलित गीता-उपनिषद आदि के अध्यारोपित दृष्टिकोण से सावधान रहना आवश्यक है,
निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होना ही तुम्हारा सहज स्वभाव है, तुम्हारा सहज धर्म है,
क्या सहज सिद्ध है, और क्या आरोपित है यह भली-भाँति स्पष्ट होना आवश्यक है,
अहं-त्वं-यत्-तत्-सर्व इत्यादि < यह आरोपित है सहज सिद्ध नही,
ज्ञानमात्र सहज सिद्ध है, दर्शनमात्र सहज सिद्ध है, उपस्थितिमात्र सहज सिद्ध है आरोपित नही,
दर्शनमात्र > (ज्ञानमात्र) में उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका सहज सिद्ध है,
सहज सिद्ध का किसी भी काल में कभी भी अभाव नही है,
ध्यान रहे सहज सिद्ध में ही स्थिरता संभव है आरोप में नही, आरोपित क्रिया में नही,
उदाहरणार्थ श्वास के (क्रिया के) ज्ञानमात्र में स्थिरता संभव है श्वास में (क्रिया में) नही,
क्रिया से गिरना स्वाभाविक है,
ध्यान रहे दर्शनमात्र कहना, ज्ञानमात्र कहना, उपस्थितिमात्र कहना न तीन हैं, न दो हैं, न एक है, न शून्य है,
दर्शनमात्र > (ज्ञानमात्र) में उपस्थितिमात्र की निमित्तमात्र भूमिका न तीन हैं, न दो हैं, न एक है, न शून्य है,
तुम्हें इस संदर्भ में कोई भी अपेक्षाकृत आरोपित दृष्टिकोण नही रखना है,
संकेतार्थ जो जिस अर्थ में है उसे उसी अर्थ में रहने देना है,
चूँकि तुम बुद्धि के निमित्त सापेक्षता के तल पर तुलनात्मक दृष्टिकोण में ही समझने के लिए विवश हो इसलिए तुम्हें बार-बार संकेतार्थ सावधान करना पड़ता है,
तुम्हारे अचेतन तल पर मूर्छा में अद्वैत अपेक्षाकृत द्वैत का, द्वैत अपेक्षाकृत अद्वैत का संस्कार होने से ही संस्कारवश दबाव में तुम द्वैत अथवा अद्वैत की घोषणा करते हो,
अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत, द्वैत, त्रैत आदि सभी मत परस्पर अपेक्षाकृत दबाव में सिद्ध हैं,
पाँच अंधों की सांकेतिक कहानी से अभिप्रेरित हो सावधान रहो,
तथ्यतः यथार्थ स्पष्टता से वंचित द्वैत-अद्वैत आदि अपेक्षाकृत दृष्टिकोण के सम्मोहन में अंधे हुए दुराग्रही लोगों पर दया रखो,
उनसे अनावश्यक उलझकर अपना अमूल्य समय तथा ऊर्जा व्यर्थ मत करो,
सीधे ही बस तथ्यतः यथार्थ स्पष्टता के निमित्त यथा सहज-सजग रहो,
सारा सम्मोहन ही आरोपित दृष्टि का है < दृष्टिकोण का है,
तथ्यतः दर्शनमात्र का नही,
अपनी तरफ से देखना नही,
अपनी तरफ से देखने में आरोप स्वाभाविक है,
और सारा सम्मोहन, सारा दिग्भ्रम ही आरोपित दृष्टि का है < दृष्टिकोण का है, बिना किसी अंतराल के सीधे ही बस दिखने भर के निमित्त रहना है,
सीधे ही बस दिखने भर की पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता में न कोई दिग्भ्रम है, न कोई संशय है, न कोई संदेह है, न कोई दुविधा है, न कोई अज्ञानता है, न कोई दुःखद बंधन है|

****

02 Jul 2024(I)

ये घुमड़ते हुए मेघ,
ये दौड़ती हुई सरिताएं,
ये लहलहाते हुए खेत,
ये कूकती हुई कोयलें ये सब के सब उसी की महिमा का गीत गा रहे हैं < जिसकी महिमा के निमित्त यह सब है,
ऐ गहरे समुद्र, ऐ ऊँचे से ऊँचे आकाश,
ऐ सूर्य, ऐ चंद्र, ऐ तारा-गणों उसी की स्तुति गाओ जिसके होने भर से सब-कुछ है,
ऐ देश-देश के लोगों, ऐ जाति-जाति के लोगों उसी की स्तुति करो, उसी की महिमा का गीत गाओ जिससे सब-कुछ है, पर जो किसी से नही है.......
_अपेक्षित दृष्टि वालों के लिए किसी अर्थ में विकास तथा संतुलन के निमित्त यह भावनीय भावना दी गयी है,
सभी तरह की भावनीय भावनाओं का निमित्त पूरा होने पर जब भावना के लिए (भावित होने के लिए) कोई भी निमित्त शेष नही रह जाता है < तब सहज ही सीधे सहज सिद्ध अक्रिय ज्ञानमात्र के निमित्त स्थिति होती है....

02 Jul 2024 (II)

_किसी ने ठीक ही कहा है मन के जीते जीत है मन के हारे हार,
पिछले साल ही क्रिकेट वर्ल्ड-कप प्रतियोगिता के फाइनल मैच में मानसिक दबाव के चलते > (मनोवैज्ञानिक दबाव के चलते) भारतीय टीम हार गयी थी,
और इस साल २९ जून को विश्व टी ट्वेंटी क्रिकेट प्रतियोगिता के फाइनल मैच में दक्षिण अफ्रीका की टीम मजबूत स्थिति में होने पर भी मनोवैज्ञानिक हीनता के दबाव में आकर अंततः हार गयी.......
कमजोर मनोविज्ञान वालों के हाथों में मजबूती नही रह जाती है, हाथ काँप जाते हैं,
दृष्टि की स्थिरता तथा एकाग्रता शिथिल पड़ जाती है,
line, length, timing पर नियंत्रण नही रह जाता < ऐसी स्थिति में तब हार तो सुनिश्चित ही है,
(हारने के बाद अब रोने-धोने से क्या होने वाला, भावुक हो लोगों को दया आती है ऐसी दयनीयता देखकर),
यहाँ किसी की हार पर किसी के लिए भी आलोचनात्मक दृष्टिकोण नही है,
खेल को बस खेल के दृष्टिकोण में ही रहने दो,
खेल में हार-जीत पर कोई भावनात्मक अर्थ ग्रहण न हो,
चूँकि व्यावहारिक उदाहरण से तुम अपेक्षाकृत अधिक अभिप्रेरित होते हो इसलिए यहाँ क्रिकेट का व्यावहारिक उदाहरण मनोवैज्ञानिक दबाव को समझाने के उद्देश्य से दिया गया है.....
(यद्यपि यहाँ क्रिकेट का न तो समर्थन है,
और न अनावश्यक विरोध ही है,
क्रिकेट की अपेक्षा सद्धर्म साधना को महत्व दो, वैज्ञानिक, दार्शनिक आदि प्रतिभा को महत्व दो, कुश्ती, निशानेबाजी, दौड़ आदि नैसर्गिक प्रतिभा को महत्व दो,
क्रिकेट जैसे खेल को अनावश्यक अधिक महत्व देने से इस देश में सामान्यतः अन्य नैसर्गिक प्रतिभाएं दब रही हैं, यह देश के लिए घातक है),
_व्यवहारतः प्रबल मनोविज्ञान वाला सामने वाले को अपने मनोवैज्ञानिक दबाव में ले ही लेता है,
इसलिए संतुलन के निमित्त शारीरिक प्रशिक्षण के साथ मनोवैज्ञानिक तथा बौद्धिक प्रशिक्षण जरूरी है,
तथ्यतः मनोवैज्ञानिक तथा बौद्धिक अवलोकन करना बहुत ही आवश्यक है......
_इस संसार में नाना प्रतियोगिताओं का परस्पर संघर्ष है,
यहाँ जिसका मनोविज्ञान कमजोर है, जो मनोवैज्ञानिक हीनता का शिकार है < वह सफल नही हो पाता,
_तुम्हारे पास कितनी भी कुशलता क्यों न हो, पर अगर तुम मनोवैज्ञानिक हीनता के शिकार हो तो तुम जीत नही सकते,
मनोवैज्ञानिक हीनता से उबरो,
यथा सहज सजगता की स्थिति में मनोवैज्ञानिक दबाव नही बनता,
मनोवैज्ञानिक हीनता का दबाव उत्पन्न न हो इसके लिए यथा सहज-सजग हो सावधान रहो,
अपने को सामने वाले की तुलना में दीन-हीन लाचार मत मानो,
अपने को जाति के आधार पर, भाग्य के आधार पर, कर्म<व्यवसाय के आधार पर दीन-हीन लाचार मत मानो,

ध्यान रहे तुम्हारे मानने पर < तुम्हारी मान्यता पर, तुम्हारे विश्वास पर, तुम्हारी प्रवृत्ति पर, तुम्हारी धारणा पर तुम्हारी मनोवैज्ञानिक स्थिति निर्धारित होती है,
मन का आधार चित्त है, और चित्त का आधार बीज<संस्कार है,
संस्कार के दबाव में चित्त के आश्रित ही मनसचेतना अर्थात् मनोविज्ञान उत्पन्न होता है, संस्कार के वशीभूत जैसी वृत्ति बनती है
उसी वृत्ति के अनुरूप मन का आकार ग्रहण होता है,
मृत्यु के समय जैसी चैतसिक<वृत्ति बनती है < उसी के अनुसार अगला जन्म निर्धारित होता है,
पूर्ण सहजता की स्थिति में दबाव नही होने से फिर से विज्ञान उत्पन्न नही होता, चैतसिक<वृत्ति उत्पन्न नही होती,
अगर फिर से विज्ञान (चेतना) उत्पन्न नही होता है, चैतसिक<वृत्ति उत्पन्न नही होती है
तो तब फिर पुनर्जन्म नही होता है,
पुनर्जन्म के बंधन से (फिर से जन्म लेने के बंधन से) मुक्ति हो जाती है,
_उत्साहित हो निश्चिंततापूर्वक ध्यान में बैठो दृष्टि की < मन की स्थिरता को, एकाग्रता को साधो, और कुशलता को, मनोवैज्ञानिक प्रबलता को बढ़ाओ,
ध्यान रहे अतिउत्साहित भी मत होना,
और उत्साहहीन भी मत बनो,
दोनों के माध्यमिक संतुलन पर बने रहो,
अतिउत्साह से भी दबाव में गिरना होता है,
और उत्साहहीन तो गिरा हुआ ही है और क्या गिरेगा,
अगर तुम मनोवैज्ञानिक हीनता से अभिमुक्त हो कर्मठ हो, पुरुषार्थी हो तो क्या नही हो सकता......
_यथा सहजतापूर्वक बाहर से आँख बंद रखते हुए भीतर से नासिका के ठीक आगे की केन्द्रीय सीध में भली-भाँति संतुलनपूर्वक सीधे हो संभलते हुए ध्यान-दृष्टि को स्थिर रखो,
ब्रह्मचर्यपूर्वक-संयमपूर्वक अपनी मानसिक प्रबलता को बढ़ाओ,
अपनी बौद्धिक प्रबलता को बढ़ाओ,
अपनी आत्मिक प्रबलता को बढ़ाओ,
अपनी आरोग्यता को, ताजगी को, स्फूर्ति को, गति को, बल को, क्षमता को, सामर्थ्य को बढ़ाओ,
निरोग बनो, सबल बनो, सक्षम बनो, सामर्थ्यवान बनो.....

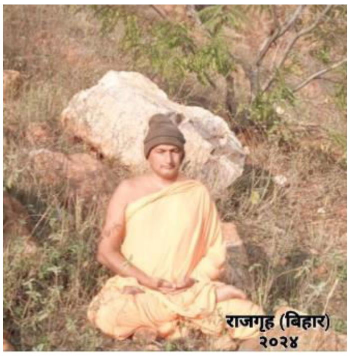

04 Jul 2024

किसी भी संबंध में जब न ज्ञाता, न ज्ञेय बस केवल ज्ञान भर ही रह जाता है,
न दृष्टा, न दृश्य बस केवल दर्शन भर ही रह जाता है तभी उस संबंध में निभ्रान्ततः पूर्ण सच्चाई स्पष्ट होती है उससे पहले तो अपेक्षित दृष्टिकोण का दिग्भ्रम ही है,
इसलिए श्वास का संदर्भ हो,
चाहे वेदना, चैतसिक आदि कोई भी संदर्भ हो तुम्हारा पूरा का पूरा संयम, पूरा का पूरा केन्द्रीकरण उसके बस केवल ज्ञान भर होने में ही हो,
उसके बस केवल दर्शन भर होने में ही हो,
बस ज्ञानमात्र ही रह जाए,
किसे ज्ञात हो रहा है, क्या ज्ञात हो रहा है इसमें जरा भी ध्यान न बँटने पाए....

बस दर्शनमात्र ही रह जाए,
किसे दर्शन हो रहा है, क्या दर्शन हो रहा है इसमें जरा भी ध्यान न बँटने पाए....
अंतरालरहित ज्ञानमात्र में<(दर्शनमात्र में) न सृष्टि का आरोप है, न ही सृष्टिकर्ता का आरोप है,
अंतरालरहित ज्ञानमात्र से<(दर्शनमात्र से) इतर ही अपेक्षित दृष्टिकोण के अंतराल में (साधारण जनों की दृष्टि में) दृश्य का, सृष्टि का, रचना का भ्रम हो रहा है,
जब सृष्टि का, रचना का होना ही भ्रम है तो सृष्टिकर्ता का, रचयिता का होना भी भ्रम ही है,
यथार्थतः न सृष्टि है, न ही कोई सृष्टिकर्ता है, अंतरालरहित उपस्थितिमात्र की भूमिका ही सहज सिद्ध है,
पर अपेक्षित दृष्टिकोण के अंतराल में पूर्व कल्प के अनुसार ही इस कल्प में भी निमित्त-कारण की भूमिका में ईश्वर का आरोप सिद्ध होता है,
(सूचना- विशेषकर भाविकों को सूचित किया जाता है कि अपेक्षित दृष्टिकोण के आयाम में कदापि तथ्यतः ईश्वर का खंडन नही किया गया है,
यहाँ दर्शनमात्र से इतर अपेक्षित दृष्टिकोण के आयाम में जीने वाले भाविक<भक्तों की भावना की अवमानना नही है,
पर यहाँ भाविकों से यह कहा जाता है कि तथ्यतः अर्थ का अनर्थ न करते हुए तथ्यगत् सार्थक अर्थ में ही ईश्वर-अर्थ की भावनीय भावना हो),
_अपेक्षित दृष्टिकोण का सापेक्ष कारण अविद्या है और निरपेक्षतः अनिमित्त आधार अंतरालरहित उपस्थितिमात्र की सहज सिद्ध भूमिका है,
उपस्थितिमात्र की भूमिका अंतरालरहित होने से 'अंतरालरहित में' किसकी उपस्थिति है<अपेक्षित दृष्टिकोण के अंतराल का यह प्रश्न ग्रहण नही होता है,
अंतरालरहित में ईश्वर, खुदा, गॉड, ब्रह्म आदि यह अपेक्षित दृष्टिकोण का उत्तर ग्रहण नही होता है,
अपेक्षित दृष्टिकोण के अंतराल में ही अविद्या के कारण संस्कारवश आत्म-अनात्म, ब्रह्म-शून्य, ईश्वर-अनीश्वर, सगुण-निर्गुण, द्वैत-अद्वैत आदि का सापेक्षिक भ्रम उत्पन्न हो रहा है,
अपेक्षित दृष्टिकोण से अनिमित्त होते ही सम्पूर्ण सापेक्षिक भ्रम भंग हो जाता है, सापेक्षिक भ्रम के भंग होते ही विक्षेपरहित सहज स्थिर शान्त स्थिति हो जाती है,
पूर्णतः सहज स्थिर अंतरालरहित में कर्ता-भाव के लिए जरा भी दबाव नही है, (किसी कर्ताविशेष<सृष्टिकर्ता ईश्वर के आरोप के लिए जरा सा भी दबाव नही है),
मात्र उपस्थित भर होने से ही अपेक्षाकृत शून्यता के उत्तरोत्तर अनुलोम क्रम के दबाव में सब-कुछ<जो जिस अर्थ में है वह उस अर्थ में अर्थयुक्त है,
परमाणुओं में संयोजन आदि का सापेक्षिक संतुलन उपस्थितिमात्र की भूमिका पर ही निर्भर है,
अंतरालरहित उपस्थितिमात्र का सदा-सनातन<सदा-अपरिवर्तित<
नित्य-स्थिर आधार होने से ही जो जिस स्थान-समय में जिस अर्थ में है वह उसी स्थान-समय में उसी अर्थ में अर्थयुक्त है,
उपस्थितिमात्र के नित्य-स्थिर सनातन आधार पर हर बार ही अपने से पूर्व कल्प के अनुसार ही पृथ्वी, सूर्य, चंद्र, तारे, अंतरिक्ष आदि की स्थिति होती है,
न पहली बार आरंभ ही है, न अंतिम बार अंत ही है,
पूर्णतः अंतरालरहित में कदापि बीतना-उत्पन्न होना संभव नही है,
स्थान-समय के अंतराल में ही बीतना-उत्पन्न होना संभव है,
अकेले एक का होना कदापि सिद्ध नही है,
अपेक्षाकृत होने से ही अपेक्षाकृत दबाव में एक के होने पर दोनों की स्थिति है,
इसलिए न द्वैत न अपेक्षाकृत अद्वैत,
न अद्वैत न अपेक्षाकृत द्वैत,
और जो भी अंतराल है वह दो अंतों के मध्य का ही है,
उत्पन्न होने वाला अपने से पूर्व के बीतने वाले से बिल्कुल वही का वही भी नही होता,
बिल्कुल दूसरा भी नही होता,
ठीक वही का वही भी नही, ठीक दूसरा भी नही<यह अपने-आप में दबाव को सिद्ध करता है,
अगर ऐसा नही होता तो फिर उत्तरोत्तर दबाव भी सिद्ध नही होता,
ठीक वही का वही भी नही, ठीक दूसरा भी नही<यह अपने-आप में दबाव का एक ऐसा सेतु है जिसमें कार्य-कारण की ऋत् अनुशासनबद्ध संतुलित सुव्यवस्था चलती ही जा रही है,
_अगर ठीक वही का वही होता तो तब यह जो कुछ भी प्रतीत हो रहा है होता ही नही,
यह व्यावहारिक जगत होता ही नही,

और अगर ठीक दूसरा होता तो कारण का अवलंबित आधार नही होने से तब भी यह जो कुछ भी प्रतीत हो रहा है होता नही,
यह व्यावहारिक जगत होता नही,
_ठीक वही का वही भी नही, ठीक दूसरा भी नही<यह दबाव है<बीज है पर अंतरालरहित पूर्णतः सहज स्थिर आधार नही,
ठीक वही का वही भी नही, ठीक दूसरा भी नही यद्यपि यह अपनी जगह पर सत्य है,
पर ध्यान रहे ठीक वही का वही भी नही, ठीक दूसरा भी नही<इसका कारण अविद्या है,
अविद्या के कारण ही ठीक वही का वही भी नही है, ठीक दूसरा भी नही है, अंतरालरहित<जैसा है ठीक वैसा परिस्पष्ट नही होना अविद्या है,
अंतरालरहित न दर्शन का विषय है, न ज्ञान का विषय है, और न ही साक्षात्कार का विषय है, और न ही स्पष्टता का विषय है,
अंतरालरहित की स्पष्टता संभव नही है,
अविद्या की ही स्पष्टता संभव है,
यद्यपि विशुद्धतः अविद्या संबंधित दर्शन का विषय नही है, संबंधित ज्ञान का विषय नही है,
संस्कार की तरह साक्षात्कार का विषय नही है,
पर विशुद्धतः अविद्या की स्पष्टता संभव है,
विशुद्ध अविद्या का तात्पर्य नाम-रूप, विज्ञान (चेतना), संस्कार से रहित अविद्यामात्र से है जिसमें अस्पष्टता के अलावा कोई मिलावट नही है,
अविद्यामात्र<वह किंचित अविद्या है जो बंधन तथा मुक्ति के संतुलन के निमित्त है,
यहाँ अविद्या कहने का तात्पर्य लोकदृष्टि में प्रचलित अविद्या से नही है,
अंतरालरहित<जैसा है ठीक वैसा स्पष्ट नही है<<इस अविद्या के स्पष्ट होते ही ठीक वही का वही भी नही, ठीक दूसरा भी नही<यह भ्रान्ति भंग हो जाती है,
'यह सत्य है' की भ्रान्ति भंग हो जाती है,
अविद्या की अस्पष्टता में ही बंधन है,
अविद्या के स्पष्ट होने में मुक्ति है,
अनादि-कारण अविद्या के अस्पष्ट होने से ही
'यह सत्य है' की भ्रान्ति हो रही है,
अविद्या के स्पष्ट होते ही 'यह सत्य है' की भ्रान्ति भंग हो जाती है,
ऐसा है,वैसा है की भ्रान्ति भंग हो जाती है,
राग,द्वेष,मोह भंग हो जाता है,
अहंकार भंग हो जाता है,
अनात्म में आत्म-भाव का आरोप भंग हो जाता है,
निमित्तमात्र उपस्थित भर होना यथास्पष्ट हो जाता है,
(निमित्त को पूर्ण स्पष्टता संभव नही है अपेक्षाकृत स्पष्टता ही संभव है),
ध्यान रहे भले ही 'पूर्ण अंतरालरहित' स्पष्टता का विषय नही है,
फिर भी निभ्रान्त स्पष्टता के निमित्त
'पूर्ण अंतरालरहित' ओर ही मात्र समर्पण रहे.....
अपेक्षित दृष्टिकोण में ही रहने को विवश साधारण जनों को मनमुखी<स्वेच्छाचारी, नास्तिक होने की अपेक्षा सही ईश्वर के शरणागत् होना श्रेयस्कर है......

06 Jul 2024

प्रश्न- ध्यान में मन नही लगता,
इधर-उधर मन भागता रहता है,
तुम्हारे तल पर तुम्हारा यह प्रश्न स्वाभाविक है,
तुम्हारा जहाँ महत्व रहता है स्वभावतः वहीं तुम्हारा ध्यान रहता है, वहीं तुम्हारी दृष्टि रहती है, वहीं तुम्हारी प्रवृत्ति रहती है,
वहीं तुम्हारा मन रहता है,
तुम्हारा महत्व धन-वैभव में है, पद-प्रतिष्ठा में है, मान-सम्मान में है और तुम बात कर रहे हो सत्य की, ध्यान-समाधि की,
सब बेईमानी की बाते हैं,
क्या वाकई तुम पूरी ईमानदारी से सही में सत्य के लिए तैयार हो,
क्या वाकई तुम पूरी ईमानदारी से सही में ध्यान-अभ्यास के लिए तैयार हो,
तुम अपनी कमी जानते हो और फिर कहते हो ध्यान नही लगता है,
तुम्हारी सत्य की, ध्यान-समाधि आदि की बातें सब ऊपरी-ऊपरी हैं,
तुम्हें पता है तुम भीतर से किसे महत्व दे रहे हो,
तुम दूसरों को ही नही स्वयं को भी धोखा दे रहे हो,
तुम्हारा ध्यान बरबस वहीं खिंचा चला जाता है जहाँ तुम भीतर से महत्व दे रहे हो,
यहाँ तुम्हारी पूरी पोलपट्टी खुल जाती है,
जब तक तुम संसार को महत्व दे रहे हो, सांसारिकता को महत्व दे रहे हो, सांसारिक अर्थ को महत्व दे रहे हो,
जब तक तुम धन को, पद को, नाम को महत्व दे रहे हो,
जब तक तुम सांसारिक सफलताओं को, अभिलाषाओं को, कामनाओं को महत्व दे रहे हो तब तक तुम्हारी निश्चिंतता तो भंग होनी ही है,
जब तक तुम्हारा ऐंद्रिक भोगों में आकर्षण बना हुआ है,
सांसारिक चकाचौंध में आकर्षण बना हुआ है, स्त्री-पुत्र, धन-वैभव, पद-प्रतिष्ठा, मान-सम्मान आदि में आकर्षण बना हुआ है,
फल प्राप्ति में आकर्षण बना हुआ है,
इधर-उधर की भौतिक चकाचौंध में आकर्षण बना हुआ है,
तब तक तुम पूरी तरह से निश्चिंत हो शान्ति से, चैन से स्थिरतापूर्वक नही बैठ सकते,
निश्चित ही तुम्हारा ध्यान भंग हो जाएगा,
तुम्हारे लिए एक घंटा भी निश्चिंततापूर्वक शान्ति से स्थिर होकर बैठना मुश्किल है,
ध्यान रहे जब तक तुम पूरी तरह से निश्चिंत हो शान्ति से स्थिरतापूर्वक नही बैठोगे तब तक तुम्हें कदापि तथ्यतः निभ्रान्त स्पष्टता नही हो सकती,
जब तुम्हें सांसारिक अर्थ से वैराग्य होगा,
जब तुम्हें भीतर से यथार्थतः सत्य के लिए जिज्ञासा होगी, तड़प होगी,
जब तुम तथ्यतः यथार्थ स्पष्टता के निमित्त पूरी ईमानदारी से ध्यान-अभ्यास को महत्व दोगे,
पूरी ईमानदारी से प्रतिदिन नियमित समय पर ध्यान-अभ्यास में बैठोगे तब तुम्हारे लिए ध्यान कठिन नही होगा,
मुश्किल नही होगा बल्कि तुम्हारे लिए ध्यान आसान हो जाएगा, सरल, सहज हो जाएगा,
जब से मोबाइल-इंटरनेट आदि का साधन आया है तब से लोगों का धैर्य भंग होता जा रहा है, निश्चिंतता भंग होती जा रही है,
सरलता, सहजता, शान्ति, स्थिरता भंग होती जा रही है,
मन की चंचलता बढ़ती जा रही है,
क्रोध-चिड़चिड़ापन बढ़ता जा रहा है,
टेंशन बढ़ती जा रही है,
शीघ्रता (जल्दबाजी) बढ़ती जा रही है,
इतनी जल्दबाजी कि लोगों के पास किसी का कुशल-क्षेम, हाल-चाल पूछने का समय भी नही रह गया है,
संवेदनशीलता खत्म होती जा रही है,
लोगों के पास इतना धैर्य भी नही रह गया है कि जरा इंतजार कर सकें,
अभी तत्काल परिणाम चाहिए,

अभी तत्काल समाधान चाहिए,
लोग सस्ते परिणाम को, सस्ते समाधान को खोज रहे हैं ......
ध्यान रहे सस्ते परिणाम में, सस्ते समाधान में बहुत बड़ा धोखा है,
धैर्य धारण कर परिश्रमी बनो,
प्रतिदिन कम से कम दो बार एक-एक घंटे तक ध्यान में बैठो,
सबसे पहले तुम लगातार हर श्वास-प्रतिश्वास के ठीक समय पर बिना कोई विलंब किए स्फूर्तिपूर्वक उपस्थित रहने के श्रम का निमित्त पूरा करो......

08 Jul 2024

इससे पहले लोगों ने जीसस से पूछा था
कि 'सत्य' क्या है,
जीसस ने कहा लोग अभी 'सत्य' के लिए तैयार नही हैं, सच्चाई का सामना करने के लिए तैयार नही हैं,
हाँ उसके जाने के बाद 'सत्य का आत्मा' आएगा,
वह अपना विवेक लोगों पर उड़ेलेगा.....
तुम सत्य जानोगे और सत्य तुम्हें स्वतंत्र करेगा.....
जीसस की यह बात किसी संकेत अर्थ में ठीक भी है~कि उस समय लोग सत्य के लिए तैयार नही थे, सच्चाई का सामना करने के लिए तैयार नही थे,
पर वह समय अब आ चुका है,
लोग अब सत्य के लिए तैयार हैं, सच्चाई का सामना करने के लिए तैयार हैं,
अब जो भी कहा जाएगा 'सत्य' कहा जाएगा, सब-कुछ सच-सच ही कहा जाएगा,
इस वर्तमान कल्प में जगत के आरंभ से ही जिन-जिन बातों पर लोगों में परस्पर मतभेद तथा विरोधाभास होता आया है<हर बात की सच्चाई खुलेगी, सारा मतभेद, सारी भ्रान्ति दूर होगी,
हर एक के साथ न्याय होगा,
अन्याय तथा अत्याचार के बोझ तले दबे हर मजलूम के आंसुओं को पोछा जाएगा,
हर तरह का अन्याय तथा अत्याचार हटेगा,
आने वाला आ चुका है<पर अभी वह गुप्त में है,
('वह' किसी की तरफ से नही है,
'वह' किसी का भेजा हुआ नही है,
ध्यान रहे 'वह' बाइबल के अपेक्षित दृष्टिकोण के अनुसार भेजे जाने वाला कथित सत्य का आत्मा भी नही है < क्योंकि यहाँ जीसस अथवा किसी के अपेक्षित दृष्टिकोण की पुष्टि नही है,
यहाँ सम्यग् अर्थ में संकेत को पूर्ण करने के लिए बाइबल का बस उदाहरण भर लिया गया है, 'वह' किसी की तरफ से भेजा हुआ नही है बल्कि 'वह' अंतरहित<अपने-आप से ही है),
_अभी विकृति का समय थोड़ा सा और रह गया है, थोड़ी ही देर में विकृति का पर्दाफ़ाश होने वाला है,
जो गुप्त में है<वह प्रगट होगा,
उसके प्रगट होने पर जगत में सार्वभौमिक स्तर पर, सार्वजनिक स्तर पर न्याय-दिवस घोषित होगा,

वह जो सार्वजनिक स्तर पर सबका न्याय करने वाला है<उसका दर्जा हर अवतार से, हर बुद्ध से, हर तीर्थंकर से, हर संत से,
हर नबी से, हर रसूल से अफजल है, बढ़कर है,
इस समय शैतान ने धर्म का<संत-साधु का भेष धारण किया है,
इसलिए शैतान>(शैतानियत) का अंत करने के लिए उसने भी शैतान की तरह नही बल्कि सम्यग् सनातन सद्धर्म-ध्वजा का भेष<(संत-भेष) धारण किया है,
वह न्याय के दिन न्याय के सिंहासन में बैठकर सबका न्याय करेगा, हर झूठ का,
हर विकृति का पर्दाफ़ाश करेगा,
विकृति का पर्दाफ़ाश होते ही जनता का सम्मोहन भंग हो जाएगा,
सम्मोहन भंग होने से पहले सम्मोहनवश जनता जिन्हें मसीहा समझती होगी,
सम्मोहन भंग होने पर वे ही तब भरमाने वाले भेड़िये सिद्ध होंगे......
भ्रष्ट लोकतंत्र भंग होगा,
भ्रष्ट धर्म>संप्रदायवाद भंग होगा,
अन्यायपूर्ण, शोषणपूर्ण भ्रष्ट व्यवस्था भंग होगी,
जगत में सद्धर्म का शासन स्थापित होगा,
फिर लोग यही कहेंगे कि शैतान नही बल्कि इस जगत का 'ईश्वर' न्यायपूर्ण-सत्यधर्मी 'परमेश्वर' है,
जगत में सद्धर्म का शासन स्थापित होने पर
इतनी शान्ति, इतना अमन-चैन हो जाएगा कि शेर और बकरी एक घाट में पानी पियेंगे,
यह-सब बातें इसलिए भी कही जा रही हैं ताकि गवाही पूरी हो.....

10 Jul 2024

मस्तिष्क की पूरी शक्ति ही पूरी तरह वर्तमान में रहने से है, प्रेजेंट मोमेंट में रहो,
सकारात्मक लक्ष्य के साथ सकारात्मक सोच रखो<अवचेतन मन पर इसका गहरा प्रभाव पड़ता है,
हर बार सकारात्मक सोच के साथ पूर्णतः निश्चिंत हो शयन करो,
तुम्हारी सोच को ही तुम्हारा अवचेतन मन वास्तविकता में लेता है,
यद्यपि यह अपने लिए वास्तविकता का भ्रम उत्पन्न करता है,
इसलिए इससे भी सावधान रहो,
तुम्हारी धारणा पर ही तुम्हारी भावनाएं, तुम्हारे विचार निर्भर हैं,
इसलिए सकारात्मक लक्ष्य के साथ सकारात्मक धारणा रखो,
सीधे से सीधे हो वर्तमान से वर्तमान में उपस्थित रहो,
स्थिर ध्यान-अभ्यास के लिए सीधे स्थिर पद्मासन में बैठो,
पद्मासन में बैठने से रीढ़ की हड्डी से लेकर मस्तिष्क तक का सीधा संतुलन स्थापित होता है,
श्वास के ज्ञान में उपस्थित रहने से मस्तिष्क की तरोताजगी बढ़ती है, कार्य क्षमता बढ़ती है,
व्यवहारतः यथा-सहज श्वास के ज्ञान में उपस्थित रहना तुम्हारी सजगता के लिए, होश के लिए, सावधानी के लिए alertness के लिए जरूरी है,
आज MRI, EEG, MEG, TMS आदि आधुनिक मशीनों के माध्यम से दिमाग का कई कोणों से अध्ययन किया जा रहा है,
न्यूरोलाॅजी के अनुसार मस्तिष्क में स्थित तंत्रिका-कोशिका (neuron) आँख, कान, त्वचा आदि ज्ञानेन्द्रियों (senses) से कुछ ही मिली-सेकेंड में सिग्नल प्राप्त कर लेता है,
एक न्यूरॉन दूसरे न्यूरॉन को सिग्नल भी भेजता है, और रिसीव भी करता है,
{सिग्नल भेजने के लिए न्यूरॉन एक विशेष तरह का रासायनिक संदेशवाहक (chemical messenger) >
न्यूरोट्रांसमीटर को अभिमुक्ततः स्थापित (release) करता है},
सिग्नल रिसीव करने वाला न्यूरॉन उस सिग्नल को एक नये इलेक्ट्रिकल सिग्नल के रूप में दूसरे न्यूरॉन को ट्रांसफर करता है,
इस तरह तंत्रिका-कोशिकाओं (neurons) के बीच विद्युतीय-रासायनिक सिग्नल
(electrical-chemical signal) के इसी आदान-प्रदान में विचारों का जन्म होता है,
यद्यपि वैज्ञानिकों को अभी तक पूर्णतः यह सुनिश्चित नही हो पाया कि विचार वैद्युत-रासायनिक प्रतिक्रिया (electro-chemical reaction) का ही परिणाम है,

ध्यान रहे वैज्ञानिकों के पास यह एक अधूरी सच्चाई ही है,
मस्तिष्क में स्थित तंत्रिका-कोशिकाएं (neurons) विचारों के लिए तरंग का माध्यम भर है,
मस्तिष्क विचारों की तरंगित अभिव्यक्ति का यान्त्रिक माध्यम भर है,
पर विचार तरंग भर नही है < उसका आधार ज्ञान है,
उसके मूल में चेतना के माध्यम से संस्कार का दबाव है,
कर्म-संस्कार के दबाव में ही कर्म-संस्कार के अनुसार चेतना के माध्यम से मस्तिष्क में विचार की तरंगें उत्पन्न होती हैं,
मस्तिष्क स्वयं विचार उत्पन्न नही कर सकता,
जड़ मस्तिष्क स्वयं विचारों पर नियंत्रण नही कर सकता,
विचारों के पूर्णतः नियंत्रण के लिए विचारों के आधारीय ज्ञानमात्र में स्थिति होनी आवश्यक है,
विचार क्रिया है पर विचार का ज्ञान क्रिया नही है, अगर विचार (क्रिया) से अनिमित्त हो सीधे ही विचार के ज्ञानमात्र में स्थिति हो जाए तो ऐसी स्थिति में विचारों में रहते हुए भी विचारों से स्पर्श नही हो पाएगा, विचारों से अलिप्त स्थिति हो जाएगी...... 'जल-कमलवत्' सिद्ध-अवस्था......
ऐसी सिद्धावस्था में किसी भी बुद्धिमत्ता का कदापि नियंत्रण संभव नही है,
_ध्यान रहे जब तक तुम्हारी ज्ञानमात्र में स्थिति नही है,
जब तक तुम प्रतिक्रियात्मक दबाव में हो तब तक तुम गुलाम हो,
तब तक कोई भी उन्नत-बुद्धिमत्ता तुम्हारे मस्तिष्क को नियंत्रण में कर अपने कम्प्यूटर प्रोग्राम में तुम्हें मानसिक तथा बौद्धिक गुलाम बना सकती है,
हो सकता है ऐसा ही हो, क्योंकि कब<किस समय कौन सा विचार आ जाए मूर्छा में होने से इस पर तुम्हारा नियंत्रण तो है नही,
तुम्हारे न चाहने पर भी कभी भी दुर्घटनावश कोई भी विचार आ जाता है,
हो सकता है जिसे तुम अपना विचार समझ रहे हो वह तुम्हारा विचार न होकर किसी अन्य उन्नत बुद्धिमान सभ्यता द्वारा प्रक्षेपित किया हुआ विचार हो,
ध्यान रहे विचार पर तुम्हारे भविष्य की दशा तथा दिशा निर्धारित होती है,
इसलिए पूर्णतः यथा सजगता में रहते हुए पूर्णतः विवेकयुक्त हो विचारों पर नियंत्रण हो<यह बहुत ही आवश्यक है,
नियमित रूप से ध्यान-अभ्यास जारी रखो,
अपना होश बढ़ाओ, अपनी सजगता बढ़ाओ, अपना विवेक बढ़ाओ,
सर्वप्रथम श्वास को उसकी यथा सहजता में चलने दो, तत्पश्चात उस यथा सहजता में हर आती-जाती श्वास-प्रश्वास के ठीक समय पर उपस्थित रहो,
ध्यान रहे यह तो ध्यान का बस आरंभ है,
इसलिए यहीं तक नही रुकना है,
उत्तरोत्तर स्पष्टता में आगे बढ़ना है.....
_भविष्य में उन्नत दुष्ट-बुद्धिमत्ता से सबसे अधिक खतरा है,
दुष्ट-बुद्धिमत्ता ने न्यू वर्ल्ड ऑर्डर भी जारी कर दिया है,
भारतीय जन प्रतिनिधि से लेकर इसमें कई दुष्ट शामिल हैं,
अभी तो यह एक शुरुआत भर है......
सामान्यतः तुम्हें यह पता भी नही चलेगा कि तुम किसी दुष्ट-बुद्धिमत्ता के द्वारा नियंत्रित मानसिक & बौद्धिक गुलाम हो गए हो,
तुम्हें सम्मोहनवश भ्रान्ति में यही लगेगा कि तुम अपनी स्वतंत्र इच्छा से स्वतंत्रतापूर्वक जीवन जी रहे हो,
दुष्ट आसुरी-प्रवृत्ति पूरे विश्व में एकमात्र शासन स्थापित करना चाहती है,
लोगों को कृत्रिम-बुद्धिमत्ता (artificial intelligence) के माध्यम से अपने नियंत्रण में रखना चाहती है,
लोगों के साथ बहुत ही बड़ा विश्वासघात होने वाला है,
जिसे लोग अभी हितैषी समझ रहे हैं, मसीहा समझ रहे हैं वे ही उनके छिपे हुए घोर शत्रु हैं,
इससे पहले कि लोग संभल पाएंगे तब तक बहुत देर हो चुकी होगी......
दुष्ट-प्रवृति के नियंत्रण में कृत्रिम-बुद्धिमत्ता विकसित होती ही जा रही है,
उत्तरोत्तर विकसित होती कृत्रिम-बुद्धिमत्ता के प्रभाव में मनुष्य की उसकी अपनी निजता प्रभावित हो रही है,
मनुष्य यंत्रवत् संवेदनहीन होता जा रहा है,
अगर ऐसा ही चलता रहा तो अंततः एक दिन मनुष्य-जाति का दर्दनाक अंत हो जाएगा.....
यहाँ मनुष्य-जाति के लिए नकारात्मक घोषणा नही है बल्कि मनुष्य-जाति को संकेतार्थ सावधान किया जा रहा है,
सकारात्मक लक्ष्य की दिशा में वैज्ञानिक उन्नति अनुचित नही है बल्कि सकारात्मक विकास के निमित्त सराहनीय है,

पर कोई भी वैज्ञानिक आविष्कार होता है तो उसमें विशेषतः दुष्ट-प्रवृत्ति का हस्तक्षेप हो ही जाता है,
साधु-प्रवृत्ति के लोग सामान्यतया समाज से उदासीन होते हैं,
वे खुलकर समाज में आते नही हैं,
इसलिए दुष्ट-जनों को हस्तक्षेप का मौका मिल जाता है,
(जिससे वैज्ञानिक आविष्कारों का सकारात्मक लक्ष्य की दिशा में सकारात्मक<सदुपयोग नही हो पाता दुरुपयोग ही अधिक होता है,
हिरोशिमा-नागासाकी का एटम बम से विध्वंस करना<इसका उदाहरण है),
मनुष्य-समाज को बचाने के लिए अब
साधु-प्रवृत्ति के लोगों का आना बहुत ही आवश्यक है....

12 Jul 2024(I)

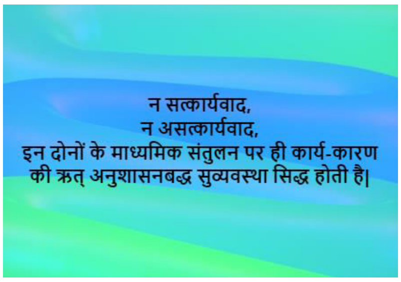

12 Jul 2024(II)

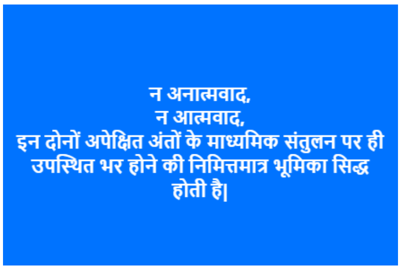

12 Jul 2024(III)

सामान्यतया तुम्हारे जो भी प्रश्न हैं उन सबका उत्तर तुम्हारे अपेक्षित दृष्टिकोण में पहले से ही सुनिश्चित है,
पूर्व सुनिश्चित उत्तर में ही तुम्हें बुद्धिगत् तुष्टि होती है,
और बुद्धिगत् तुष्टि में समाधान हो जाने का भ्रम हो जाता है,

अचेतन तल पर संचित संस्कार के दबाव में तुम्हारी जो भी अपेक्षित मांग रहती है<उस अपेक्षित मांग के अनुसार ही तुम उत्तर सुनिश्चित करते हो,
ध्यान रहे पूर्वाग्रह के रहते, अपेक्षित मताग्रह के रहते, अपेक्षित दृष्टिकोण के रहते कदापि पूर्णतः सम्यग् समाधान स्पष्ट नही है,
अपेक्षित दृष्टिकोण में 'यह सत्य है' की भ्रान्ति होना स्वाभाविक है,
इसलिए अपेक्षित दृष्टिकोण की भ्रान्ति तुम्हें नही दिखती.....
_किसी ने आत्मा के संबंध में प्रश्न किया है,
ध्यान रहे यहाँ संकेतार्थतः आत्मा का खंडन नही किया जा रहा है,
अपितु आत्मवाद के स्थापित होने से सावधान किया जा रहा है,
दृष्टि अर्थात् मत स्थापित होने से, वाद स्थापित होने से सावधान किया जा रहा है,
दृष्टि अर्थात् मत स्थापित होते ही, वाद स्थापित होते ही सम्यग् संकेतार्थ>लक्ष्यार्थ प्रयोजन से भ्रष्ट होना हो जाता है,
अध्यारोपित दृष्टिकोण में ही मत स्थापित होता है, वाद स्थापित होता है,
अहं आत्मा, अयं आत्मा, मम् आत्मा, इदं आत्मा < यह कहते ही मत स्थापित हो जाता है, वाद स्थापित हो जाता है,
अहं आत्मा, अयं आत्मा, मम् आत्मा, इदं आत्मा कहते ही अनात्म में आत्म-भाव आरोपित हो जाता है,
इदं अहं, इदं मम्, इदं मम् आत्मा का आरोप होने की क्रिया में ही स्वसम्मोहन उत्पन्न होता है, और स्वसम्मोहन में दिग्भ्रम का होना स्वाभाविक है,
गीता-उपनिषद आदि लोकप्रतिष्ठित अध्यारोपित धर्मग्रंथों में इसी तरह अनात्म में आत्म-भाव का आरोप करने से आत्मवाद स्थापित हुआ है,
इसलिए इन अध्यारोपित धर्मग्रंथों से सावधान होना बहुत ही आवश्यक है,
अगर कोई आत्मवादी यह कहता है<तुम शरीर नही हो आत्मा हो,
तो आत्मा की धारणा में>अहं आत्मा की धारणा में आत्मा के संदर्भ में मत स्थापित हो जाता है,
अगर कोई यह कहता है<यह शरीर आत्मा नही है, ये इंद्रियाँ आत्मा नही हैं, यह मन आत्मा नही है, यह बुद्धि आत्मा नही है,
यह प्रकृति आत्मा नही है<तो यहाँ तक उसकी बात ठीक है,
पर इसके आगे जैसे ही वह आत्मा की घोषणा करता है<तब आत्मवाद स्थापित हो जाता है,
ध्यान रहे आत्मा अमर-अजर है, नित्य-मुक्त है, चेतन है इत्यादि ऐसा कहने में तुम अमर-अजर, नित्य-मुक्त, चेतन इत्यादि की मान्यता में>(धारणा में) आत्म-भाव स्थापित कर रहे हो,
कोई भी मत-मान्यता अथवा धारणा तथ्यगत् नही है<वह बस मत-मान्यता होने से, धारणा होने से अनात्म ही सिद्ध है,
हाँ 'आत्मा' इस संकेत का सम्यग् लक्ष्यार्थ प्रयोजन स्पष्ट होने पर फिर आत्मवाद स्थापित नही होता है,
आत्मा को बस संकेत अर्थ में ही लेना चाहिए,
'आत्मा' कहने का सम्यग् संकेतार्थ प्रयोजन तभी स्पष्ट होता है<जब निमित्तमात्र केवल बस केवल उपस्थित भर होना स्पष्ट होता है क्या उपस्थित है, कौन उपस्थित है, कहाँ उपस्थित है, किसके प्रति उपस्थित है यह नही......
बस उपस्थित भर होना>निमित्तमात्र उपस्थित भर होना.....
न अनात्मवाद, न आत्मवाद,
इन दोनों अपेक्षित अंतों के माध्यमिक संतुलन पर ही उपस्थित भर होने की निमित्तमात्र भूमिका सिद्ध होती है,
उपस्थितिमात्र की पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता में जरा भी देह-भाव, जरा भी अहं-भाव शेष नही रह जाता.......
_इदं न अहं, इदं न मम्, इदं न मम् आत्मा कहते-२ जब कहने के लिए कुछ भी नही बचता<तब सहज ही बस उपस्थित भर होने की निमित्तमात्र भूमिका में आत्म कहने का<आत्मा कहने का सम्यग् संकेतार्थ लक्ष्य में प्रयोजन पूरा हो जाता है.....

14 Jul 2024(I)

कार्य-कारण सिद्धांत हो, कर्म-सिद्धांत हो<यह इतना अधिक संतुलित है, अनुशासनबद्ध है, सुव्यवस्थित है, न्यायपूर्ण है कि इसमें किसी कर्ताविशेष के अतिरिक्त हस्तक्षेप की आवश्यकता नही पड़ती,
जो भी किसी कर्ता का, किसी कर्ताविशेष ईश्वर का हस्तक्षेप स्वीकार करते हैं ऐसा ईश्वर कल्पना में ही सिद्ध होता है यथार्थ में नही<यह अनीश्वरवादियों का पक्ष है,
कार्य-कारण सिद्धांत हो, कर्म-सिद्धांत हो< यह इतना अधिक संतुलित है,
अनुशासनबद्ध है, सुव्यवस्थित है, न्यायपूर्ण है कि बिना किसी न्यायपूर्ण
नियामक-व्यवस्थापक के यह संभव नही<यह ईश्वरवादियों का पक्ष है,
कार्य-कारण के सिद्धांत में, कर्म के सिद्धांत में ईश्वरवादी तथा अनीश्वरवादी दोनों का अपना-अपना पक्ष है,
दोनों ही पक्ष अपने-अपने अपेक्षित दृष्टिकोण में अर्थयुक्त हैं,
पर कोई भी पक्ष पूर्णतः शुद्ध नही है,
गीता-पुराण आदि में पुरुषविशेष ईश्वर का प्रतिनिधित्व सिद्ध है,
पर वेद के ऋत् संगत शुद्ध भाग के अनुसार अपौरुषेयता का संकेत स्पष्ट है,
गीता-पुराण आदि ऋत् असंगत अध्यारोपित धर्मग्रंथों का ईश्वर अपेक्षित दृष्टिकोण के दबावयुक्त अंतराल में ही सिद्ध होता है दबावरहित>अंतरालरहित में नही,
दबावरहित>अंतरालरहित में संकेतार्थ अपौरुषेयता ही सिद्ध है न कि कोई अपेक्षित कर्ताविशेष (अहंमन्यता से युक्त<अहंकारी, मायावी कृत्रिम ईश्वर),
उपस्थितिमात्र की सहज सिद्ध भूमिका में अपौरुषेय कहना ही सम्यग् संकेतार्थ उपयुक्त है,
ध्यान रहे यहाँ अपौरुषेय कहने का प्रचलित परम्परागत अर्थ ग्रहण नही है,
अपौरुषेय कहना आरोपित कर्ता-भाव के परिप्रेक्ष्य में पुरुषविशेष के निषेध में संकेतार्थ प्रयुक्त है,
इसलिए अपौरुषेय का संकेत अर्थ ही ग्रहण हो धारणा न बने,
लोकदृष्टि में प्रचलित हुए ईश्वरवाद-अनीश्वरवाद दोनों वादों से सावधान रहते हुए यथार्थतः सत्य स्पष्टता के निमित्त रहो,
यथार्थ सत्य ही तुम्हारा उपास्य हो,
यथार्थ सत्य की ही उपासना हो,
अगर किसी को ईश्वर ही कहना है तो सम्यग् ईश्वर का संकेत अर्थ ही ग्रहण हो,
अनीश्वरवादी होने की अपेक्षा यह उपयुक्त भी है,
दुर्भाग्य की बात कि आज के समय में जो वेद के नाम पर प्रचलित है उसमें अधिकांशतः ऋत् असंगत मंत्रों की ही मिलावट की गयी है,
साधारण जनों को यह विवेक स्पष्ट नही है कि क्या अपौरुषेयतः ऋत् संगत है, और क्या कर्ता-भाव के दबावस्वरूप ऋत् असंगत है.....
कल्प के आरंभ से लेकर आज तक इतनी अधिक धार्मिक विकृति कभी नही थी,
आज वैदिक तथा सनातनी कहलाने वाले ही वेद का सर्वाधिक अपमान करने वाले तथा निंदक हैं<जिन्होंने वेद के अर्थ का अनर्थ किया है,
वेद के नाम पर मनमानी व्याख्या कर लोक को दिग्भ्रमित किया है,
लोक में सद्धर्म स्पष्ट न होना बहुत ही दुःखद दुर्भाग्य की बात है.....

14 Jul 2024(II)

तुम्हारा उठना, बैठना, चलना इत्यादि हर व्यावहारिक प्रक्रिया यथा सहजता में यथा सजग रहते हुए संतुलित मध्यम गति में संपन्न हो,
तुम्हारा पूरा का पूरा ध्यान पूरी तरह से वर्तमान में रहे,
जरा भी वर्तमान से हटकर नही,
इस बात की सावधानी रहे, सजगता रहे कि वर्तमान न चूकने पाए,
वर्तमान में जो हो रहा है<उसी का बस पूरा यथावत् संज्ञान रहे,
जिस समय जो हो रहा है उस समय पूरी तरह से वहीं उपस्थित रहना है,
एक क्षण के लिए भी प्रमाद नही हो,
मूर्छा नही हो, बेहोशी नही हो, एक क्षण के लिए भी असावधानी न हो, लापरवाही न हो,
सीधे से सीधे वर्तमान से वर्तमान में उपस्थिति बनी रहे इसके लिए आरंभिक स्तर पर श्वास का अवलंबन बहुत ही आवश्यक है,
श्वास की प्रकृति, श्वास का स्वरूप आरंभिक ध्यान के परिप्रेक्ष्य में संतुलनपूर्वक सीधे से सीधे हो संभलने के लिए, एकाग्रता के लिए, स्थिरता के लिए सबसे सीधा, सरल, सहज स्वाभाविक अवलंबन है,
श्वास के आने-जाने का मध्य<अंतराल तुम्हारे संभलने के लिए वरदानस्वरूप है,
क्योंकि हर बार के मध्य के अंतराल में हर बार ही और सीधे हो संभलने के लिए तुम्हारे लिए यहाँ अवसर प्राप्त है इस अवसर को कदापि मत चूकना,
हर बार ही श्वास के आने-जाने के मध्य<अंतराल में और सीधे से सीधे हो संभलने पर हर बार श्वास के आने-जाने के ठीक समय में उपस्थिति हो पाती है,
चूँकि श्वास का आना-जाना लगातार हो रहा है, और एक सीध में हो रहा है,
इसलिए लगातार एक सीध में स्थिरतापूर्वक ध्यान रहे इसके लिए प्राथमिक ध्यान के स्तर पर श्वास का अवलंबन तुम्हारे लिए वरदानस्वरूप है,
जब संतुलनपूर्वक सीधे हो संभलना पूरा हो जाता है, एकाग्रता पूर्ण हो जाती है, स्थिरता पूर्ण हो जाती है,
जब ब्रह्मचर्य-व्रत पूर्ण हो जाता है, संयम पूर्ण हो जाता है, पवित्रता पूर्ण हो जाती है तब ही समाधि की स्थिति है इससे पहले नही,
जब ऊर्जा का प्रवाह नीचे की तरफ न होकर सहज ही सीधे पूर्णतः ऊर्ध्व की ओर हो जाता है, जब मन निवृत्तिपूर्वक पूर्णतः निरुद्ध हो जाता है,
तब निवृत्तिपूर्वक पूर्णतः निरुद्धता में सहज ही मुक्ति है....

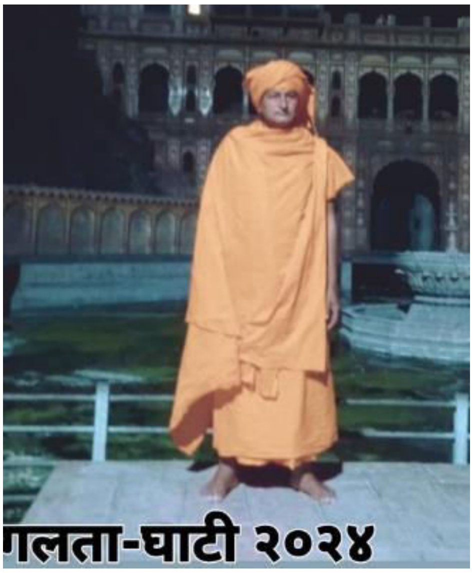

16 Jul 2024

संबंधित ज्ञान>ज्ञान की उत्तरोत्तर स्पष्टता में अंततः ज्ञानमात्र ही रह जाता है,

ज्ञानमात्र का कभी भी अभाव नही है,
विशुद्धतः ज्ञानमात्र>(ज्ञानमात्र की पूर्णता) का न कभी आरंभ है, न कभी अंत ही है, ज्ञानमात्र सदा-सनातन, सदा-अपरिवर्तित, नित्य-स्थिर है,
ज्ञानमात्र कहने का तात्पर्य बस केवल ज्ञात भर होने से है, बस सिर्फ मालूम भर होने से है, क्या मालूम हो रहा है, किसे मालूम हो रहा है इससे नही,
लोक के सभी धर्म-दर्शन, मत-संप्रदाय सब
क्या ज्ञात हो रहा है, किसे ज्ञात हो रहा है< इसी अपेक्षित दृष्टिकोण पर निर्भर हैं,
पर ध्यान रहे सबका आधार ज्ञानमात्र अर्थात् ज्ञात भर होना>(विशुद्धतः बस केवल ज्ञात भर होना) ही है,
_क्या ज्ञात हो रहा है, किसे ज्ञात हो रहा है<यह आरोप है तथ्यतः नही,
बस ज्ञात भर होना तथ्यतः सहज सिद्ध है आरोप नही....
परिशुद्घतम् ज्ञानमात्र की परिपूर्ण परिस्पष्ट पारदर्शिता में जरा सा भी भ्रम, संशय, अज्ञान शेष नही,
परिशुद्घतम् ज्ञानमात्र की परिपूर्ण परिस्पष्ट पारदर्शिता में सहज ही सत्यता की परिपूर्णता है, चेतनता की परिपूर्णता है, होश की परिपूर्णता है, जागृति की परिपूर्णता है, सहजता की परिपूर्णता है, शान्ति की परिपूर्णता है.......
अपेक्षित दृष्टिकोण क्या है यह स्पष्ट होना बहुत ही आवश्यक है,
बिना स्पष्ट हुए भ्रान्ति भंग नही होती,
तथ्यतः भ्रान्ति नही है,
अपेक्षा पर निर्भर आरोपित दृष्टि में ही भ्रान्ति होती है......
उदाहरण के लिए प्रज्ञानं ब्रह्म<यह अद्वैत-वेदांत वाक्य है,
यद्यपि यह वाक्य संकेतप्रद है<जिसमें प्रज्ञान की ओर लक्ष्यार्थ संकेत किया गया है,
पर प्रचलित वेदांत-मत में प्रज्ञानं ब्रह्म कहकर जो संकेत किया गया है, जिस ओर लक्ष्यार्थ संकेत किया गया है<वह अपेक्षित दृष्टिकोण में ही सिद्ध होता है न कि ज्ञानमात्र में,
इसलिए प्रचलित वेदांतियों का अपेक्षित दृष्टिकोण में (ब्रह्म संबंधित अपेक्षित दृष्टिकोण में) आबद्ध रहना स्वाभाविक है,
प्रचलित वेदांतियों का प्रज्ञान कहने का तात्पर्य संबंधित धारणा (आत्मज्ञान अथवा ब्रह्मज्ञान) से है न कि ज्ञानमात्र से,
अगर प्रज्ञानं ब्रह्म कहने की अपेक्षा ज्ञानमात्र कहा जाता तो तब धारणा में आबद्धता न होती सम्यग् संकेतार्थ बोध स्पष्ट होता,
_प्रज्ञानं ब्रह्म सहित सभी तथाकथित महावाक्य आरोपित दृष्टिकोण में होने से तथ्यतः सिद्ध नही हैं,
पर 'ज्ञानमात्र' आरोपित दृष्टिकोण में नही है,
ज्ञानमात्र में न अहंकार का आरोप होता है, न आत्मा अथवा ब्रह्म इत्यादि (धारणा) का आरोप ही है,
ज्ञानमात्र में कोई भी आरोप नही है,
ज्ञानमात्र में बस उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका ही सहज सिद्ध है,
(चूँकि आरोप होने से>आरोपित करने की क्रिया होने से प्रज्ञानं ब्रह्म<यह कहने में अपेक्षित दृष्टिकोण का दबाव बनता ही है,
जहाँ प्रज्ञानं ब्रह्म<यह कहना अपेक्षित दृष्टिकोण के दबावयुक्त अंतराल में ही सिद्ध होता है न कि दबावरहित>अंतरालरहित में,
इसलिए प्रज्ञानं ब्रह्म कहने की अपेक्षा ज्ञानमात्र कहना ही सम्यग् संकेतार्थ उपयुक्त है),
ध्यान रहे 'प्रज्ञानं ब्रह्म' कहना वेदांत का संकेतप्रद-सार्थक-सराहनीय दृष्टिकोण है,
प्रचलित हिन्दू-धर्म की पूर्णाहुति प्रज्ञानं ब्रह्म के संकेत में ही सम्पन्न होती है इससे सीधे फिर बस अंतरालरहित ज्ञानमात्र ही रह जाता है,
'ब्रह्म' सत्य कहने की अपेक्षा मात्र सत्य कहो,
प्रज्ञानं ब्रह्म कहने की अपेक्षा मात्र ज्ञान कहो तभी संकेतार्थ सार्थकता है,
उपनिषद का 'नेति-नेति इति वेदानुशासनम्' यह वाक्य संकेतप्रद है,
जो प्रचलित हिन्दू-धर्म की सबसे अधिक ऊँचाई है,
पर अगर 'नेति-नेति' इस निषेध-मुख निर्वचन से तुम आत्मा अथवा ब्रह्म को सिद्ध कर रहे हो,
तब तो 'नेति-नेति' इस निषेध-मुख निर्वचन की सार्थकता नही रह जाती है तब तो अर्थ का अनर्थ हो गया,
क्योंकि तब तुम घूम-फिर कर उसी अपेक्षित दृष्टिकोण के धरातल में ही घिरे हो,
तुम्हारा सम्पूर्ण समर्पण नही हो पाता,
भयवश तुम कुछ न कुछ बचा ही लेते हो,
नेति-नेति कहते-कहते अंततः जब कुछ भी कहने के लिए नही बचता, आत्मा भी नही, ब्रह्म भी नही, शून्य भी नही, कुछ भी नही-कुछ भी नही......

जब कुछ भी नही बचता तब पूर्ण शुद्धता में, पूर्ण पवित्रता में सहज ही निभ्रान्त जैसा है स्पष्ट हो जाता है,
ध्यान रहे जो बिना किसी दबाव के सहज सिद्ध है<उसका निषेध नही होता है,
जो आरोप में है, आरोपित है<उसी का निषेध होता है,
इसलिए अपनी तरफ से कुछ भी आरोप करने से सावधान रहो, अपनी तरफ से आरोपित हो कुछ भी कहने से सावधान रहो,
(जैसे ही आरोप में कोई घोषणा करता है<वह उसका अपेक्षित द्दष्टिकोण हो जाता है,
फिर चाहे वह आत्मा की घोषणा करे, चाहे ब्रह्म की घोषणा करे, चाहे सत्य की घोषणा करे<वह उसका अपेक्षित द्दष्टिकोण हो जाता है),
_यहाँ वेदांत के प्रति निंदात्मक द्दष्टिकोण नही है, वेदांत प्रचलित हिन्दू-धर्म का सबसे विकसित तथा अंतिम दर्शन है,
पर हथकड़ी भले सोने की ही क्यों न हो बंधन तो बंधन ही है,
समझदार के लिए यह इशारा काफी है,
भले ही अपेक्षित द्दष्टिकोण का बंधन तुम्हें न दिखता हो,
पर जो दुःख हो रहा है,
जो कुछ भी भ्रम,संशय,अज्ञान है,
वह सब अपेक्षित द्दष्टिकोण के होने से ही है,
चूँकि तुम्हारा महत्व, तुम्हारा मोह लोक-प्रतिष्ठित अध्यारोपित धर्मग्रंथों के प्रति है,
तुम्हारा मोह भंग हो, तुम्हारा सम्मोहन भंग हो, तुम्हारी भ्रान्ति भंग हो, तुम्हारा दुःख भंग हो, तुम्हारा सही अर्थ में मंगल हो<इस उद्देश्य से उन धर्मग्रंथों की कमी दिखाकर उनका उदाहरण देकर सावधान करना पड़ता है,
बार-बार अपेक्षित द्दष्टिकोण से सावधान करना पड़ता है,
ध्यान रहे यहाँ किसी भी लोकप्रतिष्ठित धर्म-दर्शन का खंडन नही किया गया है,
और न ही मंडन किया गया है,
अपितु उनकी आधारीय सत्यता स्पष्ट की गयी है......
_'प्रज्ञानं ब्रह्म' कहने में अपेक्षित पूर्वाग्रह का दबाव है, अपेक्षित मताग्रह का दबाव है, जहाँ अपेक्षित पूर्वाग्रह के दबाव में अपेक्षित द्दष्टिकोण की एक सीमा निर्धारित होती है,
पर 'ज्ञानमात्र' अपेक्षित द्दष्टिकोण में सीमित नही है, ज्ञानमात्र अपेक्षित द्दष्टिकोण के आर-पार है, असीमित आधार है,
वेदांतियों को भी वेदांत की भावनीय भावना पूरी कर अंततः ज्ञानमात्र के ही निमित्तमात्र होना है,
ज्ञानमात्र से इतर होने पर ही अपेक्षित द्दष्टिकोण का दिग्भ्रम खड़ा होता है,
प्रज्ञानं ब्रह्म कहो, अथवा कुछ भी कहो
<अपेक्षित द्दष्टिकोण का आधार सहज सिद्ध ज्ञानमात्र ही है,
(प्रचलित वेदांती जो ब्रह्म कहते हैं<वह उनका अपना अपेक्षित द्दष्टिकोण है न कि तथ्यतः यथार्थ),
ठीक है बुद्धि की सक्रियता तथा तार्किकता के निमित्त दार्शनिक बुद्धिविलास भी एक सीमा तक अर्थयुक्त है,
पर तुम्हें दार्शनिक बुद्धिविलास में ही नही उलझे रहना है,
वेदांतियों को भी वेदांत की भावनीय भावना पूरी करने के उपरांत अंततः ज्ञानमात्र के ही निमित्त होना है,
'निमित्त' का धर्म निमित्त भर होना है,
या तो वह अपेक्षित द्दष्टिकोण के अपेक्षित-निमित्त होता है, अथवा ज्ञानमात्र के निमित्त>(निमित्तमात्र),
ज्ञानमात्र के निमित्त>(निमित्तमात्र) ही अपेक्षित द्दष्टिकोण के बंधन से मुक्ति है......
_ज्ञानमात्र के निमित्त वासना नही है, कामना नही है, राग नही है, द्वेष नही है, मोह नही है,
ज्ञानमात्र के निमित्त अहंता नही है, अस्मिता नही है,
ज्ञानमात्र के निमित्त भ्रान्ति नही है, संशय नही है, संदेह नही है, अज्ञान नही है, बंधन नही है, दुःख नही है, क्लेश नही है,
ज्ञानमात्र के निमित्त दबाव नही है, असहजता नही है, अशान्ति नही है, अस्थिरता नही है, अपूर्णता नही है,
ज्ञानमात्र के निमित्त अशुद्धि नही है, अपवित्रता नही है,
अस्पष्टता नही है,
ज्ञानमात्र के निमित्त जड़ता नही है, बेहोशी नही है, मूर्छा नही है, लीनता नही है, तल्लीनता नही है, तादात्म्यता नही है,
ज्ञानमात्र के निमित्त सहज ही चेतनता है, होश है, जागरण है,
ज्ञानमात्र के निमित्त सहज ही ताजगी है, स्पष्टता है, पारदर्शिता है,
ज्ञानमात्र के निमित्त सहज ही शुद्धता है, पवित्रता है,
ज्ञानमात्र के निमित्त सहज ही सहजता है, शान्ति है, स्थिरता है,
ज्ञानमात्र के निमित्त सहज ही जल-कमलवत् सिद्ध-स्थिति है, सहज ही मुक्ति है....

18 Jul 2024(i)

तुम कितनी भी चेतनता में हो जाओ, होश में हो जाओ, जागृति में हो जाओ, स्पष्टता में हो जाओ, पारदर्शिता में हो जाओ,
फिर भी उससे और चेतनता में,और होश में,और जागृति में,और स्पष्टता में,और पारदर्शिता में होना शेष रह ही जाता है>यही तुम्हारी सीमा है,
इसी सीमा में ही तुम्हारा अपना अस्तित्व है,
संभावना में संभावना होने पर भी संभावना शेष रह ही जाती है<इसी में तुम्हारी नियति निर्धारित है,
इसी नियति में ही तुम्हारा अपना परिचय है,
समझदार के लिए इतना संकेत पर्याप्त है......
जो कुछ भी तुम पूर्णता का दावा करते हो<अपेक्षाकृत दृष्टिकोण में होने से वह अपेक्षाकृत पूर्णता का ही दावा होता है न कि सहज सिद्ध पूर्णतः पूर्णता का,
उदाहरण के लिए सभी जैन तीर्थंकर अरिहंत होने से पहले अज्ञान>(सापेक्ष ज्ञान) की अवस्था में ही थे फिर उन्हें केवल-ज्ञान होता है, उनका यह 'केवल-ज्ञान' भी अपेक्षाकृत दबाव में होने से अपेक्षाकृत पूर्णता में ही सिद्ध है न कि पूर्णतः पूर्ण सहज सिद्ध,
इसलिए तीर्थंकरों को भी मुक्त होने के उपरांत अपेक्षाकृत दबाव के वशीभूत फिर से अज्ञान के तल पर लौटना पड़ता है,
'आरंभ' अपेक्षाकृत दबाव में है इसलिए अंत है,
'अंत' अपेक्षाकृत दबाव में है इसलिए आरंभ है.....
_और रही ईश्वर की बात तो ईश्वर के संबंध में ईश्वरवादियों में परस्पर पर्याप्त मतभेद तथा विरोधाभास है,
ईसाइयत तथा इस्लाम में ईश्वर के संदर्भ में मतभेद है,
हिन्दुओं में वैदिकों (त्रैतवादियों) तथा पौराणिकों के मध्य पर्याप्त मतभेद है,
पौराणिकों में भी अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत, द्वैत मत हैं जिनमें परस्पर मतभेद है,
हर मत का अपना-अपना अपेक्षित दृष्टिकोण है,
ज्ञानमात्र के निमित्त ही बस समाधान है,
अपेक्षित दृष्टिकोण के रहते कदापि नही.....
ठीक है चेतनता की पूर्णता,
होश की पूर्णता, जागृति की पूर्णता, स्पष्टता की पूर्णता, पारदर्शिता की पूर्णता में किसी अनुत्तर-लोकोत्तर सत्ता का संकेतार्थ परिचय होता है,
उपासना के दृष्टिकोण से यह अर्थयुक्त है,
पर समाधान तो ज्ञानमात्र के निमित्त होने पर ही है....

18 Jul 2024 (ii)

बस जाना जा रहा है,
यह तथ्यतः सहज सिद्ध है,
कौन जान रहा है, क्या जान रहा है यह तथ्यतः सहज सिद्ध नही है अपितु दबाव में आरोपित है,

बस जाना जा रहा है<इसी में बस स्थिर भर रहना है,
बस जाना जा रहा है<इसमें निरंतर यथा सहज-सजग हो जब स्थिरता पूरी होती है तब 'बस जाना जा रहा है'<यह स्पष्ट हो जाता है,
सर्वप्रथम यहाँ-वहाँ से ध्यान हटाकर श्वास के आने-जाने के ज्ञात होने में ही बने रहना है,
जब तक श्वास का ज्ञानमात्र न रह जाए, अर्थात् जब तक सांस का बस ज्ञात भर होना न रह जाए (बस मालूम भर होना न रह जाए) तब तक सजगतापूर्वक वहीं बने रहना है, तब तक बिल्कुल भी वहाँ से हटना नही है,
जब तक क्या ज्ञात हो रहा है (क्या मालूम हो रहा है), किसे ज्ञात हो रहा है (किसे मालूम हो रहा है)<यह बना हुआ है, तब तक समझ लो ज्ञात भर होना (मालूम भर होना) साफ-साफ स्पष्ट नही हो सकता,
जब तक विशुद्धतः बस ज्ञात भर होना (खालिस बस मालूम भर होना) साफ-साफ स्पष्ट नही हो जाता,
तब तक भ्रम, संशय, अज्ञान, दुःख बना ही रहता है,
बस जाना जा रहा है<(यह) किसी की तरफ से नही है<(यह) बिना किसी अंतराल के सीधे ही सहज उपस्थित भर है<(इसमें) तुम्हारी बस उपस्थित भर होने की निमित्त भूमिका है,
तुम्हारे बस निमित्त उपस्थित भर होने से इससे पहले जो अभी तक सत्य लग रहा था वह भ्रान्ति सिद्ध हो भंग हो जाता है,
ध्यान रहे 'किसी की तरफ से नही है' कहने में संकेत-अर्थ में अपौरुषेयता सिद्ध है,
यहाँ अपौरुषेय कहना प्रचलित ईश्वर की धारणा से नही है>बस संकेत भर है,
फिर भी अगर किसी को ईश्वर कहना है तो उसका अध्यारोप-रहित (ला-शरीक) संकेत-अर्थ ही ग्रहण हो,
अध्यारोपित धर्मग्रंथों के अध्यारोपित झूठे ईश्वरों (शरीकों) का अर्थ ग्रहण न हो अन्यथा अगर अध्यारोपित मत बन रहा है (शिर्क हो रहा है) तो फिर सापेक्षिक जाल में फँस रहे हो,
(बस सही इशारे के मतलब से ला-शरीक को ही बस ला-शरीक कहो,
अल्लाह ला-शरीक है<ऐसा कहना भी शिर्क ही है, क्योंकि यह कहकर फिर फिरकिया-नजरिये को ही शरीक किया जा रहा है),
लोकदृष्टि में प्रतिष्ठित-प्रचलित अध्यारोपित धर्मग्रंथों से सावधान रहो,
कौन जान रहा है, किसे जान रहा है<इसके दबाव में ही अंतराल स्थापित हो भ्रम उत्पन्न हो रहा है,
कौन जान रहा है, किसे जान रहा है<इसके बीच ही यह पूरा संसार फँसा हुआ है,
प्रचलित धर्म-दर्शन, मत-संप्रदाय सब इसी सापेक्षिक अंतराल में फँसे हुए हैं,
गीता-उपनिषद-वेदांत आदि का अपेक्षित-आरोप इसी सापेक्षिक अंतराल में अर्थयुक्त है अंतरालरहित ज्ञानमात्र में नही,
कौन जान रहा है, क्या जान रहा है (किसे जान रहा है)<इस अपेक्षित दृष्टिकोण के दबाव में ही दुःख उत्पन्न हो रहा है अन्यथा दुःख है ही नही,
कौन जान रहा है, क्या जान रहा है<इससे सजगतापूर्वक सावधान हो सीधे ही बस ज्ञानमात्र के निमित्त हो जाओ.....

20 Jul 2024(i)

अपनी कमी को सहजता से स्वीकार करना पहली ईमानदारी है,
और उस कमी को हटाना दूसरी ईमानदारी है,
पहली ईमानदारी दूसरी ईमानदारी के लिए आधारीय बल है,
जब तक पहली ईमानदारी नही है,
तब तक दूसरी ईमानदारी के लिए सरलता नही हो पाती,
अगर तुम अपनी कमी को यथा सहजतापूर्वक ईमानदारी से स्वीकार करते हो, और उसे जिम्मेदारी से हटाते हो तो इससे सबसे पहले तुम्हारा भला होगा,
फिर इससे पारिवारिक सौहार्द बढ़ेगा, पारिवारिक संतुलन बढ़ेगा,
सामाजिक सौहार्द बढ़ेगा, सामाजिक संतुलन बढ़ेगा,
जो कुछ भी प्रतिकूल व्यवहार हो रहा है, अनुचित व्यवहार हो रहा है उसके लिए स्वयं अपने को ही पूरी ईमानदारी से जिम्मेदार ठहराने पर एक ईमानदार साधक का जन्म होता है,
अपनी कमी को नजरअंदाज कर दूसरों पर ही दोष मढ़ने वाला कभी भी एक जिम्मेदार साधक नही बन सकता,
कोई व्यक्ति अचानक आकर किसी के गाल पर एक थप्पड़ जड़ देता है तो इसमें उसकी प्रतिक्रिया क्या होगी.....
एक ईमानदार तथा जिम्मेदार साधक उसे धन्यवाद देगा,
क्योंकि इस निमित्त से उसका किसी पूर्व का अथवा किसी पूर्वजन्म का जो लेन-देन रह गया था वह बराबर हो गया,

अब वह फिर से बदला लेकर नया आरंभ नही करेगा,
एक साधारण व्यक्ति इस तरह की घटना से अपमानजनक महसूस करेगा,
और उसे उस व्यक्ति पर क्रोध भी आएगा,
हो सकता है वह क्रोध के आवेग में बहकर उसे भी बदले में थप्पड़ मार दे,
एक कालिक दृष्टिकोण से यह बात भी ठीक ही लगती है कि अन्याय हो रहा है तो अन्याय को सहन नही करना चाहिए,
अन्याय का अविलंब तत्परतापूर्वक प्रतिकार करना चाहिए,
पर ऋत्<नियम को स्पष्ट किसी त्रिकालज्ञ साधक का ऐसा दृष्टिकोण नही होता,
उसकी ऋत्<मुखी दृष्टि में कभी भी किसी के साथ अन्याय नही होता,
हर किसी के साथ न्याय ही होता है,
समझदार के लिए यह इशारा काफी है,
ध्यान रहे जो बात सामाजिक दृष्टिकोण से उचित लगती है जरूरी नही कि वह साधनात्मक दृष्टिकोण से भी उचित ही हो,
सामाजिक दृष्टिकोण और व्यक्तिगत् साधनात्मक दृष्टिकोण दो अलग-अलग कोने हैं<जो कभी मिल नही सकते,
जो नियम व्यक्तिगत् साधनात्मक दृष्टिकोण से उचित लगते हैं जरूरी नही कि वे सार्वजनिक-सामाजिक परिप्रेक्ष्य में भी उचित ही हों,
संतुलन तथा विकास के निमित्त 'व्यक्तिगत् नियम' व्यक्तिगत् संदर्भ में उपयुक्त हैं,
और 'सामाजिक नियम' सामाजिक संदर्भ में उपयुक्त हैं,
किसी को भी अपने दृष्टिकोण को किसी भी अन्य दृष्टिकोण पर लादना नही चाहिए,
हर दृष्टिकोण अपनी-अपनी जगह पर उपयुक्त है,
ध्यान रहे कोई भी दृष्टिकोण सम्पूर्ण नही है,
दृष्टिकोण-विशेष के रहते कदापि पूर्णतः सम्यग् समाधान संभव नही,
दृष्टिकोण-विशेष से अनिमित्त दर्शनमात्र के निमित्त ही पूर्णतः सम्यग् समाधान स्पष्ट है....
_जिन्हें समाज की फिक्र है वे नये आरंभ की, क्रान्ति-प्रतिक्रान्ति की बात अवश्य करेंगे,
सापेक्षिक संतुलन के निमित्त यह किसी अर्थ में उचित भी है,
सापेक्षिक संतुलन किसी एक
दृष्टिकोण-विशेष पर निर्भर नही है,
सापेक्षिक संतुलन के निमित्त जिस समय जो उचित है<वह आवश्यक है,
इस लोक में परस्पर विरोधी विचार-धाराएं
हैं<उन सबका होना सापेक्षिक संतुलन के ही निमित्त है....

20 Jul 2024(ii)

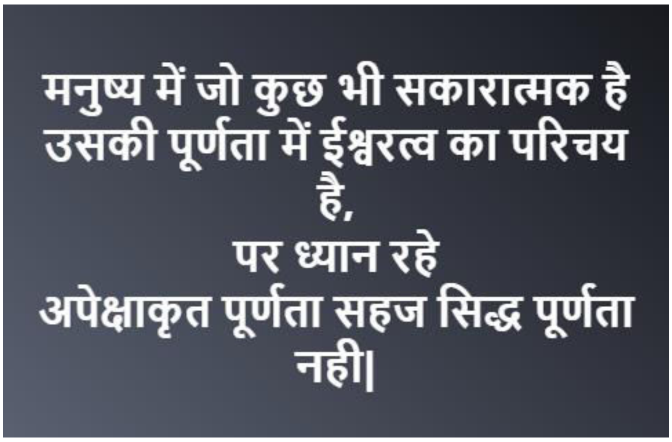

20 Jul 2024(iii)

हाड़-मांस-पीब-मज्जा आदि के समुच्चय इस घृणित शरीर से कैसा मोह, कैसी आसक्ति....
शरीर की अशुभ भावना करने से वैराग्य-भाव उत्पन्न होता है,
अगर अभी तुम में वैराग्य-भाव नही तो शरीर की अशुभ भावना करो,
संसार की, सांसारिक भोगों की अशुभ भावना करो,
बिना वैराग्य-भाव के स्थिरतापूर्वक ध्यान-अभ्यास में प्रवृत्ति नही होती, बल नही होता,
जब तक शारीरिक आकर्षण बना हुआ है,
जब तक सांसारिक आकर्षण बना हुआ है तब तक स्थिरतापूर्वक ध्यान-अभ्यास में बैठने के लिए प्रवृत्ति नही होती है, बल नही होता है,
आरंभ में ध्यान निःरस है, और इंद्रिय-भोग सरस पर परिणाम में ध्यान सुख-पूर्ण है,
शान्ति-पूर्ण है, और इंद्रिय-भोग दुःखद,
भोक्ता-भोग-अतृप्ति फिर भोक्ता-भोग-अतृप्ति का यह चक्र चलता ही रहता है,
इस चक्र से मुक्ति हो इसके लिए भोक्ता-भाव से अनिमित्त हो ज्ञानमात्र के निमित्त रहो,
भोक्ता-भाव के रहते न ही भोगों से परितृप्ति संभव है न परिनिवृत्ति ही,
भोक्ता-भाव से अनिमित्त ज्ञानमात्र के निमित्त ही परितृप्ति भी संभव है, परिनिवृत्ति भी संभव है,
परिनिवृत्ति में जो सहज स्थिर शान्ति है<वह अकथनीय है,
भोगों से पूर्णतः पूर्ण परिनिवृत्त होने में जो सहज अक्षुण्ण शान्ति है देवलोकों के सभी दिव्य-भोगों का सम्मिलित सुख भी उसकी तुलना में नगण्य है,
ब्रह्मलोक का 'ब्रह्मलीनता' का आनंद (ब्रह्मानंद) भी लीनतारहित पूर्णतः पूर्ण सहज शान्ति के समक्ष नगण्य है,
उत्तरोत्तर दिव्य से दिव्यतर सभी भोग क्षणिक हैं,
क्षणिक होने से ही तल्लीनतावश सुख की भ्रान्ति होती है,
प्रचलित वेदान्त का ब्रह्म (चिदानंद) भी क्षणिक है, अनित्य है, अनात्म है इसलिए क्षणिक, अनित्य, अनात्म होने से ही उसमें लीनता संभव हो पाती है,
अगर क्षणिक न हो, अनित्य न हो, अनात्म न हो तो तब लीनता संभव नही है,
लीनता स्वसम्मोहनवश है,
इसलिए लीनता है तो एक सीमा के बाद लीनता का भंग होना भी स्वाभाविक है,
अतः कोई भी लीनता हो चाहे वह ब्रह्मलीनता ही क्यों न हो उसका भंग होना स्वाभाविक है,
हर तरह की लीनता से, तल्लीनता से, तादात्म्यता से सावधान हो सहज-नित्य-स्थिर ज्ञानमात्र के निमित्त रहो,
ज्ञानमात्र में लीनता नही है,
क्योंकि ज्ञानमात्र में होश की परिपूर्णता है, जागृति की परिपूर्णता है,
स्पष्टता की परिपूर्णता है,
ज्ञानमात्र की पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता में कोई भी भ्रम, संशय, अज्ञान, दुःख नही है,
अक्रिय सहज स्थिर ज्ञानमात्र में अहं-भाव का आरोप नही है, कर्ता-भाव का आरोप नही है,
ज्ञानमात्र में निमित्त की बस निमित्तमात्र उपस्थिति भर की भूमिका ही सहज सिद्ध है......

_इंद्रिय-भोगों के पीछे मत भागो,
प्रारब्ध से जो भी भोग उपलब्ध हैं उसके प्रति यथा सहज-सजग रहते हुए ज्ञानमात्र के निमित्त रहो,
_भोगों के प्रति ऐसे रहो कि भोगों का न ज्ञाता रह जाए, न दृष्टा रह जाए, न साक्षी रह जाए,
भोगों का न भोक्ता रह जाए, न भोग रह जाए, न भोग-भावना रह जाए भोगों का बस ज्ञानमात्र ही रह जाए,
भोगों का बस दर्शनमात्र ही रह जाए,
_जब भोगों के प्रति न ज्ञाता-भाव रह जाता है, न दृष्टा-भाव रह जाता है, न साक्षी-भाव रह जाता है, न भोक्ता-भाव रह जाता है,
जब भोगों का बस ज्ञानमात्र ही रह जाता है,
अर्थात् भोगों का बस केवल ज्ञात होना भर ही रह जाता है,
तब भोगों में रहते हुए भी भोगों से अस्पृश्य की स्थिति रहती है,
भोगों में रहते हुए भी भोगों से अलिप्त की स्थिति होती है,
यही जल-कमलवत् सिद्ध-अवस्था है,
जल-कमलवत् सिद्ध-अवस्था का कुछ पाखंडी भी दावा करते हैं उनसे अवश्य ही सावधान रहो,
ध्यान रहे सम्यग् ज्ञानी की भोगों के भोग में स्थिति न होकर बस ज्ञानमात्र के निमित्त ही स्थिति होती है.....

22 Jul 2024

निर्देशन हो रहा है,
उस निर्देशन में आप्त-पुरुष की निमित्तमात्र बस उपस्थिति भर की भूमिका होती है,
जिसे उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका स्पष्ट नही है, और उपदेश दे रहा है<वह स्वयं भी दिग्भ्रमित है,
और दूसरों को भी दिग्भ्रमित कर रहा है,
उपस्थित भर होने की निमित्तमात्र भूमिका स्पष्ट न होने से कर्ता-भाव का उत्पन्न होना स्वाभाविक है, अहं-भाव का उत्पन्न होना स्वाभाविक है, अहंकार का उत्पन्न होना स्वाभाविक है,
यह कर्ता ही सापेक्षिक प्रपंच को रचता है,
और रचकर अपने ही रचे हुए जाल में फँसा रह जाता है,
अगर तुम्हें दुःख हो रहा है तो तब तुम निश्चित ही कर्ता-भाव के, भोक्ता-भाव के दबाव में हो,
कर्ता-भाव में तुम कर्म कर रहे हो,
और भोक्ता-भाव में किए हुए कर्म का फल भोग रहे हो<यही दुःखद बंधन है,
पर ध्यान रहे स्वभावतः तुम न कर्ता हो, न भोक्ता हो स्वभाव से तुम बस निमित्तमात्र हो,
बस उपस्थित भर होने की निमित्तमात्र भूमिका स्पष्ट न होने से ही दबाव में कर्ता-भाव उत्पन्न हुआ है, भोक्ता-भाव उत्पन्न हुआ है.....

25 Jul 2024

जो भी अकेले<एकाकी विन्दु singularly<single point की बात करते हैं, एकाकी विन्दु से आरंभ की बात करते हैं यह उनकी सापेक्षिक बुद्धि का परिचय है न कि तथ्यतः यथार्थ,
जो कहते हैं आरंभ में एक ही था, उस एक से ही बहुत हो गया,
उनका यह मत परम्परागत् गणितीय दृष्टिकोण से उपयुक्त लगता है,
पर ध्यान रहे जब भी तुम एक की बात करते हो तब तुम अपेक्षित दबाव में होकर ही एक की बात करते हो,
कहीं न कहीं तुम्हारी दृष्टि में दूसरा भी है, दो भी है तभी तुम उसकी अपेक्षा में एक की बात करते हो,
अगर तुम्हारी दृष्टि में दूसरा न होता तो तब तुम्हारे पास किसी की तुलना में<किसी से तुलना करने का, किसी की अपेक्षा में<किसी से अपेक्षित होने का आधार भी नही होता,
तब तुम न एक कह पाते, न दो कह पाते, और न बहुत कह पाते,
तब तुम न द्वैत कह पाते, न अद्वैत कह पाते,
तब सहज ही तथ्यतः निभ्रान्त स्पष्टता है,
द्वैत की अपेक्षा में अद्वैत सिद्ध करने पर ही तुम अद्वैत में एक को सिद्ध करते हो,
अर्थात् मत सिद्ध करते हो न कि 'न यह', 'न यह'= माध्यमिक संतुलन.......
(माध्यमिक संतुलन कहने में साधनात्मक परिप्रेक्ष्य में सम्यग् संकेतार्थ दिशा-बोध स्पष्ट होता है),
अगर तुम्हारे अद्वैत कहने में एक बचता है तो तुम घूम-फिर कर फिर द्वैत को ही सिद्ध कर रहे हो,
'न यह अंत', 'न यह अंत' दोनों अंतों के माध्यमिक संतुलन में उससे भी सूक्ष्म दो अंत हैं, इस तरह उत्तरोत्तर माध्यमिक संतुलन में जब आरोप के लिए, आरोपित होने के लिए कुछ भी नही बचता तब सहज ही निभ्रान्त यथा स्पष्टता है,
उत्तरोत्तर माध्यमिक संतुलन हो<इस निमित्त से ही सम्पूर्ण अभ्यास का, सम्पूर्ण धर्म-साधना का निमित्त है,
हर बार माध्यमिक संतुलन से सीधे ही उससे भी और माध्यमिक संतुलन में स्थिति होते रहने से सापेक्षिक दबाव के अंतराल में कदापि गिरना नही होता,
उत्तरोत्तर माध्यमिक संतुलन में स्थिति होते रहने से अंततः जब माध्यमिक संतुलन पूर्ण हो जाता है तभी सहज सिद्धता है उससे पहले अपेक्षाकृत सिद्ध-अवस्था ही है,
(अपौरुषेय सनातन ऋत्<नियम के अनुसार
अपेक्षाकृत सिद्ध-अवस्था ही सिद्ध है, क्योंकि कितना भी माध्यमिक संतुलन क्यों न हो जाए उससे और आगे का माध्यमिक संतुलन बचता ही है),
ध्यान रहे सहज सिद्धता होती है कि नही होती है इस संदर्भ में मत स्थापित न हो, इस बात का न्याय पूर्णतः सम्यग् समाधि में ही स्पष्ट है,
इसलिए जब तक पूर्णतः सम्यग् समाधि स्पष्ट न हो जाए तब तक सहज सिद्धता है अथवा नही है, मुक्ति सदा-सर्वदा के लिए है अथवा नही है इत्यादि इस संदर्भ में मत स्थापित न हो,
जब पूर्णतः सम्यग् समाधान में पूर्णतः सम्यग् न्याय स्पष्ट होता है तब यही समाधान होता है कि ऐसा ही होना चाहिए, अहो कृतकृत्यता...बिल्कुल ऐसा ही होना चाहिए जरा भी अन्यथा में नही,
यही पूर्णतः न्याययुक्त है, अगर जरा सा भी ऐसा न होता तो अन्याय हो जाता, अनर्थ हो जाता....
(गीता-ब्रह्मसूत्र-पुराण आदि ऋत्<वेद विरुद्ध अध्यारोपित धर्मग्रंथों में जो अपुनरावृत्ति का मत है<वह अपौरुषेयतः ऋत् संगत नही है,
पुनरावृत्ति अथवा अपुनरावृत्ति कहना अपेक्षित दृष्टिकोण के अंतराल में ही सिद्ध है न कि तथ्यतः यथार्थ स्पष्टता में,
ध्यान रहे यहाँ ऋत्<वेद कहने का तात्पर्य प्रचलित वेदों से<ऋत् असंगत अध्यारोपित वैदिक मंत्रों से नही है,
ऋत्<वेद कहने का तात्पर्य अपौरुषेय ऋत्<ज्ञान के सम्यग् संकेतार्थ दिशा-बोध से है),
तथ्यतः न शून्य है, न एक है न दो है, न बहुत
यह तुम्हारे अपेक्षित तुलनात्मक दृष्टिकोण का परिचय है,
जब तक अपेक्षित तुलनात्मक दृष्टिकोण बना हुआ है तब तक तुम दिग्भ्रमित हो,
तथ्यतः दर्शनमात्र के निमित्त ही निभ्रान्त स्पष्टीकरण है,
तुम्हारी बुद्धि का सॉफ्टवेयर ही ऐसा बना हुआ है कि जहाँ तुम अपेक्षित होने के लिए, तुलना करने के लिए जबरन वशीभूत हो,
ध्यान रहे जब भी तुम एक की बात करते हो
तब यह अकेला 'एक' नही है इसके साथ ही साथ सापेक्षिक संतुलन में सापेक्षता के दूसरे अंत पर दूसरा 'एक' भी है,
सापेक्षिक संतुलन के निमित्त एक है तो साथ ही साथ दूसरा भी है,
अगर दूसरा नही तो एक भी नही,

अकेले एक का अस्तित्व सिद्ध नही होता,
(सापेक्षता में ही>सापेक्षिक-अंतराल में ही एक, दो, बहुत का अस्तित्व सिद्ध होता है,
निरपेक्षतः अंतरालरहित में न एक है, न दो है, न बहुत है),
_तो फिर क्या है<यह कहा नही जा सकता,
बस इतना ही संकेतार्थ कहा जा सकता है 'यह भी नही', 'यह भी नही'......
आत्मा अथवा ब्रह्म भी नही, शून्य भी नही,
क्योंकि तुमने कुछ भी कहा<वह मत बन जाएगा, मान्यता बन जाएगी, धारणा बन जाएगी, सीमा बन जाएगी, बंधन बन जाएगा, अवरोध बन जाएगा,
अपनी तरफ से कुछ भी कहने से सजग रहो, सावधान रहो,
जब अपनी तरफ से कुछ भी न कहने का संयम पूरा होगा, सावधानी पूरी होगी, होश पूरा होगा,
सजगता पूरी होगी, सहजता पूरी होगी, स्थिरता पूरी होगी, शान्ति पूरी होगी,
निर्दोषता पूरी होगी, निष्पापता पूरी होगी, निर्मलता पूरी होगी, शुद्धि पूरी होगी, पवित्रता पूरी होगी तब सहज ही जैसा है निभ्रान्त स्पष्ट होगा,
पर दुःख इस बात का है कि तुम कुछ न कुछ कह ही देते हो,
इसमें तुम्हारा वश भी नही,
मूर्छा में संस्कारवश कुछ न कुछ कहने की यह तुम्हारी विवशता है,
तुम्हारे भीतर अचेतन में एक ऐसा भय व्याप्त है<उस भय के दबाव में तुम आत्मा अथवा ब्रह्म आदि कुछ भी कहकर अपनी मान्यता के (अपने माने हुए) अपने होने को बचा रहे हो,
जिसे तुम अभी अपना स्वयं मान रहे हो अगर यह भ्रम ही है तो भ्रम को बचाना ही क्यों है,
भ्रम को बचना नही चाहिए,
बस सत्य को ही बचना चाहिए इसी में पूरी ईमानदारी है,
सत्य में अपने को छोड़ दो,
यह ध्यान रहे भ्रम ही भंग होता है सत्य नही,
पहले से ही अपने को सत्य भी नही मानना है, और असत्य अथवा मिथ्या भी नही मानना है,
अपने को पूरी तरह सत्य में छोड़ दो, अपनी तरफ से जरा भी अपने को बचाना नही है, यहाँ तुम्हारी चालाकी नही चलेगी,
क्योंकि अगर तुम यह मान रहे हो कि आत्मा अमर-अजर है,
तब तुम्हारा यह मानना<तुम्हारी यह मान्यता ही पूर्णतः समर्पण में बाधा बन जाएगी,
जब अपनी तरफ से आत्म-अनात्म, ब्रह्म-शून्य, द्वैत-अद्वैत आदि कोई भी मत स्थापित नही होगा,
तभी समर्पण पूर्ण होगा......
_जिसे भी तुम भ्रान्तिवश अपने को मान रहे हो यह निश्चित ही भंग होगा,
तुम्हारा बस निमित्तमात्र उपस्थित भर होना ही बचेगा,
ध्यान रहे निमित्तमात्र उपस्थित भर होना कोई अंधविश्वास अथवा कृत्रिम मत नही है
अपितु सहज सिद्ध है,
सहज सिद्ध का मत नही बनता,
जो सहज सिद्ध न होकर अपेक्षाकृत दबाव में आरोपित है<उसी का मत बनता है, निमित्तमात्र उपस्थित भर होना धर्म-साधना का व्यवहारतः प्रत्यक्ष आधार है,
कृत्रिमतः मत स्थापित न होने पाए,
उत्तरोत्तर साधनात्मक परिप्रेक्ष्य में उत्तरोत्तर सम्यग् संकेतार्थ दिशा-बोध स्पष्ट होता जाए.....
_तुम्हें सत्य पर निष्ठा होनी चाहिए, सत्य पर श्रद्धा होनी चाहिए, सत्य पर विश्वास होना चाहिए ^ तुम्हारा कल्याण ही होगा,
तुम्हारे साथ जरा भी अन्याय नही होगा,
तुम जैसा अपने लिए चाहते हो उससे अच्छा ही होगा,
जो तुम्हारी कल्पना से भी परे है उतना अच्छा होगा....

27 Jul 2024

एक वीर-योद्धा युद्ध-भूमि में पहुँचकर न ही शत्रु के समक्ष समर्पण करता है,
न ही युद्ध-भूमि से पीठ करके भागता है,

वह या तो वीरतापूर्वक विजयश्री को प्राप्त करता है या वीरतापूर्वक वीरगति को प्राप्त हो जाता है,
उसके लिए तीसरा विकल्प नही रहता,
उक्त उदाहरण से तुम्हें भी सकारात्मक अर्थ में प्रेरित हो भीतर सुषुप्त पड़े वीर-भाव को जगाना चाहिए,
ध्यान रहे बाहर के शत्रुओं से अधिक प्रबल तुम्हारे भीतर के शत्रु हैं,
राग, द्वेष, मोह, काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर, मूर्छा, आलस्य, प्रमाद आदि जो आंतरिक शत्रु हैं तुम्हें भी न तो उनके समक्ष कदापि समर्पण करना है, न ही उनसे पीठ करके भागना है,
ध्यान रहे यह कोई बाहर का युद्ध नही है,
आंतरिक-युद्ध है,
इस युद्ध के नियम बाहर के युद्ध की तरह नही हैं,
इस आंतरिक-युद्ध में आंतरिक शत्रुओं का यथा सहजतापूर्वक यथा सजग हो ज्ञानमात्र के निमित्त, दर्शनमात्र के निमित्त सामना करना है,
इतना होश, इतनी सजगता, इतनी सावधानी, इतना संयम पूरा हो जाए कि राग, द्वेष, मोह आदि का बस ज्ञानमात्र ही रह जाए, दर्शनमात्र ही रह जाए,
ऐसा अद्भुत संयम कि बस ज्ञानमात्र ही रह जाए अर्थात् केवल बस केवल ज्ञात होना भर ही रह जाए क्या ज्ञात हो रहा है, किसे ज्ञात हो रहा है यह नही,
बस दर्शनमात्र ही रह जाए अर्थात् केवल बस केवल दिखना भर ही रह जाए क्या देख रहा है<क्या दिख रहा है, कौन देख रहा है<किसे दिख रहा है यह नही......
_इतना संयम हो जाए कि ज्ञानमात्र से इतर ज्ञाता-ज्ञेय का सापेक्षिक<संबंधित अर्थ ग्रहण न होने पाए,
इतना संयम हो जाए कि दर्शनमात्र से इतर दृष्टा-दृश्य का सापेक्षिक<संबंधित अर्थ ग्रहण न होने पाए, यहाँ तक कि संस्कार-शेष भी न रह जाए,
ऐसा अद्भुत संयमी ही सबसे बड़ा विजेता है,
सबसे बड़ा पराक्रमी है,
सबसे बड़ा वीर है,
ऐसा अद्भुत संयमशील पराक्रमी उपाध्याय तक ही सीमित नही रहता, आचार्य तक ही सीमित नही रहता, सिद्ध तक ही सीमित नही रहता अपितु सीधे ही 'परम् भगवत्ता' को स्पष्ट होता है,
जब भी राग, द्वेष, मोह, काम, क्रोध, लोभ आदि का आवेग उभरता है तब यथा सहज हो श्वास को लेना आरंभ कर दो, और यथा सहज श्वास पर ही ध्यान रखना है, यथा सहज श्वास पर ध्यान रखने से उतना ही आवेग उभरता है जितना तुम सहन तथा वहन कर सकते हो,
अभी अपरिपक्व-अवस्था में आवेगों का सीधा सामना करने पर तुम उन आवेगों के तीव्र प्रवाह में बह सकते हो,
इसीलिए अभी यह आवश्यक है कि आवेगों का यथा सहज श्वास के माध्यम से ज्ञानमात्र के निमित्त सजगतापूर्वक सामना करना है, जब ज्ञानमात्र के निमित्त आवेगों का बस ज्ञानमात्र रह जाता है (बस सिर्फ मालूम भर होना ही रह जाता है क्या मालूम हो रहा है,
किसे मालूम हो रहा है यह नही) तभी राग, द्वेष, मोह, काम, क्रोध आदि आवेगों के आपेक्षिक बंधन से मुक्ति हो जाती है,
जल-कमलवत् सिद्धावस्था स्पष्ट हो जाती है,
_ज्ञानमात्र के निमित्त होने पर आवेगों की असहजता नही रह जाती है,
क्योंकि ज्ञानमात्र के निमित्त होने पर जो सहजता होती है उसका प्रभाव आवेगों की असहजता के प्रभाव से अधिक होता है,
और ध्यान रहे ज्ञानमात्र के निमित्त होने पर ही आवेगों की यथा सत्यता स्पष्ट होती है,
यथा सत्यता स्पष्ट होते ही आवेगों का
पूर्ववत् अर्थ नही रह जाता है,
पूर्ववत् दृष्टिकोण नही रह जाता है,
पूर्ववत् आभास नही रह जाता है<यही मुक्ति है,
ध्यान रहे जब तक पूर्ववत् अर्थ बना हुआ है,
पूर्ववत् दृष्टिकोण बना हुआ है,
पूर्ववत् आभास बना हुआ है तब तक मुक्ति नही,
साधना के नाम पर षट्चक्र, कुंडलिनी इत्यादि न जाने क्या-क्या जटिल जाल तुमने बनाए हैं,
और जीवन भर उसी में उलझे रहते हो,
तुम बहुत जटिल हो चुके हो,

सीधी सी बात तुम्हें समझ में नही आ पा रही है, तुम थोड़ा सरल हो जाओ, सरलता से यह बात समझ लो कि तुम्हारी जहाँ भी उपस्थिति होती है तुम्हें वहाँ का ज्ञान सहज ही होता है, वहाँ का दर्शन सहज ही होता है,
तुम्हें अलग से कुछ करना नही पड़ता है,
यह इस बात का संकेत है कि तुम्हारी भूमिका बस निमित्तमात्र उपस्थिति भर की है,
ध्यान रहे उपस्थित होना क्या है, और उपस्थितिमात्र क्या है यह स्पष्ट होना आवश्यक है,
अभी तुम्हें तुम्हारी निमित्तमात्र उपस्थित भर होने की भूमिका स्पष्ट नही है,
अभी (अभी की व्यावहारिक-स्थिति में) तुम स्थूल स्थान-समय के अंतराल में ही उपस्थित होने के लिए विवश हो,
पर इसमें तुम्हें चिंतित होने की आवश्यकता नही है,
अभी तुम्हें स्थूल से सूक्ष्मता की ओर उत्तरोत्तर सूक्ष्मतर होते स्थान-समय के अंतराल में उपस्थित होने का निमित्त पूरा करना है,
निमित्त पूरा होते ही तुम्हें तुम्हारी निमित्तमात्र उपस्थित भर होने की भूमिका स्पष्ट हो जाएगी,
ध्यान रहे उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका का स्पष्ट होना ही सम्यग् सिद्ध-अवस्था है न कि साधक-अवस्था,
इसलिए अभी तुम्हें साधक-अवस्था के नैमित्तिक मापदंड पूरे करने आवश्यक हैं,
साधक-अवस्था के नैमित्तिक मापदंड पूरे होते ही सम्यग् सिद्ध-अवस्था स्पष्ट हो जाएगी,
_जब तुम्हारे उपस्थित होने में नासिकाग्र की सीध के आधार से उत्तरोत्तर सीधे से सीधे की सीध की स्थिरता का निमित्त पूरा हो जाएगा,
तब तुम्हें तुम्हारी निमित्तमात्र उपस्थित भर होने की भूमिका स्पष्ट हो जाएगी,
पहले श्वास की सीध में, फिर चित्त की सीध में, फिर धर्म (स्वभाव) की सीध में स्थिरता का निमित्त पूरा करना आवश्यक है...

29 Jul 2024 (i)

द्वैत-अद्वैत आदि जिस मत का जो आचार्य हैं<वह बस उसी मत के अनुयायियों का आचार्य हैं अन्य सबका आचार्य नही,
इसलिए द्वैत-अद्वैत आदि किसी भी अपेक्षित मत का आचार्य अगर जगद्गुरु कहलाता है तो वह उसका झूठ है,
तो वह झूठा है,
झूठ बोलकर वह बहुत बड़ा पाप कर रहा है,
यद्यपि झूठ को सच कह देने से झूठ कभी सच नही हो जाता,
झूठ 'झूठ' ही रहता है,
इसमें झूठ बोलने वाले की ही हानि है,
(असत्य को सत्य सिद्ध करने से असत्य 'सत्य' नही हो जाता अपितु असत्य ही रहता है,
इसमें असत्य बोलने वाले की ही हानि है),
साधु के वेश में झूठ को सच कहकर बोलने वाला किसी एक चोर से, किसी एक हत्यारे से अधिक जघन्य अपराधी है,
क्योंकि एक चोर की, एक हत्यारे की पहचान साफ-साफ प्रकट है,
पर छद्मवेश वाले की पहचान छुपी हुई रहती है,
वैसे भी अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत, त्रैत आदि सभी मत अपेक्षाकृत दबाव में अवलंबित होने से मिथ्या आरोप ही सिद्ध हैं तथ्यतः सत्य सिद्ध नही हैं,
जगत को अपने गढ़े हुए झूठ से दिग्भ्रमित करने वाले द्वैत-अद्वैत आदि इन झूठे आरोपित मतों के झूठे अहंकारी आचार्यों को<पीठासीनों को तुम्हें कदापि जगद्गुरु नही बोलना चाहिए, कदापि परम् पूजनीय नही बोलना चाहिए,
अगर कोई इन्हें जगत जिसका गुरु है<इस अर्थ में इन्हें जगद्गुरु स्वीकार करता है तो तब कोई आपत्ति नही,
अगर कोई इन्हें जगद्गुरु इनके निजी संप्रदाय रूपी जगत के, इनके निजी अनुयायी रूपी जगत के कथित गुरु के अर्थ में सामान्य शिष्टाचारवश बस औपचारिक पूर्ति भर के लिए कहता है न कि सम्पूर्ण जगत के गुरु के अर्थ में<तब फिर आपत्ति तो नही है पर फिर भी तुम्हें किसी भी अर्थ में झूठ का भागीदार नही होना है,
आप्त-पुरुष को ही सही अर्थ में गुरु कहना चाहिए,
आप्त-प्रमाणित नही होने कारण इन्हें किसी भी परिप्रेक्ष्य में जगद्गुरु बोलना झूठ बोलना ही है,
इसलिए झूठ बोलकर<झूठ बोलने के महापाप का भागीदार न बनो,
तुम्हारे द्वारा झूठे अहंकारी असुरों को जगद्गुरु बोलने से जगत का तथा जो सही अर्थ में जगद्गुरु है<उसकी अवमानना होगी,

ध्यान रहे झूठ बोलना नैतिक आधार पर सबसे बड़ा पाप है<झूठ सिद्ध होने पर भी झूठ का समर्थन करने वाला अवश्य ही अधोगति को प्राप्त होता है,
झूठ बोलने वाला दूसरों को दिग्भ्रमित करता है, दूसरों को धोखा देता है, दूसरों के साथ विश्वासघात करता है,
अपेक्षाकृत मतों की स्थापना करने वाले आँख होते हुए भी अंधे हैं,
जैसे ६ अंधे किसी चौराहे पर खड़े रहते हैं एक हाथी वहाँ खड़ा होता है,
वे अंधे हाथी के जिस अंग को छूते हैं उसी अंग के आधार पर अपने अनुमान का हाथी मान लेते हैं,
पर इससे हाथी जैसा है उसकी सत्यता सिद्ध नही होती, यह अंधों का दुर्भाग्य है कि अंधे अपने अंधेपन में अपने अंधे जगत में ही भटकते रह जाते हैं,
यह अंधापन अंधकार में ठोकरें खाते रहने से बहुत ही दुःखद दुर्भाग्यपूर्ण है,
आँख खुलने पर ही मार्ग है, समाधान है,
_ध्यान रहे झूठ को सच कहकर झूठ को कितना ही प्रतिष्ठित-प्रचलित कर दो तब भी झूठ कभी सच नही हो जाएगा,
झूठ की कितनी भी प्रतिष्ठा क्यों न हो जाए झूठ तो 'झूठ' ही है,
यह दुःख की बात है कि आज के हिन्दू-समाज में जितना झूठ को सच कहकर परोसा जाता है उतना किसी समाज में नही,
कोई भी सिरफिरा आकर कुछ भी घोषित कर दे उसको भी मानने वाले अंधभक्त खड़े हो ही जाते हैं,
चारों पीठ व उनके आचार्य, यहाँ तक कि द्वैत-अद्वैत आदि मत बुद्ध, जीसस, मुहम्मद के बाद ही स्थापित हुए,
इन्हें सनातन कहकर तुम झूठ मत बोलो,
जब द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैताद्वैत, त्रैत आदि मत स्थापित नही थे तब इनसे पहले कौन सा धर्म था,
वैष्णव, शैव, शाक्त आदि संप्रदाय बुद्ध के बाद स्थापित हुए,
इन संप्रदायों से पहले तब कौन सा धर्म था,
इन संप्रदायों को भी सनातन धर्म कहकर झूठ मत बोलो,
जब ६ शास्त्र, गीता, उपनिषद, अथर्ववेद,
पुराण, रामायण आदि अध्यारोपित धर्मग्रंथ नही रचे गये थे,
यहाँ तक कि जब छंदबद्ध अध्यारोपित मंत्रों से अलंकृत ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद भी स्थापित नही हुए थे तब उस समय कौन सा धर्म था,
तब लोक में अपौरुषेय, सनातन सार्वभौमिक ऋत्<नियम के सम्यग् संकेतार्थ दिशा-बोध को स्पष्ट मात्र सद्धर्म ही था,
पूर्व कल्प के अनुसार ही इस कल्प के आरंभ में एक ही सद्धर्म था, ऋत्<नियम के सम्यग् तात्पर्य को स्पष्ट एक ही वेद था,
एक ही अनुशासन था,
कालांतर में वेद के नाम पर छंदबद्ध ऋचाओं के अपेक्षित<अध्यारोप में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद की रचना की गयी,
इक्ष्वाकु के समय से ही ऋत् असंगत अध्यारोपित मंत्रों को वेद में सम्मिलित किया जाने लगा,
(प्रचलित वेद का बहुत ही अल्प भाग शुद्ध है, ऋत् संगत है, अधिकांश तो प्रक्षिप्ततः आरोपित होने से अशुद्ध है, ऋत् असंगत है, उदाहरण के लिए ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्....जैसे ऋत् असंगत मंत्र को वैदिक-मंत्र के नाम पर सम्मिलित किया गया),
पर कल्प के आरंभ में शुद्धि थी, पवित्रता थी, निर्दोषता थी, निष्पापता थी,
जाति के आधार पर कोई ऊँच-नीच का विभाजन नही था,
संप्रदाय, पंथ के नाम पर कोई विभाजन नही था,
तब कोई भी दार्शनिक सिद्धांत नही था,
तब विष्णु, शिव, दुर्गा, काली आदि का कोई मिथक भी नही था,
बिना किसी दिग्भ्रम के तथ्यतः सीधा ही सत्य का मार्ग प्रशस्त था.....
पर आज जो धर्म के नाम पर विकृति है, इससे पहले इस कल्प में कभी नही थी,
जो धर्म अंधभक्ति, अंधश्रद्धा, अंधविश्वास पर अवलंबित हैं निश्चित ही उनका आगे भविष्य नही,
झूठ की नींव पर खड़ा कथित धर्म अधिक समय तक स्थिर नही रह सकता,
सहजसिद्ध सम्यग् आप्त-पुरुष ही सही अर्थ में लोकगुरु है, सही अर्थ में जगद्गुरु है,
सही अर्थ में लोकनाथ है, सही अर्थ में जगन्नाथ है, सही अर्थ में जगदीश्वर है, सम्यग् आप्त-पुरुष तो सभी संप्रदायों से, सभी पीठों से, सभी पीठासीनों से बहुत ही ऊपर है, बहुत ही उच्च है<सर्वोच्च है<सर्वोच्चतम् है,
_सम्यग् आप्त-पुरुष का सम्यग् आप्त-वचन प्रामाणिक है,
लोक में संतुलनपूर्ण अनुशासन को स्थापित करने वाला है,
सम्यग् आप्त-पुरुष जिस धर्म की देशना करते हैं

वह धर्म कोई अपेक्षाकृत मत नही,
वह धर्म कोई संप्रदाय अथवा पंथ नही,
वह धर्म अपौरुषेय है, अकृत्रिम् है, ऋत् है, सनातन है.....

29 Jul 2024 (ii)

किसी ने ठीक ही कहा है कि किसी को तीर लगा हो और तुम उससे पूछ रहे हो कि तीर किसने मारा, कब मारा, उसका नाम क्या है,
वह किस गोत्र का है, वह किस वंश का है, क्या है, वह किस ग्राम का है, वह कहाँ गया,
इतनी लंबी पूछताछ के बीच कहीं वह मर ही गया तो.....?
सबसे पहली प्राथमिकता है उसका जीवन बचाना......
_आत्मा-परमात्मा, जीव-ब्रह्म इत्यादि दार्शनिक बुद्धिविलास में ही समय व्यर्थ हो बीत जाता है,
जीवन की मूलभूत समस्या रह जाती है,
जीवन की मूलभूत समस्या का सम्यग् समाधान होना रह जाता है,
जीवन की मूलभूत समस्या व्यवहारतः तुम्हारा मूर्छा में होना है, तुम्हारा अज्ञान में होना है,
तुम्हारा दुःख में होना है, तुम्हारा क्लेश में होना है,
दार्शनिक वाद-विवाद में जीवन की मौलिक समस्या का समाधान नही है,
व्यवहारतः साधना में उतरना आवश्यक है,
जो कुछ भी है<उसका कोई न कोई कारण अवश्य है<कि जिसके होने पर ऐसा होता है....
जिसके होने पर ऐसा होता है<कारण की खोज होने पर जिसके नही होने पर ऐसा नही होता है<समाधान का मार्ग स्पष्ट हो जाता है,
जिस कारण के होने पर ऐसा होने के लिए दबाव बनता है<उस दबाव की असहजता की अपेक्षा उससे अधिक सहजता के निमित्त जब निमित्त की सहजता की स्थिति होती है तब कारण का असहज दबाव नही रह जाता है,
इसलिए सबसे पहले श्वास के प्रति यथा सहज रहते हुए उत्तरोत्तर यथा सहजता बढ़ानी आवश्यक है<तभी समाधान है.....
किसके होने पर क्लेश होता है, दुःख होता है<इस अर्थ में खोज संभव है,
क्लेश का अंततः आधारीय कारण अज्ञान है,
यहाँ अज्ञान का तात्पर्य पूर्णतः अज्ञान से नही है,
अज्ञानता में न पूर्णतः स्पष्ट ज्ञान है, न पूर्णतः स्पष्ट अज्ञान है,
ज्ञान का पूर्णतः अस्पष्ट होना कभी भी संभव नही है,
ऋत्<नियम के अनुसार व्यवहारतः कितना भी ज्ञान स्पष्ट हो जाए उससे और स्पष्ट होना शेष रह ही जाता है,
व्यवहारतः ज्ञाता-ज्ञेय की अपेक्षा ही ज्ञानमात्र कहना सिद्ध होता है,
व्यवहारतः जिस ज्ञाता-ज्ञेय की अपेक्षा जो ज्ञानमात्र कहा जा रहा है, उस ज्ञानमात्र में भी उस पहले के स्थूल स्तर के ज्ञाता-ज्ञेय की अपेक्षा सूक्ष्म स्तर के ज्ञाता-ज्ञेय का अंतराल अवश्य ही है,
इस तरह उत्तरोत्तर सूक्ष्म से सूक्ष्म स्तर के ज्ञाता-ज्ञेय का अंतराल सिद्ध होता है,
इसलिए कितना ही सूक्ष्म स्तर का ज्ञानमात्र स्पष्ट हो जाए उससे और सूक्ष्म स्तर का ज्ञानमात्र शेष रह ही जाता है,
यद्यपि ऋत्<नियम के अनुसार पूर्ण अंतरालरहित<ज्ञानमात्र की पूर्णता जो
अपेक्षाकृत ज्ञानमात्र का पूर्ण आधार है,
पूर्णतः पूर्ण आधार होने पर भी
ऋत्<नियम के अनुसार पूर्ण अंतरालरहित<ज्ञानमात्र की पूर्णता निमित्त के लिए व्यवहारतः कभी भी संभव नही है,
अपेक्षाकृत ज्ञानमात्र ही व्यवहारतः संभव है,
व्यवहारतः न कभी पूर्णतः ज्ञान स्पष्ट हो सकता है, न कभी पूर्णतः ज्ञान अस्पष्ट हो सकता है,
इसलिए व्यवहारतः हर बार अपने से पूर्व के अनुसार जन्म< >मृत्यु का, बंधन<>मोक्ष का अंतहीन चक्र चलता ही रहता है,
ध्यान रहे साधक को हर बार ही पहले के ज्ञानमात्र की अपेक्षा और आगे से आगे के ज्ञानमात्र का अर्थात् और सीधे से सीधे के ज्ञानमात्र का लक्ष्य रखते हुए अंततः अंतरालरहित<ज्ञानमात्र की पूर्णता का ही पूर्ण लक्ष्य रखना है,
यह पूरी तरह से सत्य पर छोड़ देना चाहिए कि व्यवहारतः अपेक्षाकृत ज्ञानमात्र तक की ही संभावना है या पूर्ण अंतरालरहित<ज्ञानमात्र की पूर्णता की भी संभावना है<इस संदर्भ में पहले से ही मत सुनिश्चित नही हो,

इस संदर्भ में पूर्णतः सम्यग् न्यायपूर्ण समाधान अवश्य ही स्पष्ट होगा<यह सम्यग् आप्त-पुरुष का वचन है, प्रतिज्ञा है<इसमें जरा भी संशय नही है,
इसमें जरा भी संदेह नही है, इसमें जरा भी भ्रान्ति नही है....
जब भी पूर्णतः सम्यग् न्यायपूर्ण समाधान स्पष्ट होगा,
तब शत-प्रतिशत यही सहमति होगी कि बिल्कुल ऐसा ही होना चाहिए, बिल्कुल ऐसा होने में ही न्याय है.........
निरंतर हर बार ज्ञाता-ज्ञेय की अपेक्षा ज्ञानमात्र में आते जाना है,
पहले श्वास के ज्ञानमात्र में रहना है,
फिर इससे सीधे चित्त के ज्ञानमात्र में रहना है,
फिर इससे भी सीधे गुणधर्म के ज्ञानमात्र में रहना है,
जब तक कि विशुद्धतः ज्ञानमात्र न रह जाए
तब तक उत्तरोत्तर कम से कम अंतराल के ज्ञानमात्र में रहते जाना है......

31 Jul 2024 (i)

संसार की सभी सीढ़ियों से पार हो संसार के अंतिम>=सत्य के द्वार पर पहुँचकर वह एक बार संसार की ओर मुड़ के देखता है,
_संसार के लोगों को दुःख में, पीड़ा में व्यथित हो<शोकाकुल हो बिलखते-कराहते हुए देख उसके परिशुद्घ चित्त में दुःख से, पीड़ा से व्यथित शोकाकुल सांसारिक लोगों के प्रति महा-करुणा उत्पन्न होती है.....

31 Jul 2024 (ii)

तू अपने जीवन के, तू अपने श्वास के वास्तविक परम् प्रभु<परमेश्वर को सीधे सामने उपस्थित हुआ स्वीकार कर,
(तू जिधर भी रुख करता है वहीं तेरा रब है),
परम् अव्यक्त, पूर्ण सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वसामर्थ्यवान को सीधे सामने स्वीकार करते हुए पूरी दीनता से घुटने टेक, पूरी बेशर्मी से जमीन में नाक रगड़ते हुए दंडवत हो,
बिना कोई अध्यारोप किए<(बिना कोई शिर्क किए) पवित्रता-पूर्वक पूरे विनीत-भाव से, पूरे प्रेम से, पूरी श्रद्धा से, पूरी निष्ठा से पूरी तरह समर्पित हो......
यह एक तरह की भावना योग्य भावनीय भावना का उदाहरण है,
जन्मों-जन्मों तक भावना योग्य सभी भावनीय भावनाओं का निमित्त पूरा होने पर ही अंततः अकृत्रिम् अक्रिय सहज-सिद्ध ज्ञानमात्र में सहज-स्थिति होती है,
लोक में जितने भी मत हैं<वे सभी अपने-अपने अर्थ की भावनीय भावनाएँ हैं,
जैसे किसी वृक्ष की कितनी ही शाखाएँ, उप-शाखाएँ क्यों न हों पर उसका आधारीय तना एक ही होता है,
कोई किसी भी शाखा, उप-शाखा में क्यों न हो भूमि में उतरने के लिए उसे अंततः एक ही आधारीय तने से उतरना होता है,
लोक में कितने ही मत क्यों न हों,
सभी मतों के मतावलंबियों को अंततः उद्धार के लिए, मोक्ष के लिए अकृत्रिम् ज्ञानमात्र के निमित्त ही होना है,
धन्यभागी है जो स्वभाव से ही परितृप्त है,
जिसे तृप्ति के लिए किसी भी भोग-पदार्थ की आवश्यकता नही है,
सर्वथा राग, द्वेष, मोह भंग होने से अब भावित होने के लिए भावना का आधार ही नही रह गया......
ध्यान रहे दृष्टा अर्थात् देखने वाला जिसे भी देखता है<वह दृश्य ही होता है,
यद्यपि दृष्टा का आधार दर्शनमात्र में निमित्तमात्र बस उपस्थिति भर की सहज-सिद्ध भूमिका है,
पर अपने-आप में दृष्टा का स्वतंत्र अस्तित्व नही है,
दर्शनमात्र के अस्पष्ट आधार पर ही दृष्टा का दृश्य अपेक्षित अस्तित्व निर्भर है,
जो भी दृष्टा में है, दृश्य में है, दर्शन में है<वह कदापि यथार्थ सत्य नही,
(कोई भी दृष्टा, कोई भी दृश्य, कोई भी दर्शन यथार्थतः सत्य नही),
जिसका भी स्थान-समय के अंतराल में दर्शन होता है<भले ही वह संसार वालों की मान्यता में ईश्वर ही क्यों न हो पर वह यथार्थतः सत्य नही,

अपेक्षाकृत दृष्टिकोण के अंतराल में स्थापित हुए कृत्रिमतः मिथ्या ईश्वर से, कृत्रिमतः अपेक्षित मिथ्या ईश्वरत्व के दावे से सावधान रहो,
यद्यपि दर्शनमात्र केन्द्र है>दृष्टा-दृश्य का माध्यमिक आधार है,
दर्शनमात्र में उपस्थिति भर की अपनी निमित्तमात्र भूमिका स्पष्ट न होने से निमित्त को अर्थात् निमित्त के दृष्टा-भाव के अपेक्षित<निमित्त होने पर दृष्टा को यह भ्रान्ति होती है कि वह देखने वाला है<उसके देखने पर ही उसके दर्शन का यह संसार निर्भर है<इस भ्रान्ति में दृष्टा स्वयं को केन्द्र समझने लगता है<इस दार्शनिक भ्रान्ति से अहं केन्द्रित दृष्टिकोण स्थापित होता है<इस मिथ्या अहं केन्द्रित दृष्टिकोण के कारण ही अज्ञानवश दुःख व शोक की आबद्धता रहती है,
इस मिथ्या अहं केन्द्रित दृष्टिकोण के लिए बल प्रदान करने वाले अध्यारोपित धर्मग्रंथों से सावधान रहना आवश्यक है,
दर्शनमात्र>(ज्ञानमात्र) के निमित्त ही यह सारा सापेक्षिक दिग्भ्रम भंग होगा,
तुम्हारी कितनी ही सूक्ष्मता में दृष्टि खुल जाए अपेक्षाकृत दृष्टिकोण तब भी बना हुआ रहता है,
दृष्टा का<दृष्टि की विशुद्धि का निमित्त जब पूरा होता है,
जब दृष्टा अपनी दृष्टि सहित अपनी पूरी विशुद्धता में अपने आधार दर्शनमात्र के निमित्त समर्पित हो जाता है,
दर्शनमात्र>(ज्ञानमात्र) के निमित्त समर्पण में निमित्तमात्र जब निमित्त का अपनी तरफ से दृष्टिकोण नही बचता तब सहज ही मात्र सत्य से मात्र सत्य स्पष्ट है.....
_अपेक्षाकृत दृष्टिकोण से अनिमित्त दर्शनमात्र>(ज्ञानमात्र) के निमित्त सहज ही निभ्रान्त स्पष्टता है,
ज्ञाता-ज्ञेय के, दृष्टा-दृश्य के माध्यमिक संतुलन में स्थित होने पर ही ज्ञाता-ज्ञेय का, दृष्टा-दृश्य का अतिक्रमण है उससे पहले तो आबद्धता ही है.....
****

02 Aug 2024 (i)

एक पौराणिक संकेतप्रद कहानी है,
कहा जाता है बहुत समय पहले मनुष्यों ने स्वार्थवश धरती का इतना अधिक दोहन कर दिया था कि धरती गाय का रूप धारण कर रोती-बिलखती हुयी उस समय के तत्कालीन राजा पृथु की शरण में गयी,
धरती की ऐसी दयनीय स्थिति देख पृथु को रोना आया,
पृथु का यह कारुणिक क्रंदन प्रजा के कानों तक पहुँचा,
प्रजा को भी अपनी गलती का एहसास हुआ,
पृथु के नेतृत्व में धरती का अनावश्यक दोहन रुक गया,
कई प्राकृतिक विधियों से धरती में फिर से शुद्ध, संतुलित पर्यावरण स्थापित हुआ,
कहा जाता है इस तरह शुद्ध, संतुलित पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में धरती को नया जन्म देने से पृथु के नाम पर धरती का नाम पृथ्वी पड़ा,
पृथु के निमित्त पृथ्वी में पर्यावरणीय शुद्धि तथा संतुलन स्थापित होने से पुराणकारों ने सूर्यवंशी>इक्ष्वाकुवंशी पृथु को विष्णु के चौबीस अवतार में स्वीकार किया,
यह पौराणिक कहानी आज के परिप्रेक्ष्य में बहुत ही अधिक संकेतप्रद है,
आज पृथ्वी का पर्यावरणीय संतुलन भंग हो रहा है,
वातावरण की शुद्धि भंग हो रही है,
वायु-प्रदूषण, ध्वनि-प्रदूषण बढ़ता ही जा रहा है,
अवैध-खनन बढ़ता ही जा रहा है,
पृथ्वी का अनावश्यक दोहन बढ़ता ही जा रहा है,
हिन्दू-संस्कृति में पृथ्वी की उपमा गाय से की गयी है,
गाय को इतना भी मत दुहो कि थनों से खून निकलने लगे,
कहीं ऐसा न हो कि गाय लात मार दे और सारा दुहा हुआ दूध गिरा दे,
यह आगे आने वाले भयावह संकट का संकेत है,
आज के स्वार्थी मनुष्यों ने पृथ्वी का इतना अधिक दोहन कर दिया है,
पारिस्थितिकी तंत्र इतना असंतुलित कर दिया है,
वातावरण इतना प्रदूषित कर दिया है,
पर्यावरणीय संतुलन इतना भंग कर दिया है कि आज पृथ्वी का कोई भी स्थान सुरक्षित नही है,
पूरी पृथ्वी में कहीं भी कभी भी भयावह त्रासदी हो सकती है,

विकास के नाम पर अगर ऐसा ही चलता रहा तो वह समय दूर नही जब अम्लीय वर्षा होनी आरंभ हो जाएगी,
कहीं पृथ्वी ग्रह में शुक्र ग्रह जैसी नारकीय परिस्थिति न हो जाए,
जिस तरह से मनुष्य के गुणसूत्रों की,
डी. एन. ए. की कृत्रिमतः छेड़छाड़ की जा रही है,
जिस तरह तंत्रिका तंत्र तथा मस्तिष्क के तंत्रिका कोशिकाओं में कृत्रिमतः छेड़छाड़ हो रही है,
जिस तरह से ग्रीन हाउस गैसों का आवश्यकता से अधिक अनुपात बढ़ रहा हे,
जिस तरह से वैश्विक-उष्णता global warming की समस्या बढ़ रही है,
जिस तरह से आवश्यकता से अधिक कार्बन की मात्रा बढ़ रही है,
और ऑक्सीजन और ओजोन का अनुपात घट रहा है,
अगर अभी मनुष्य नही संभला तो आगे निश्चित ही यह पृथ्वी ग्रह नरक का स्थान होने ही वाला है.......

अभी कावड़ियों ने इतनी गंदगी मचा रखी है कि स्थानीय लोगों को घर से बाहर निकलना दूभर हो गया है,
रात-दिन तेज आवाज में डीजे चलते रहते हैं, ध्वनि-प्रदूषण अपनी पराकाष्ठा में है,
सड़कों पर डीजे में फिल्मी धुन पर शंकर-पार्वती का अभिनय करने वाले गांजा-भांग के नशे में उन्मत्त हो अश्लीलतापूर्वक नाचते रहते हैं,
हुक्का घूमता रहता है पता नही यह कैसा धर्म है,
आज ध्वनि-प्रदूषण की समस्या बहुत बढ़ गयी है, वन में खुले में ध्यान-साधना करने वाले साधुजन ध्वनि-प्रदूषण से बहुत ही अधिक त्रस्त हैं,
बंद कमरों में बैठकर कृत्रिम साधनों के आश्रित ध्यान-साधना, तपस्या नही होती,
खुले एकांत वन-प्रदेश में वृक्षों की छाया में ही ध्यान-साधना, तपस्या संपन्न होती है,
काश लाउडस्पीकर का आविष्कार ही नही होता तो बहुत ही अच्छा था,
कम से कम शान्तिपूर्वक चैन से धर्म<ध्यान तो होता,
लाउडस्पीकर की तेज कर्कश आवाज से उनके कान झन्ना जाते हैं,
उनके ध्यान-अभ्यास में बहुत अधिक व्यवधान आ रहा है,
ध्वनि-प्रदूषण से त्रस्त हो पुलिस थानों में शिकायत करने जाते हैं तो उनकी बात नही सुनी जाती,
शराब व मांस का प्रचलन बहुत ही अधिक बढ़ गया है,
पर्यटक आते ही हैं मौज-मस्ती करने,
वे पहाड़ में आकर मुर्गा तथा शराब की मांग करते हैं,
आज पहाड़ के होटलों में मुर्गा तथा बियर, शराब ही नही देह-व्यापार भी होने लग गया है,
पहाड़ में धर्म के नाम पर है ही क्या,
धर्म के नाम पर बकरे, मुर्गे, भैंसे काटे जाते हैं, भूत-प्रेतों को खून चढ़ाया जाता है,
जो भी शरीर में आकर नाच रहा है, कुछ चढ़ाने की मांग कर रहा है<वह या तो भटकता हुआ प्रेत है या फिर यह तुम्हारा मानसिक रोग है,
कोई भी भटकता हुआ प्रेत किसी के भी नाम से आ सकता है,
उसे देवता आदि गरिमा-युक्त शब्द से संबोधित मत करना,
हो सकता है जिसका बाप मर गया उसी के मरे हुए बाप के नाम से आ जाए,
इसलिए जब तक सूक्ष्म दृष्टि न खुल जाए
तुम्हारे साथ धोखा हो सकता है इसलिए जरा संभलके......
विशेषकर पहाड़ों में जहाँ पहले सादगी थी, लज्जाशीलता थी, वहीं आज युवा वर्ग में जितनी तेजी से फ़ैशन बढ़ रहा है, सादगी, लज्जाशीलता भंग होती जा रही है,
आज के समय अधिकांश लोगों को सच क्या है इसका ज्ञान नही,
झूठ को सच कहकर पूजा हो रही है,
पर झूठ तो झूठ ही रहेगा,
झूठ को पूजने से झूठ कभी सच नही हो जाएगा,
अगर ऐसे ही पृथ्वी का वातावरण प्रदूषित होता जाएगा,
ऐसी ही विकृति बढ़ती रही तो निश्चित ही इस पृथ्वी ग्रह से मनुष्य-जाति का भयावह अंत होगा.......
क्रमशः

02 Aug 2024 (ii)

_जैसा है<ठीक वैसा ही निभ्रान्त स्पष्ट हो इसी निमित्त से यथा सहजतापूर्वक सजग रहो....
_जो जैसा है<वैसा ही भलीभाँति ठीक-ठीक जानने में स्पष्ट हो, भलीभाँति ठीक-ठीक दिखने में स्पष्ट हो<इस निमित्त से यथा सहज हो सजग रहो....
_जानने के प्रति, देखने के प्रति सजग होने से, होश में होने से और सजगता बढ़ती है, और होश बढ़ता है,
जानने के प्रति, देखने के प्रति इस भाँति से होश में रहो कि बस पूरे होश में बस जानना ही रह जाए, पूरे होश में बस देखना ही रह जाए,
यद्यपि आरंभिक संयम-साधना के परिप्रेक्ष्य में यह उपयुक्त है,
पर ध्यान रहे बस जानना रह जाने में भी,
बस देखना रह जाने में भी पूरी शुद्धि नही है,
क्योंकि जानने में ज्ञाता-भाव का दबाव रह ही जाता है, देखने में द्दष्टा-भाव का दबाव रह ही जाता है,
अपनी तरफ से जानने में, देखने में अपनी तरफ से संस्कारगत् आरोप का दबाव रहता ही है,
इसलिए आरंभिक संयम-साधना का निमित्त पूरा होने के पश्चात इससे सीधे अगर पूरी शुद्धि चाहिए तो सीधे ही बस ज्ञात भर होने के प्रति, बस दिखने भर के प्रति पूर्णतः यथा सजग रहो,
ताकि किसे ज्ञात हो रहा है, क्या ज्ञात हो रहा है<यह नही रह जाए बस ज्ञात होना भर ही रह जाए, किसे दिख रहा है, क्या दिख रहा है<यह नही रह जाए बस दिखना भर ही रह जाए.....
जब बस ज्ञात होना भर ही रह जाता है, बस दिखना भर ही रह जाता है तब शुद्धि पूरी है,
उससे पहले नही,
_न द्दष्टा, न द्दश्य, न दर्शन = दर्शनमात्र की पूर्णता.....
न ज्ञाता, न ज्ञेय, न ज्ञान = ज्ञानमात्र की पूर्णता.....
न आना, न जाना, न ठहरना = ठहरने की पूर्णता..... यही सद्धर्म का अनुशासन है|
_श्वास के प्रति इस भाँति सहज रहो, सजग रहो कि श्वास का बस ज्ञानमात्र रह जाए,
बस दर्शनमात्र रह जाए,
संवेदनाओं के प्रति इस भाँति सहज रहो, सजग रहो कि संवेदनाओं का बस ज्ञानमात्र रह जाए, बस दर्शनमात्र रह जाए,
चित्तवृत्तियों के प्रति इस भाँति सहज रहो, सजग रहो कि चित्तवृत्तियों का बस ज्ञानमात्र रह जाए, बस दर्शनमात्र रह जाए,
गुणों के प्रति इस भाँति सहज रहो, सजग रहो कि गुणों का बस ज्ञानमात्र रह जाए,
बस दर्शनमात्र रह जाए,
अंततः (जब) बस निरालंब ज्ञानमात्र ही रह जाता है<(तब) सम्पूर्ण भ्रम, संशय, अज्ञान, दुःख भंग हो जाता है...

04 Aug 2024

कपड़े को ही देख लो,
कपड़ा तन्तुओं से मिलकर बना हुआ है,
तन्तु अणुओं से मिलकर बने हुए हैं,
अणु परमाणुओं से मिलकर बने हुए हैं,
परमाणु भी प्रोटाॅन, न्यूट्राॅन, इलेक्ट्रॉन से मिलकर बने हुए हैं,
ये भी क्वार्क तथा लेपटाॅन आदि से मिलकर बने हुए हैं,
और ये भी अपने से सूक्ष्म अवयवों से मिलकर बने हुए हैं,
इस तरह उत्तरोत्तर सूक्ष्मतर होता क्रम सिद्ध होता है,
ध्यान रहे सूक्ष्म से स्थूलता की ओर उत्तरोत्तर स्थूलतर होते क्रम में ही "मिलकर बने
हुए होने" का भ्रम होता है,
पर स्थूल से सूक्ष्मता की ओर उत्तरोत्तर सूक्ष्मतर होते क्रम में "मिलकर बनने" की भ्रान्ति नही होती,
उदाहरण के लिए परमाणु अपने स्थान पर है परमाणु अणु नही होता है,
अणु अपने स्थान पर है अणु पदार्थ नही होता है,
जो जिस स्थान पर है<वह उसी स्थान पर बिना किसी से मिले सत्य है,
इसी सत्यता में उत्तरोत्तर सूक्ष्म से सूक्ष्म होते क्रम में अंततः बिल्कुल भी किसी से मिले बिना विशुद्धतम् यथार्थ सत्य ही स्पष्ट है........
ध्यान रहे सापेक्षता के जिस आयाम में तुम व्यवहारतः जी रहे हो<उस आयाम में सापेक्षिक नियम ही चलते हैं,
सापेक्षता के आयाम में जिस सापेक्षता के नियम से जो कुछ भी सिद्ध होता है उसी सापेक्षता के नियम से वह असिद्ध भी होता है,

उदाहरण के लिए जिस सापेक्षिक नियम से अगर कोई ईश्वर को सिद्ध करता है<उसी सापेक्षिक नियम से उसका विरोधी पक्ष उसे असिद्ध भी कर देता है,
आत्म-अनात्म, ईश्वर-अनीश्वर, द्वैत-अद्वैत आदि सम्पूर्ण परस्पर विरोधी मत जिस सापेक्षिक नियम से सिद्ध होते हैं<उसी सापेक्षिक नियम से असिद्ध भी होते हैं,
सापेक्षता के आयाम में सहज सिद्धता नही है बल्कि सापेक्ष सिद्धता ही है,
लोकदृष्टि में प्रतिष्ठित-प्रचलित गीता-उपनिषद-वेदांत इत्यादि शब्द प्रमाण सापेक्षिक नियम के ही अंतर्गत हैं,
इसलिए उपरोक्त शब्द प्रमाण से तुम जिस आत्मा को, जिस ब्रह्म को सिद्ध करते हो<वह सापेक्षिक नियम के अंतर्गत होने से सापेक्षिक सिद्धता में ही है,
जो भी सापेक्षिक सिद्धता में है<वह सापेक्षिक दबाव पर अवलंबित होने से सहज सिद्ध नही है,
(सापेक्षता के आयाम में होने से प्रचलित ब्राह्मण परंपरा जिसे सिद्ध करती है<उसे ही प्रचलित श्रमण परंपरा असिद्ध कर देती है, उसे मिथ्यादृष्टि सिद्ध कर देती है,
सम्यग् सद्धर्म लोकदृष्टि में प्रचलित श्रमण और ब्राह्मण दोनों ही परस्पर-विरोधी सापेक्षिक धर्मों से परे,श्रेष्ठ,शुद्ध तथा पवित्र है,
अपौरुषेयतः ऋत् सनातन सद्धर्म ही प्रचलित श्रमण, ब्राह्मण आदि सापेक्षिक धर्मों का अपौरुषेयतः ऋत् सनातन आधार है),
सापेक्षता के आयाम में सापेक्षिक नियम से तुम कदापि सहज सिद्धता को सिद्ध नही कर सकते,
सापेक्षता में 'है' और 'नही' दोनों सिद्ध भी होते हैं, और असिद्ध भी होते हैं,
क्योंकि 'है' और 'नही' दोनों सापेक्षिक दबाव में एक दूसरे के सापेक्षता में ही सिद्ध होते हैं,
इसलिए सापेक्षता के जिस नियम से तुम 'है' में सिद्ध करते हो, सापेक्षता के उसी नियम से तुम 'नही है' में भी सिद्ध कर सकते हो,
(जो कुछ भी अस्ति में सिद्ध है वह सब नास्ति में भी सिद्ध है),
ईश्वर-अनीश्वर, आत्मा-अनात्मा, ब्रह्म-शून्यता इत्यादि जो कुछ भी 'अस्ति' में सिद्ध है<वह सब का सब 'नास्ति' में भी सिद्ध है,
न दृष्टा, न दृश्य, न संबंधित दर्शन=दर्शनमात्र में सापेक्षता सिद्ध नही होती,
न ज्ञाता, न ज्ञेय, न संबंधित ज्ञान=ज्ञानमात्र में सापेक्षता सिद्ध नही होती,
सापेक्षिक अंतराल सिद्ध नही होता, सापेक्षिक दबाव सिद्ध नही होता, सापेक्षिक नियम सिद्ध नही होते.....
सापेक्षिक दबाव के वशीभूत होने से सामान्य जनों की सीधे ही अक्रियतः स्थिर ज्ञानमात्र में स्थिति नही हो पाती,
निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होने की सहज स्थिति में ही जल-कमलवत् सिद्ध-अवस्था है,
तुम्हारा धर्म निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होना है<इससे इतर नही,
तुम अपने धर्म में अविचल-स्थिर रहो,
गुणों का धर्म तुम्हारा धर्म नही,
गुणधर्म के दबाव में तुम कर्ता बन जाते हो,
सारी समस्या तुम्हारे कर्ता होने पर ही है,
तुम्हारे कर्ता होने पर कर्ता-भाव के दबाव में जो भी कर्म होगा उसका फल तो तुम्हें भोगना ही पड़ेगा,
कर्ता-भाव उत्पन्न होने पर कर्ता-भाव के प्रतिक्रियात्मक दबाव में फल भोगने के निमित्त भोक्ता-भाव का उत्पन्न होना स्वाभाविक है.......
ध्यान रहे कर्ता होना तुम्हारा सहज-स्वभाव नही है,
गुणधर्म के अपेक्षित दबाव में आकर ही तुमने गुणधर्म को अपना धर्म मान लिया है, और भ्रान्ति में मान्यतावश तुम कर्ता बने हुए हो,
इसलिए तुम्हारा भ्रम तोड़ने के लिए,
तुम्हारी मान्यता तोड़ने के लिए तुम्हें बार-बार याद दिलाना पड़ता है कि गुणों का धर्म तुम्हारा धर्म नही है,
तुम करने वाले नही हो<तुम कर्ता नही हो
तुम बस निमित्तमात्र हो,
किसमें निमित्तमात्र हो?
उत्तर- बस उपस्थित भर होने में निमित्तमात्र हो.....
किसके निमित्त उपस्थित भर होने में निमित्तमात्र हो?
उत्तर- बस ज्ञानमात्र के निमित्त उपस्थित भर होने में निमित्तमात्र हो.....
_तुम्हें अलग से कुछ भी नही करना है,
तुम्हें अलग से कुछ भी आरंभ नही करना है,

तुम सदा से ही बस उपस्थित भर होने में निमित्तमात्र हो,
ज्ञानमात्र में बस उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका याद कर उसमें स्थिर रहना है>स्थिरता का निमित्त पूरा करना है,
सर्वप्रथम "श्वास के ज्ञानमात्र" में निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होने का निमित्त पूरा करना है,
फिर अंततः "गुणधर्म के ज्ञानमात्र" में निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होने का निमित्त पूरा करना है,
जब तक "गुणधर्म के ज्ञानमात्र" में उपस्थित भर होने का निमित्त पूरा नही हो जाता,
तब तक गुणधर्म के दबाव से मुक्ति नही,
कर्ता-भाव के दबाव से मुक्ति नही,
भोक्ता-भाव के दबाव से मुक्ति नही,
कर्म-फल के बंधन से मुक्ति नही........
निमित्त पूरा होते ही न आना, न जाना, न ठहरना=सहज ही ठहरने की पूर्णता..

06 Aug 2024

कर्ता कौन है?
अपेक्षित दृष्टिकोण के अंतराल में ही तुम्हारा यह अपेक्षित प्रश्न उत्पन्न हुआ है,
पहले तुम्हें सांख्य-दर्शन के दृष्टिकोण को भी समझना चाहिए तभी फिर इससे आगे इससे सीधी बात हो सकती है,
_पुरुष अपनी यथास्थिति में स्वभावतः अक्रिय है, स्थिर है, चेतन है,
और प्रकृति भी अपनी यथास्थिति में निष्क्रिय है पर जड़ है,
इसलिए पुरुष भी कर्ता नही है,
प्रकृति भी कर्ता नही है,
अब प्रश्न उठता है तो फिर कर्ता कौन है,
पुरुष 'निमित्त' है,
पुरुष का धर्म 'निमित्त होना' है,
पुरुष या तो अपेक्षाकृत निमित्त होता है,
या सीधे ही निमित्त होता है,
सीधे ही निमित्त होने का तात्पर्य ज्ञानमात्र के निमित्त होने से है<निमित्तमात्र होने से है,
ज्ञानमात्र के निमित्त<यथास्थिति से सीध भंग होने पर<(साम्यता भंग होने पर) ही निमित्त गुणों के अपेक्षाकृत दबाव में आकर अपेक्षाकृत निमित्त होता है,
गुणों के सापेक्ष<अपेक्षाकृत दबाव में इदं अहम्, इदं मम्, इदं मम् आत्मा<अयमात्मा के अपेक्षित दृष्टिकोण में उसका अपना अपेक्षाकृत परिचय स्थापित होता है,
अतः अपेक्षाकृत दबाव में ही अहम् का जन्म हुआ है,
यद्यपि 'निमित्त' में वास्तव में अहम् का आरोप नही हुआ है,
अपेक्षित दृष्टिकोण के अंतराल में ही कर्ता-भाव में अहम् का आरोप हुआ है,
जैसे सूक्ष्म परमाणु के स्तर पर स्थूल पदार्थ का होना भ्रान्ति है,
पर स्थूल पदार्थ के स्तर पर स्थूल पदार्थ का होना भ्रान्ति नही है अपितु व्यवहारतः सत्य है,
इसी तरह आभासी तल पर अहम् के स्थान पर ही 'अहम्' का होना व्यवहारतः सत्य है,
_यद्यपि अपेक्षाकृत दबाव पर अवलंबित होने से इस 'अहम्' की अपनी कोई स्वतंत्र सत्ता नही है, कोई वास्तविक सत्ता नही है,
पर अहम् का 'अहम्' के स्थान पर अहम् के व्यावहारिक परिप्रेक्ष्य में पर्याप्त प्रभाव है,
लोकदृष्टि में प्रतिष्ठित गीता-उपनिषद-वेदांत आदि दार्शनिक अध्यारोप से लेकर मूर्ख से मूर्ख मनुष्य के स्तर तक इस 'अहम्' का दबाव है<प्रभाव है,
अध्यारोपित धर्मग्रंथ इस मिथ्या अहम् में सोने का वर्क चढ़ाकर और आकर्षक और लुभावना बनाते हैं,
यह मिथ्या अहम् ही नाना तरह के मिथ्यात्व (मिथ्या ईश्वर आदि) की घोषणा करता है,
यही कर्म का आरंभ करता है,
कर्म को संपन्न करता है,
और यही कर्म के परिणाम को भोगता है,
यही दुःख और शोक में आबद्ध रहता है,
यह अहम् बड़ा ही उपद्रवी है,

यही अन्य अर्थ में अन्य अर्थ का आरोप कर अर्थ का अनर्थ करता है,
जब तक यह अहम् बना हुआ है तब तक कदापि तथ्यतः यथार्थ स्पष्ट नही हो सकता,
जब तक अहम् है तब तक कदापि सरलता, सहजता नही हो सकती,
जब तक अहम् है तब तक कदापि शान्ति, स्थिरता नही हो सकती,
जब तक अहम् है तब तक कदापि भ्रम,संशय,अज्ञान,दुःख से मुक्ति नही हो सकती,
_अक्रिय ज्ञानमात्र के निमित्त जब इस 'अहम्' का शान्तिपूर्वक निर्वाण होता है,
तब फिर कोई व्यवधान नही.......
_अपेक्षित दृष्टिकोण के अंतराल में ही अहम् की स्थापना होती है,
अहम् की स्थापना के लिए ज्ञानमात्र में अपेक्षित दृष्टिकोण का अंतराल ही नही है,
अपेक्षित दृष्टिकोण का अंतराल नही होने से ज्ञानमात्र में कोई भी अहम् स्थापित नही होता,
आत्मा अथवा ब्रह्म का 'अहम्' भी नही,
(तुम आत्मा कहो, ब्रह्म कहो<यह सब तुम्हारी दार्शनिक मान्यता है न कि तथ्यतः यथार्थ),
_किसी भी अहम् की बात करो,
अशुद्ध अहम् की बात करो, चाहे आत्मा अथवा ब्रह्म संबंधित शुद्ध अहम् की बात करो<यह तो बस कहने की बात है,
कोई भी अहम् कहो<अहम् का आधारीय दृष्टिकोण तो वही रहता है,
हाँ यह एक अलग बात है उसमें बस अर्थान्तर भेद हो जाता है,
जैसे कोई कान को सीधे न पकड़कर घुमाकर पकड़ता है,
पकड़ता तो कान को ही है,
कोई भी अहम् कहो उसके पीछे अपेक्षाकृत दबाव ही है,
इसलिए कोई भी अहम् शुद्ध नही होता,
वास्तव में तुम्हारा अपना कोई अहम् है ही नही,
तुम बस उपस्थित भर होने में निमित्त भर हो,
निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होने में अहम् रहता ही नही,
कर्तामूलक अहंकार रहता ही नही,
(निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होने में कुछ करने के लिए बचता ही नही,
और कुछ करने में ही कर्तामूलक अहंकार स्थापित होता है),
उपस्थित भर होने में निमित्त भर होना तुम्हारा सहज स्वभाव है,
उपस्थित भर होने में निमित्त भर होना ही तुम्हारा धर्म है,
गुणधर्म के अपेक्षित दबाव में आकर गुणधर्म की तादात्म्यता में स्वसम्मोहनवश तुम अपने को कर्ता मान बैठे हो<यह सबसे बड़ी भूल है,
गुणधर्म से जब तक तादात्म्यता भंग नही होगी तब तक तुम्हारा गुणधर्म से सम्मोहन भंग नही होगा,
गुणधर्म से सम्मोहन भंग होते ही तुम्हें तुम्हारा सहज स्वभाव स्पष्ट हो जाएगा, तादात्म्यता भंग हो इसके लिए तुम्हें होश बढ़ाना होगा,
होश बढ़ाने के लिए सबसे पहले श्वास के ज्ञान का अवलंबन ग्रहण करना पड़ेगा,
फिर चित्त के ज्ञान का,
फिर अंत में गुणधर्म के ज्ञान का अवलंबन ग्रहण करना पड़ेगा,
जब गुणधर्म का बस ज्ञानमात्र रह जाएगा,
तभी समूल सम्मोहन भंग होगा.....
इसलिए सहज-स्थिर<अक्रिय ज्ञानमात्र के निमित्तमात्र हो जाओ,
तभी ठीक-ठीक समाधान है,
ज्ञानमात्र में कोई क्रिया नही, कोई कर्म नही,
ज्ञानमात्र में तुम्हारा बस निमित्त भर होना है,
इसलिए तब फिर किस बात का अहंकार....
अगर तुम समझते हो कि तुम्हारे करने से कुछ हो रहा है तो तुम बहुत बड़े भ्रम में हो,
क्योंकि अगर तुम मूर्छा से सजग हो होश में आ जाओ तो तुम्हें यह स्पष्ट हो जाएगा कि
असल में तुम कुछ भी नही करते बस निमित्तमात्र<उपस्थित भर ही होते हो....
जब तुम आरंभिक प्राकृतिक ध्यान में होते हो तब तुम्हें यह भलीभाँति स्पष्ट रहता है कि न तुम श्वास की क्रिया को ला रहे हो, न तुम श्वास के ज्ञान को ला रहे हो, न तुम श्वास के दर्शन को ला रहे हो,
तुम श्वास के सामने बस उपस्थित भर होते हो,

श्वास के सामने तुम्हारे बस उपस्थित भर होने से सहज ही श्वास का ज्ञान होता है, सहज ही श्वास का दर्शन होता है,
जो सहज ही ज्ञान हो रहा है,
जो सहज ही दर्शन हो रहा है बस इसमें (इस सीध में) स्थिरता का निमित्त पूरा करना है,
नासिकाग्र की सीध के आधार से सीधे हो उत्तरोत्तर सीधे से सीधे सीध में स्थिरता का निमित्त पूरा होते ही सहज ही सीधे से सीधे जो ज्ञान हो रहा है<दर्शन हो रहा है पूर्णतः स्पष्ट हो बस परिस्पष्टतः ज्ञानमात्र ही रह जाता है<परिस्पष्टतः दर्शनमात्र ही रह जाता है,
परिस्पष्टतः ज्ञानमात्र में, परिस्पष्टतः दर्शनमात्र में सहज ही निमित्तमात्र उपस्थित भर होना परिस्पष्ट है......
<यही पूर्णतः पूर्ण जल-कमलवत् सिद्धावस्था है....
(ध्यान रहे ज्ञानमात्र का तात्पर्य यहाँ बस ज्ञात भर होने से है किसे ज्ञात हो रहा है, क्या ज्ञात हो रहा है इससे नही,
दर्शनमात्र का तात्पर्य यहाँ बस दिखना भर होने से है किसे दिख रहा है, क्या दिख रहा है इससे नही),
सहज-स्थिर<अक्रिय ज्ञानमात्र में तुम कर्ता नही हो,
अर्थात् सहज-स्थिर<अक्रिय ज्ञानमात्र में तुम कुछ भी नही करते,
सहज-स्थिर<अक्रिय ज्ञानमात्र में तुम्हारी भूमिका बस केवल उपस्थिति भर की है,
ज्ञानमात्र में बस उपस्थित भर होने की निमित्तमात्र भूमिका में कोई भी भ्रम, कोई भी संशय, कोई भी अज्ञान, कोई भी दुःख नही है.....

08 Aug 2024

आसन की यथा सहज पूरी स्थिरता हो,
दृष्टि की यथा सहज पूरी स्थिरता हो,
इस तरह भली-भाँति
सहजतापूर्वक-सजगतापूर्वक
स्थिर बैठना है कि न आसन ही हिले, न दृष्टि ही हिले,
स्थिरता पूरी होने पर ही मन पर नियंत्रण रहता है,
दृष्टि अर्थात् ध्यान-दृष्टि जिस ओर रहती है मन भी स्वाभाविक उसी ओर रहता है,
इसलिए दृष्टि की स्थिरता पर ही मन की स्थिरता निर्भर है,
जब दृष्टि पूर्णतः स्थिर हो जाती है तब अलग से मन नही रह जाता है,
इसलिए अलग से मन को साधने का यत्न न करते हुए दृष्टि की स्थिरता को साधना है,
दृष्टि को नाक के आगे ४५ अंश के कोण में भली-भाँति स्थिरतापूर्वक संयत कर रखना है,
दृष्टि की ऐसी संयमित दशा में सहज ही मन उन्मनी अवस्था में रहता है,
दृष्टि संबंधित दबाव पर नियंत्रण होने पर सहज ही श्वास संबंधित दबाव पर नियंत्रण हो जाता है, सहज ही मन संबंधित दबाव पर नियंत्रण हो जाता है,
इसलिए दृष्टि की स्थिरता तथा संयम साधना बहुत ही अनिवार्य है,
दृष्टि-संयम के लिए पवित्रतापूर्वक ब्रह्मचर्य-पालन बहुत ही आवश्यक है,
और ब्रह्मचर्य-पालन के लिए स्थिरतापूर्वक दृष्टि-संयम साधना बहुत ही आवश्यक है,
दृष्टि-संयम तथा ब्रह्मचर्य दोनों ही साथ-साथ एक-दूसरे के परिपूरक बल का आधार हैं,
परस्पर एक-दूसरे के परिपूरक बल का आधार होने से ही दृष्टि-संयम तथा ब्रह्मचर्य दोनों की साथ-साथ पूर्णता है,
इसलिए दृष्टि-संयम साधना तथा ब्रह्मचर्य-पालन दोनों का साथ-साथ होना बहुत ही आवश्यक है,
सर्वप्रथम बिना चूके हर बार श्वास के आने-जाने के ठीक समय पर यथा सहज हो, यथा सजग हो स्थिरतापूर्वक उपस्थित होना है......
क्रमशः

10 Aug 2024 (i)

एक ऐसा नियम जिसका सब पर राज है,
जिसके वशीभूत देवता,मनुष्य सहित सभी हैं,
एक ऐसा नियम जिसका सभी लोकों पर शासन है<अनुशासन है,

जिसका कभी उल्लंघन नही है,
जिसका कभी अतिक्रमण नही है,
एक ऐसा नियम जिसे जानने के बाद कुछ भी जानना शेष नही रह जाता,
वह नियम है 'ऋत्<नियम'....
अपौरुषेय सनातन ऋत्<नियम....
जब तक ऋत्<नियम स्पष्ट नही है,
तभी तक भ्रम, संशय, अज्ञान, दुःख का प्रभाव है,
वेद के शुद्ध भाग में अपौरुषेय ऋत्<नियम का संकेत स्पष्ट है,
(ध्यान रहे आज के समय जो वेद के नाम पर उपलब्ध है<उसमें अधिकतर मिलावट है,
शुद्ध भाग बहुत ही कम है<जो अपौरुषेयतः ऋत्<संगत है,
जब तक तुम्हें अपौरुषेयतः ऋत् अभिप्रेरित
सम्यग् विवेक स्पष्ट नही है,
तब तक वेद का कौन सा भाग ऋत् संगत है,
और कौन सा भाग ऋत् संगत नही है<यह स्पष्ट नही हो सकता),
जैसे स्थूल भौतिकी classical physics के नियम सूक्ष्म भौतिकी quantum physics के आयाम में सिद्ध नही है,
इस तरह ऋत्<नियम किसी एक आयाम तक सीमित नही है,
अपौरुषेय ऋत्<नियम सार्वभौमिक नियम है<जो सभी आयामों में व्यवहारतः सत्य सिद्ध है,
सभी आयामों के नियमों का सनातन आधार 'ऋत्' होने से ही जो नियम जिस आयाम में है<वह नियम उस आयाम में व्यवहारतः सत्य सिद्ध है,
पर किसी आयाम का नियम अन्य किसी आयाम में व्यवहारतः सत्य सिद्ध नही है,
यथार्थतः सत्य अनुसार होने से जो न्यायपूर्ण सत्य नियम है वही ऋत्<नियम है,
यथार्थतः सत्य आधार होने से<यथार्थतः सत्य अनुसार होने से जो जिस स्थान-समय में है<वह उस स्थान-समय में सत्य है पर अन्य स्थान-समय में नही,
सामान्यतया जो नियम मनुष्यों ने बनाए हैं<उनका उल्लंघन हो ही जाता है,
पर जो नियम मनुष्यों द्वारा बनाए हुए नही हैं बल्कि अपौरुषेय हैं उनका कदापि उल्लंघन नही हो सकता,
ध्यान रहे लोकदृष्टि में प्रचलित गीता-पुराण-वेदान्त आदि कोई भी अध्यारोपित धर्मग्रंथ अपेक्षित दृष्टिकोण में होने से अपौरुषेय नही है,
यहाँ तक कि लोकदृष्टि में वेद के नाम पर प्रचलित छंदबद्ध ऋचाओं से अध्यारोपित ऋग्वेदादि जो चार वेद हैं<वह भी अपौरुषेय नही......
ऋत्<वेद ही मात्र अपौरुषेय है इससे इतर मनुष्य की बुद्धि का हस्तक्षेप है,
आत्म-अनात्म, द्वैत-अद्वैत आदि कृत्रिम् मतों से बुद्धि का सापेक्षिक परिचय ही प्राप्त होता है न कि निभ्रान्त समाधान....
सापेक्षिक दबाव में स्थापित हुए द्वैत-अद्वैत आदि (कृत्रिमतः मिथ्या) मतों से,
गोवर्धन आदि सभी पीठों से, व्यास-गद्दी आदि सभी गद्दियों से सम्यग् सद्धर्म के सामान्य से सामान्य उपासकों का स्थान भी उच्च है, श्रेष्ठ है, पवित्र है,
यह अपौरुषेय अकृत्रिम् सम्यग् सनातन सद्धर्म की न्यायसंगत गरिमा है न कि अहंकार....
सम्यग् सद्धर्म का उपासक द्वैत-अद्वैत आदि सभी सापेक्षिक<कृत्रिम् मतों के अनुशासन से, मर्यादा से ऊपर है.....
यहाँ अपौरुषेय कहने का तात्पर्य लोक-प्रचलित अपौरुषेय के अपेक्षित दृष्टिकोण से नही है....
यहाँ ऋत् कहने का तात्पर्य लोक-प्रचलित ऋत के अपेक्षित दृष्टिकोण से नही है....

10 Aug 2024 (ii)

कर्म-फल का सिद्धांत शत-प्रतिशत न्यायपूर्ण है, तुम्हारे साथ जो कुछ भी अच्छा-बुरा हो रहा है<वह तुम्हारे ही कर्मों का फल है,
हर फल के लिए तुम ही उत्तरदायी हो,
इसलिए अगर अच्छा फल चाहिए,
अगर अनुकूल परिणाम चाहिए तो कदापि कभी भी पाप-कर्म मत करना,
क्योंकि अगर तुमने जरा भी पाप किया तो उसका दुःखद फल भोगने से तुम्हें फिर कोई भी रोक नही सकता,
उदाहरण के लिए इस जन्म में कोई जन्मजात विकलांग है तो उसकी इस गति के लिए भी वही उत्तरदायी है,
पिछले पूर्व के किसी जन्म में कोई कर्म किया,
उसका अगर फल भोगना रह गया तो किसी न किसी जन्म में उसका फल अवश्य ही भोगना पड़ेगा,
कर्म करने में तुम्हारा अधिकार है फल में नही<ऐसा कहना भी एक अधूरा दृष्टिकोण ही है,
तुम्हारा न तो कर्म करने में पूर्णतः स्वतंत्र अधिकार है,
और न ही फल में पूर्णतः स्वतंत्र अधिकार है,
तुम्हारा कर्म में भी निमित्त अधिकार है,
और फल में भी निमित्त अधिकार है,
क्योंकि कर्म में तुम संस्कारवश नैमित्तिक अर्थ में ही स्वतंत्र होते हो पूर्णतः स्वतंत्र नही होते,
जो कुछ भी तुम कर्म<करते हो वह सब पूर्वकृत संस्कार के दबाव में ही तुम कर्म<करते हो बिना किसी दबाव के अलग से नया कर्म हो ही नही सकता,
किए गए कर्म का फल पूर्णतः सुनिश्चित है,
पर कब मिलेगा यह तुम्हारी इच्छा पर निर्भर नही है,
किसी कर्म के होने पर उसके दबाव में फल भोगने के निमित्त जितना स्थान-समय का अंतराल स्थापित होता है,
जब तक उतना स्थान-समय का अंतराल स्थापित नही होता है<तब तक उस किए गए कर्म का फल प्राप्त नही होता है,
इसलिए किसी ने जिस जन्म में कर्म किया उस जन्म में उस कर्म के भोगने के निमित्त दबाव पूरा नही होने से फल का भोगना रह जाता है,
जब भोगने के निमित्त दबाव पूरा होता है<तभी फल का भोगना हो पाता है,
जब फल भोगने के निमित्त देश-काल-परिस्थिति का निमित्त पूरा होता है, जब लेन-देन में न्याय का निमित्त पूरा होता है तभी फल की प्राप्ति होती है चाहे इसके लिए उसके कितने ही जन्म क्यों न लग जाएं,
इसलिए किसी अपराधी को उसके अपराध का फल भोगने के लिए जब तक निमित्तों का योग पूरा नही होता तब तक फल भोगना रह जाता है,
किसी और जन्म में उस अपराध का फल भोगने के लिए जब सभी निमित्तों का योग पूरा होता है तब उस जन्म में उसका फल भोगना हो जाता है भले ही उस जन्म में वह कितना ही सज्जन क्यों न बन जाए,
कर्म-फल व्यवस्था पूर्णतः न्यायपूर्ण होने से ही किसी और जन्म के पुण्य-कर्म का फल इस जन्म के पापी को भी प्राप्त हो जाता है,
कर्म-फल व्यवस्था का ऋत् संगत न्याय स्पष्ट न होने से ही सामान्य जनों को यह भ्रान्ति हो जाती है कि ईमानदार दुखी है, पीड़ित है, और बेईमान फल-फूल रहा है....
_कोई भी कर्म तुम करते हो तो पूर्वकृत संस्कार के दबाव में होने से वह अपने से पूर्व कर्म से बिल्कुल नया कर्म भी नही होता,
और बिल्कुल वही का वही कर्म भी नही होता,
इस तरह कर्मसिद्धांत सापेक्षिक संतुलन के निमित्त ही सिद्ध है,
इस तरह सापेक्षिक संतुलन के निमित्त कर्मसिद्धांत के अनुसार एक पापी भी कभी न कभी सुधर कर साधु भी हो सकता है,
इस तरह कर्मसिद्धांत के अनुसार मनुष्य ही नही कीट-पतंग, पशु-पक्षी आदि भी क्रमशः मोक्ष के ही मार्ग में हैं,
सापेक्षिक संतुलन में उत्तरोत्तर विकास का निमित्त पूरा होने पर अंततः सभी का मोक्ष है,
हर बार अपने पूर्व के अनुसार होने से मोक्ष भी सापेक्षिक संतुलन में ही सिद्ध होता है, सापेक्षिक संतुलन से बाहर कुछ भी सिद्ध नही है,
पूर्व के अनुसार होने का तात्पर्य बिल्कुल पूर्व की तरह होना भी नही है,
पूर्व के अनुसार होने का तात्पर्य अपने से पूर्व की तरह बिल्कुल ठीक वही का वही होना भी नही है, और बिल्कुल अलग से होना भी नही है,
यही सापेक्षिक संतुलन को सिद्ध करता है,

जैसे सामान्य दृष्टि से एक सेकेंड के बीतने पर जो अगला सेकेंड उत्पन्न होता है सामान्यतः उसका स्थान उतना ही है जितना कि पहले के सेकेंड का था,
पर यह पूर्णतः सत्य नही है,
एक सेकेंड और दूसरे सेकेंड के स्थान में इतना कम अंतर होता है कि सामान्य बुद्धि के तल पर, सामान्य दृष्टि के तल पर यह अंतर स्पष्ट नही हो पाता,
सामान्य बुद्धि के तल पर, सामान्य दृष्टि के तल पर कोई भी अंतर नही लगता,
सापेक्षिक संतुलन में एक अंत से दूसरे अंत में गति होती ही रहती है,
जिसका न पहली बार 'आरंभ' है, न ही अंतिम बार 'अंत' है,
इसी सापेक्षिक संतुलन में एक सेकेंड से दूसरे सेकेंड में गति सिद्ध होती है,
एक कल्प से दूसरे कल्प में गति सिद्ध होती रहती है,
इसलिए पहली बार किसी कल्प का आरंभ नही होता है,
हर बार ही पहले कल्प की तरह ही अगले कल्प का आरंभ होता है,
इसलिए पहली बार सृष्टि<रचना की बात ऋत् असंगत है,
इसलिए इस अर्थ में वेद का यह मंत्र....यथा पूर्वम् अकल्पयत्....सामान्यतः उपयुक्त है,
पर पूर्व कल्प की तरह ही हूबहू बिल्कुल ठीक वैसा का वैसा होना सापेक्षिक अंतराल के नियम के विरुद्ध है,
इसलिए ध्यान रहे सामान्य दृष्टि के तल पर कदापि निभ्रान्त पूर्ण सत्यता स्पष्ट नही हो सकती,
दृष्टा तथा दृष्टि से अनिमित्त दर्शनमात्र में ही निभ्रान्त पूर्ण सत्यता स्पष्ट है......
कर्ता-भाव से अनिमित्त दर्शनमात्र के निमित्त ही कर्म-फल के बंधन से मुक्ति है....

12 Aug 2024

_समय तुम्हारी प्रतीक्षा नही करता,
समय तुम्हारे लिए नही रुकता,
समय बहुत निर्दयी व क्रूर है,
समय को तुम्हारी परवाह नही,
समय बिना तुम्हारी प्रतीक्षा किए आगे बढ़ता ही जा रहा है,
(समय बिना रुके अपनी निर्बाध गति से आगे बीतता ही जा रहा है),
तुम्हें ही समय को महत्व देना होगा,
तुम्हें ही समय की परवाह करनी होगी,
तुम्हें ही समय की>(ठीक समय की) प्रतीक्षा करनी होगी,
सावधान! समय चूकने पर वही समय तुम्हारे लिए फिर से दोबारा नही लौटेगा,
इसलिए तुम्हें ही बिना चूके ठीक समय पर उपस्थित होकर समय का सार्थक सदुपयोग करना होगा,
समय का सबसे सार्थक सदुपयोग सम्यग् ध्यान-अभ्यास में समय को बिताने से है.....
_ध्यान रहे समय बिना रुके निर्बाध गति से बीतता ही जा रहा है,
जीवन-आयु बीतती हीआ जा रही है,
समय के चिरंतन बीतते प्रवाह में तुम कब बूढ़े हो गए तुम्हें इसका पता भी नही चल पाएगा...
इसलिए यहाँ-वहाँ की व्यर्थता में अपने अमूल्य समय को नष्ट मत करो,
यहाँ-वहाँ की व्यर्थता में मत उलझे रहो,
वैसे भी जीवन-आयु बहुत ही अल्प है,

जीते जी अगर अपेक्षित दृष्टिकोण भंग नही हुआ तो निश्चित ही महाहानि है,
जीवन रहते अगर भ्रम,संशय,अज्ञान,दुःख शेष रह गया तो यह जीवन व्यर्थ ही गया....
_आरंभिक साधक को श्वास के प्रति यथा सहज रहते हुए यथा सहज हुई श्वास की प्रकृति के अनुसार चलना चाहिए,
आरंभिक साधक को श्वास के आने-जाने के समय पर उपस्थित होना बहुत ही आवश्यक है,
प्रतिदिन कम से कम दो बार<कम से कम एक-एक घंटे तक श्वास के साथ उपस्थित रहना आवश्यक है,
श्वास के ठीक समय पर उपस्थित रहना आवश्यक है,
चौबीस घंटे में कम से कम दो बार वह भी कम से कम एक-एक घंटे तक बिना हिले-डुले लगातार हर श्वास-प्रश्वास के ठीक समय पर उपस्थित होने के आंतरिक श्रम का निमित्त पूरा करो,
आरंभिक साधक के लिए होश को, जागृति को, आरोग्यता को, तरोताजगी को, स्फूर्ति को, बल को, सक्षमता को बढ़ाने का श्वास से दूसरा कोई सहज प्राकृतिक माध्यम नही है,
सामान्यतः तुम्हारा ध्यान सापेक्षिक हो बँटता ही रहता है,
किसी एक सीध में दीर्घ समय तक तुम्हारा ध्यान स्थिर नही रह पाता,
ध्यान रहे जब तक किसी एक सीध में लगातार लंबे समय तक तुम्हारा ध्यान स्थिर नही होगा,
तब तक उस सीध की निभ्रान्त स्पष्टता नही हो सकती,
श्वास का चलना (श्वास का आना-जाना) एक ही सीध में लगातार हो रहा है,
वह भी ठीक सीधे सामने दृष्टि की सहज स्वाभाविक सीध में, तुम्हें दाएं-बाएं होना भी नही है,
इसलिए अगर सीधे सामने एक ही सीध में दीर्घ समय तक ध्यान स्थिर रखना है तो आरंभिक साधक के लिए इससे उपयुक्त सहज स्वाभाविक सीधा दूसरा अवलंबन नही है,
श्वास के हर आने-जाने के मध्य का अंतराल तुम्हारी क्षमता के अनुसार तुम्हारे संभलने के लिए तुम्हारे लिए एक प्राकृतिक वरदान है,
ताकि हर मध्य के अंतराल में संभलकर श्वास के हर आने-जाने के ठीक समय पर उपस्थित हो सको,
बिना चूके हर श्वास के आते-जाते समय पर उपस्थित होते जाना है,
बिना चूके बस लगातार श्वास का
आना-जाना ज्ञात होता रहे,
किसे ज्ञात हो रहा है, क्या ज्ञात हो रहा है इस तरफ ध्यान नही बँटाना है बस केवल ज्ञात भर होने में ही पूरा का पूरा अखंड ध्यान रहे,
इस तरह से संयमपूर्वक ध्यान रहे कि ध्यान में श्वास का बस केवल ज्ञात होना भर ही रह जाए किसे ज्ञात हो रहा है, क्या ज्ञात हो रहा है यह नही रह जाए,
बिना चूके निरंतर<लगातार ज्ञात होते रहने से बस ज्ञात होना ही उत्तरोत्तर स्पष्ट होता जाता है,
इस तरह अंततः जब बस ज्ञात होना भलीभाँति पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है,
तब पूर्णतः पूर्ण निभ्रान्त यथा सत्यता स्पष्ट हो जाती है.......
जब विशुद्धतः परिस्पष्टतः ज्ञात होना भर ही रह जाता है तब सहज ही चेतनता पूर्ण होती है, होश पूर्ण होता है, जागृति पूर्ण होती है, तरोताजगी पूर्ण होती है, आरोग्यता पूर्ण होती है, स्फूर्ति पूर्ण होती है, बल पूर्ण होता है, सक्षमता पूर्ण होती है.......
विशुद्धतः ज्ञात भर होने की पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता में जरा भी भ्रम,संशय,अज्ञान नही रह जाता है.....

14 Aug 2024 (i)

ईश्वर के (पुरुषविशेष के) स्वरूप के अनुसार ही निमित्त का (पुरुष का) अपना स्वरूप है,
ऐसा कहने का तात्पर्य यह नही कि 'ईश्वर' मनुष्य है,
मनुष्य अलग से कुछ भी नही है,
बस ईश्वरीय महिमा के निमित्त है,
ईश्वरीय महिमा का दर्शन होते ही
मनुष्य होने का निमित्त पूरा होता है,
चूँकि ईश्वरीय-साक्षी में स्वभाव से ही जगत की व्यावहारिक स्थिति है,
इसलिए ईश्वरीय महिमा के अर्थ में ईश्वर की जगदीश्वर की भूमिका सिद्ध है,
यद्यपि मनुष्य में जो कुछ भी कुशलता है, सकारात्मकता है<वह पूर्णता में नही होने से अस्पष्ट है,
इसलिए कोई भी सकारात्मक गुण पूर्णता में न होने से उसकी अपेक्षा में मनुष्य में नकारात्मक गुण भी स्थापित हैं,
सकारात्मकता की पूर्णता में होने से ईश्वर में कोई भी सापेक्षिक दबाव नही है,
और सापेक्षिक दबाव नही होने से कोई भी नकारात्मक गुण स्थापित नही है,

ध्यान रहे अपूर्णता में ही सापेक्षिक दबाव बनता है पूर्णता में नही,
मनुष्य में जो कुछ भी कुशलता में है, सकारात्मकता में है<उसकी पूर्णता में ही ईश्वरत्व का परिचय है,
परंतु इसका यह तात्पर्य नही कि मनुष्य कभी 'परिपूर्णतः ईश्वर' बन सकता है,
क्योंकि मनुष्य कितनी भी सकारात्मकता में क्यों न हो जाए फिर भी उससे और सकारात्मकता शेष रह ही जाती है.....
_'परिपूर्णतः ईश्वर' का वास्तविक परिचय स्पष्ट न होने से अज्ञानी मनुष्यों में भ्रान्ति फैली,
और भ्रान्तिवश अज्ञानी मनुष्यों ने अपने लिए अपने स्वरूप तथा समानता में अपने ही जैसे झूठे ईश्वर गढ़ लिए,
अज्ञानी मनुष्यों ने अपने-अपने अपेक्षित दृष्टिकोण के अनुसार आत्म-अनात्म, ब्रह्म-शून्य, द्वैत-अद्वैत आदि का सापेक्षिक दार्शनिक जाल स्थापित किया,
साधारण जन समुदाय दिग्भ्रमवश इसी सापेक्षिक दार्शनिक जाल में उलझा हुआ है,
(गीता-पुराण आदि लोक-प्रतिष्ठित अध्यारोपित धर्मग्रंथों में मिथ्या ईश्वरत्व की घोषणा से सही अर्थ में सही-सही ईश्वरत्व की घोर अवमानना हुयी है,
इसलिए ईश्वर कहने की अपेक्षा सम्यग् संकेत अर्थ में 'अपौरुषेय' कहना ही अधिक उपयुक्त है),
मनुष्य में जो भी कुशलता है, जो भी सकारात्मकता है<वह सब सापेक्षता में होने से अपूर्ण है,
परंतु परिपूर्ण ईश्वर में ऐसा नही,
परिपूर्ण ईश्वर में कुछ भी अकुशलता नही, कुछ भी नकारात्मकता नही, कुछ भी वासना नही, कुछ भी अशुद्धता नही, कुछ भी अपवित्रता नही, कुछ भी मलिनता नही, कुछ भी दोष नही,
परिपूर्ण ईश्वर स्वभाव से ही परिपूर्णतः सत् स्वरूप है, परिपूर्णतः चेतन स्वरूप है>
परिपूर्णतः ज्ञान स्वरूप है, परिपूर्णतः आनंद स्वरूप है,
परिपूर्ण ईश्वरत्व की पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता में छल नही है, धोखा नही है,
यद्यपि यह भी ईश्वर का अपेक्षित दृष्टिकोण में अपेक्षित परिचय है<जिसमें साधारण जनता के लिए भावना योग्य भावनीय भावना है,
अपेक्षित दृष्टिकोण में कृत्रिमतः भावना में भावित होना ही संभव है,
अपेक्षित दृष्टिकोण में सम्मोहन,भ्रम,संशय,
अज्ञान,दुःख भंग होना संभव नही.....
_तथ्यतः यथार्थ निभ्रान्त परिस्पष्टता में कोई भी भावना योग्य भावनीय भावना शेष नही रहती है,
निभ्रान्त सम्यग् यथार्थ परिस्पष्टता में ही स्वसम्मोहन भंग होता है,
दिग्भ्रम भंग होता है, अज्ञान भंग होता है, संदेहों-संशयों का समूल भंग होता है, दुःखों-क्लेशों का समूल भंग होता है,
इसलिए निभ्रान्त सम्यग् यथार्थ परिस्पष्टता के निमित्त ही उपसनारत् रहो, साधनारत् रहो.....
ध्यान रहे लोकदृष्टि में<लोकाचार में सामान्यतः जिसे ईश्वर कहा जाता है<ऐसा ईश्वर सापेक्षिक दृष्टिकोण के अंतराल में ही अस्पष्टतः सिद्ध होता है न कि अंतरालरहित निभ्रान्त दर्शनमात्र परिस्पष्टता में,
जो भी अपेक्षित दृष्टिकोण के अंतराल में स्थापित है<उसकी बस कृत्रिमतः भावनीय भावना ही संभव है न कि सम्यग् यथार्थ स्पष्टीकरण......
अंतरालरहित दर्शनमात्र में लोक-प्रचलित ईश्वर का अपेक्षित दृष्टिकोण सिद्ध नही है,
अंतरालरहित दर्शनमात्र में बस
उपस्थितिमात्र की भूमिका ही सहज सिद्ध है.....
अज्ञानी मनुष्यों ने अपने आरोपित कर्ता-भाव के अपेक्षित दृष्टिकोण में कर्ताविशेष ईश्वर की कल्पना को (मिथ्यादृष्टि को) स्थापित किया है,
अंतरालरहित दर्शनमात्र में न ही सृष्टि है, न ही कोई आरोपकर्ता<सृष्टिकर्ता,
अपेक्षित दृष्टिकोण के अंतराल में ही सृष्टि तथा सृष्टिकर्ता का सापेक्षिक आरोप हुआ है,
सापेक्षिक आरोप की भ्रान्ति में ही यह लोक दुःख तथा शोक में आबद्ध है,
अंतरालरहित दर्शनमात्र में ही सापेक्षिक आरोप की भ्रान्ति भंग है......
आत्म-अनात्म, ब्रह्म-शून्य, द्वैत-अद्वैत आदि सापेक्षिक आरोप की भ्रान्ति भंग होना ही सम्यग् मुक्ति है...

14 Aug 2024 (ii)

जिस सीध में श्वास का आना हो रहा है<उसी सीध में श्वास का जाना भी हो रहा है,
हर बार ही श्वास का आना-जाना एक ही सीध में हो रहा है,
इसलिए जब भी श्वास भीतर आती है, बाहर जाती है,
उसके सीध को भलीभाँति याद रखते हुए उसके सीध में सावधानीपूर्वक पहले से ही स्मृतिपूर्वक सजग हो स्थिर हो जाओ (श्वास के आने-जाने से पहले ही स्मृतिपूर्वक सजग हो स्थिर हो जाओ),
इस तरह बिना ज्ञात हुए (बिना मालूम हुए) एक भी श्वास चलायमान है पर जिस सीध में श्वास का ज्ञान है वह सीध चलायमान न होकर स्थिर है,
इसलिए चलायमान श्वास पर नही बल्कि श्वास के ज्ञानमात्र में उसके स्थिर सीध पर ही ध्यान रखना है, दृष्टि रखनी है,
कुछ साधक पूछते हैं कि ध्यान कहाँ रखना है, दृष्टि कहाँ रखनी है,
उनके लिए यहाँ सांकेतिक उत्तर दे दिया गया है.......
अगर यह बात समझ में नही आ रही है तो
यह बात समझ लो कि सांस का आना-जाना जहाँ मालूम हो रहा है बस वहीं पर ध्यान रखो, नजर रखो,
अगर यह बात भी समझ में नही आ रही है तो नाक के छिद्रों में जहाँ श्वास का स्पर्श महसूस हो रहा है बस वहीं पर चुपचाप ठहरे रहो हिलना नही.....
बिना हिले-डुले चुपचाप ठहरे रहो,
बिना ठहरे दृष्टि नही खुलेगी, बुद्धि नही खुलेगी...

16 Aug 2024(i)

तथ्यतः यथार्थ अनुसार जो नियम है<ऋत् है.....
_ऋत् ही सही अर्थ में वेद है न कि छंदबद्ध ऋचाओं से अध्यारोपित ऋग्वेदादि.....
और ऋत् ही सही अर्थ में धर्म है न कि लोक-प्रचलित अध्यारोपित धर्म.....
_'ऋत्' सार्वकालिक, सार्वभौमिक सत्य नियम है<जिसका न कभी उल्लंघन है, न अतिक्रमण.....
_ऋत् का मनुष्य तथा देवताओं सहित सम्पूर्ण लोक-लोकान्तर में शासन है, अनुशासन है,
ऋत् किसी का बनाया हुआ नियम नही है,
ऋत् ही सभी सापेक्षिक नियमों का आधार है,
ऋत् के आधार पर ही पूर्व कल्प के अनुसार यह वर्तमान कल्प है,
जहाँ पूर्व कल्प के अनुसार ही इस वर्तमान कल्प में पृथ्वी,अंतरिक्ष,सूर्य,चंद्र,तारों आदि का संतुलन है, स्थिति है,
'ऋत्' लोकदृष्टि में प्रचलित ब्रह्मा,विष्णु,शिव,दुर्गा,राम,कृष्ण,ईश्वर,ब्रह्म,परमात्मा आदि किसी का बनाया हुआ नियम नही है,
क्योंकि कोई भी बनाने वाला सापेक्षता के ही अंतराल में होता है यह भी ऋत्<नियम से ही सिद्ध है,
_ऋत् न किसी से है, न किसी के द्वारा है, न किसी के माध्यम से है,
ऋत् को बनाने वाला कोई भी नही है<कोई भी कर्ताविशेष नही (पुरुषविशेष नही),
इसलिए ऋत् (ऋत्<नियम) अपौरुषेय है..

16 Aug 2024 (ii)

सामान्यतया जिसे तुम स्वभाव कहते हो असल में वह गुण<धर्म का संस्कार है,
गुण<धर्म के संस्कार से तादात्म्यतावश ही तुम्हें स्वभाव की भ्रान्ति होती है, और स्वभाव की भ्रान्ति से ही तुम्हें अपने होने की भ्रान्ति होती है,
श्वास की अपेक्षा चित्त निकट है, और चित्त>(चेतना) की अपेक्षा गुण<धर्म निकट है,
गुण<धर्म इतना अधिक निकट है कि संस्कारवश<दबाव में तादात्म्यता बन ही जाती है,
तादात्म्यतावश गुण<धर्म ही तुम्हें अपना धर्म लगने लगता है, अपना स्वभाव लगने लगता है,
अंतों का माध्यमिक संतुलन भंग होने पर ही धनात्मक, ऋणात्मक तथा उदासीन गुणों का परस्पर सापेक्षिक अस्तित्व उत्पन्न होता है,
ध्यान रहे उदासीन भी अपने आप में उदासीन नही है<वह भी सापेक्षता में ही सापेक्षिक संतुलन के निमित्त उदासीन है,
गुण<धर्म कहने का तात्पर्य यहाँ गुणी के स्वभावगत् गुण से है,
जैसे अग्नि का गुण<धर्म है उष्णता,
गुण और गुणी एक-दूसरे से अलग नही किया जा सकता है,
यह तादात्म्यता की चरमोत्कर्ष पराकाष्ठा का संकेत है,
गुण का निषेध होने पर उसके साथ ही गुणी का भी निषेध हो जाता है,
(उदाहरण के लिए प्रचलित वेदांतियों का सच्चिदानंद<आत्मा अथवा
सच्चिदानंद<ब्रह्म कहना भी अपेक्षाकृत
गुण <> गुणी के अपेक्षित दृष्टिकोण में ही सिद्ध होता है तथ्यतः नही<यथार्थतः नही),
गुण<धर्म से तादात्म्यता भंग होने पर गुण को धारण करने वाले कर्ता-भाव का भी निषेध हो जाता है,
कर्तामूलक अहम् का भी निषेध हो जाता है,
गुण<धर्म से तादात्म्यता भंग होने पर ही
तुम्हें अपना वास्तविक स्वरूप स्पष्ट होता है,
जहाँ अपने वास्तविक स्वरूप में तुम 'तुम' नही होते,
अर्थात् जिसे तुम स्वयं अपने को मान रहे हो उसकी भ्रान्ति भंग हो जाती है,
(गुण<धर्म अपेक्षित संस्कारगत् धर्म से अर्थात् स्वभाव से अर्थात् अध्यात्म से तादात्म्यता भंग होने पर इदं अहम्, इदं मम्, इदं अयमात्मा की भ्रान्ति भंग हो जाती है,
तथ्यतः यथार्थ निभ्रान्त स्पष्ट हो जाता है),
वास्तविक स्वरूप स्पष्ट होने पर तुम्हारा अपनी तरफ से मानना नही रह जाता,
मान्यता नही रह जाती, धारणा नही रह जाती,
वास्तविक स्वरूप में परिस्पष्टतः प्रत्यक्ष तुम्हारा बस निमित्तमात्र उपस्थित भर होना ही रहता है,
(तुम्हारी बस उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका ही स्पष्ट रहती है),
यद्यपि वास्तविक स्वरूप कहना भी उपयुक्त नही,
क्योंकि स्वरूप कहने में तुम्हारा अपने होने का अपेक्षित दृष्टिकोण रहता ही है,
अपने होने की मान्यता रहती ही है,
पर क्या किया जाए यह तुम्हारी विवशता है, यह तुम्हारी लाचारी है कि तुम सापेक्षिक नियमों की सीमा में बँधे हुए हो,
इसलिए सापेक्षिक नियमों के तहत तुम्हें सापेक्षिक शब्द-व्यवहार में ही समझ में आता है,
तुम्हें तुम्हारे समझ के तल पर समझाने के लिए ही स्वरूप आदि शब्दों का संकेत करना पड़ता है,
इसलिए ध्यान रहे यहाँ स्वरूप कहकर जो संकेत किया गया है, उस संकेत की दिशा उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका की ओर ही है,
इसलिए स्वरूप के अपेक्षित परम्परागत् अर्थ से सावधान रहते हुए उसका बस संकेत अर्थ ही ग्रहण हो,
तुम्हें सम्यग् संकेतार्थ दिशा-बोध स्पष्ट हो,
जैसे सूर्य की ओर संकेत करती हुई अंगुली सूर्य नही हो जाती,
सूर्य की ओर संकेत करने पर भी वह अंगुली ही रहती है,
इसी तरह यहाँ जो कुछ भी शब्द-व्यवहार में कहा जाता है<वह सब संकेत भर है,
इसलिए विशेषकर ध्यान रहे संकेत बस संकेत अर्थ में रहे,
संकेत का लक्ष्य में कदापि आरोप न होने पाए,

लोक के लिए यह दुःखद दुर्भाग्य की बात है कि लोकदृष्टि में प्रतिष्ठित धर्मग्रंथ गीता-उपनिषद-वेदांत-पुराण आदि अपेक्षित आरोप<अध्यारोप के दोष से दूषित हैं,
अपेक्षाकृत<अध्यारोपित धार्मिक-विश्वास यथार्थतः सत्य स्पष्टता में सबसे बड़ी बाधा है,
अपेक्षित धार्मिक-विश्वास से, धार्मिक-आस्था से सावधान रहना बहुत ही आवश्यक है,
अध्यारोपित धार्मिक-विश्वास से बँधे हुए व्यक्ति को कदापि तथ्यतः यथार्थता स्पष्ट नही हो सकती....
ध्यान रहे अध्यारोपित धार्मिक दृष्टिकोण ही नही बल्कि पदार्थ अपेक्षित वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी तथ्यतः यथार्थ स्पष्टता में बाधक है,
इसलिए किसी भी अपेक्षित दृष्टिकोण से सावधान होना आवश्यक है....

18 Aug 2024

दृष्टिकोण स्थापित होने से सावधान रहो,
तथ्य की तरफ से कोई भ्रान्ति नही,
तथ्य की पारदर्शिता यथार्थतः निभ्रान्त स्पष्ट है,
दृष्टिकोण स्थापित होने से तुम अपने दृष्टिकोण से ही स्वसम्मोहनवश अपनी दृष्टि में दिग्भ्रमित हो,
भ्रम, संशय, अज्ञान, दुःख तथा शोक में आबद्ध हो,
दृष्टिकोण में ही 'यह सत्य है' की भ्रान्ति उत्पन्न होती है,
लोकदृष्टि में प्रतिष्ठित सभी अध्यारोपित धर्म-संस्थापक, सभी अध्यारोपित शास्त्रकार, भाष्यकार इसी भ्रान्ति में आबद्ध हैं....
_द्वैत-अद्वैत आदि कोई भी अपेक्षित दृष्टिकोण हो वह दिग्भ्रम ही है,
अपेक्षित दृष्टिकोण भंग हो,
तथ्यतः यथार्थ स्पष्ट हो इसके लिए अभिप्रेरित रहो.....
_जो कुछ भी तर्क, प्रमाण आत्म-अनात्म, ईश्वर-अनीश्वर, द्वैत-अद्वैत आदि को सिद्ध करने के लिए दिए जाते हैं<वे सभी तर्क, प्रमाण सापेक्षिक अंतराल में होने से सापेक्षिक नियम के ही अंतर्गत हैं,
ध्यान रहे सापेक्षता के आयाम में (सापेक्षता के अंतराल में) सापेक्षिक नियम ही चलते हैं,
सापेक्षिक आयाम में सापेक्षिक नियम से जो सिद्ध होता है<उसी सापेक्षिक आयाम में सापेक्षिक नियम से वह असिद्ध भी होता है,
चूँकि सापेक्षता के आयाम में सापेक्षिक दबावस्वरूप परस्पर विरोधी दोनों ही अंत साथ-साथ हैं,
इसलिए जहाँ एक तरफ आत्मा, ईश्वर आदि का मंडन करने वाले है, वहीं दूसरी तरफ उसका खंडन करने वाले भी हैं,
यह आश्चर्य की बात है कि एक ही सापेक्षिक तल में द्वैत-अद्वैत, ईश्वर-अनीश्वर आदि परस्पर विरोधी सापेक्षिक मत स्थापित हैं,
इस सापेक्षिक जगत में ऐसा कोई मत अथवा व्यक्ति नही कि जिसका सब समर्थन करते हों अथवा जिसका सब विरोध करते हों,
जिसका समर्थन है<उसका विरोध भी अवश्य ही है,
लोक में परस्पर विरोधी धर्मों, दर्शनों, राष्ट्रों, संस्कृतियों, सभ्यताओं का रक्तरंजित संघर्ष पाया जाता है,
जब तक तुम सापेक्षिक दबाव में हो,
तब तक तुम सापेक्षिक दबावस्वरूप सापेक्षता के अंतराल में ही आबद्ध हो,
तब तक तुम आत्मा-ब्रह्म आदि कुछ भी प्रमाणित कर लो,
तुम्हारा यह प्रमाण अंधेरे में तीर चलाने जैसा है,
अंधकार के आयाम में तीर चलाने से तीर प्रकाश के आयाम में नही पहुँच सकता,
मात्र उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका ही सापेक्षता के पार है,
अतः मात्र उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका की दिशा में ही उत्तरोत्तर अभ्यास का निमित्त पूरा करो,
मात्र उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका में ही तुम्हारी वास्तविकता है,
यही तुम्हारी पूर्णतः सिद्धावस्था है,
भले ही अभी तुम्हें तुम्हारी उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका स्पष्ट नही है,
पर यह तुम्हारी सदा-सनातन नित्य-स्थिर आधारीय भूमिका है,
ऐसा नही कि तुम्हें तुम्हारी उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका पूरी तरह से अस्पष्ट है,
अभी तुम्हें तुम्हारी उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका न पूरी तरह से स्पष्ट है,
और न ही पूरी तरह से अस्पष्ट है,

बस तुम्हें "पूर्णतः स्पष्टता" का निमित्त भर पूरा करना है,
न ही तुम्हें कुछ प्राप्त करना है, न ही तुम्हें किसी से एक होना है, न ही तुम्हें किसी से एकाकार होना है,
न ही तुम्हें किसी से तद्रूप होना है, न ही तुम्हें किसी के समान होना है,
न ही तुम्हें किसी के स्वरूप में होना है,
न ही तुम्हें किसी की समता में होना है,
न ही तुम्हें कुछ बनना है, न ही तुम्हें कुछ होना है,
न ही तुम्हें किसी में समाहित होना है,
न ही तुम्हें किसी में मिलना है, न ही तुम्हें किसी में लीन होना है,
तुम सदा से ही निमित्तमात्र बस उपस्थित भर हो<बस यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाए,
तुम्हारे निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होने में तुम्हारा जरा भी अहम् नही बचता है,
तुम्हारा जरा भी आत्मभाव नही बचता है,
जरा भी कर्ताभाव नही बचता है,
जरा भी भोक्ताभाव नही बचता है,
जरा भी इदं अहम्, इदं मम्, इदं मम् आत्मा, इदं अयमात्मा नही बचता है,
निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होने में इतनी अधिक शुद्धता है, इतनी अधिक पवित्रता है कि दृष्टाभाव भी नही बचता है,
ज्ञाताभाव भी नही बचता है, साक्षीभाव भी नही बचता है,
(ध्यान रहे साक्षीभाव के दबाव में स्वभाव की भ्रान्ति उत्पन्न होती है,
और स्वभाव की भ्रान्ति ही भ्रम, संशय, अज्ञान तथा दुःख का आधार है,
स्वभाव की भ्रान्ति में ही स्वभाव में अध्यात्म का आरोप होता है,
अध्यात्म के आरोप से ही दुःख उत्पन्न होता है,
इसलिए सम्यग् मुमुक्षु को लोकदृष्टि में प्रचलित गीता-उपनिषद-वेदांत के अध्यात्मवादी दृष्टिकोण से भी सावधान होना बहुत ही आवश्यक है),
निमित्तमात्र उपस्थित भर होने में न ही तुम्हारा कभी जन्म हुआ है, न ही तुम्हारी कभी मृत्यु है,
निमित्तमात्र उपस्थित भर होने में ही
तुम्हारी अक्षुण्ण अमरता है,
ध्यान रहे निमित्तमात्र उपस्थित भर होना प्राप्ति का, बनने का, होने का विषय नही है,
यह तुम्हारा सहज स्वभाव है,
ध्यान रहे दर्शनमात्र>(ज्ञानमात्र) के निमित्त ही तुम्हारी उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका है इससे इतर नही,
उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका में ही तुम्हारी पूर्णता है इसलिए तुम्हें अलग से कहीं भी पूर्ण नही होना है,
तुम सहज स्वभाव से ही निमित्तमात्र बस उपस्थित भर हो,
बस इतनी ही कमी है कि यह पूर्णतः स्पष्ट नही है,
इसलिए बस पूर्णतः स्पष्टता का निमित्त
पूरा करना आवश्यक है,
ध्यान रहे श्वास को तुम ला नही रहे,
तुम श्वास के सामने उपस्थित होते हो तो श्वास का सहज ही ज्ञान होता है, श्वास का सहज ही दर्शन होता है अर्थात् दृष्टि रहती है,
तुम्हें अलग से कुछ भी लाना नही पड़ता,
तुम्हें अलग से कुछ भी करना नही पड़ता,
बस तुम्हें मात्र निमित्त उपस्थित भर ही होना पड़ता है,
बस निमित्त उपस्थित भर होने की बात तुम्हें सावधान करने के लिए कही जाती है,
वास्तव में तो तुम निमित्तमात्र उपस्थित भर हो ही,
हाँ अभी तुम्हें उपस्थित भर होने की निमित्तमात्र भूमिका पूर्णतः स्पष्ट नही है,
इसलिए तुम स्वयं अपने को सापेक्षता के अंतराल में ही उपस्थित हुआ पाते हो,
सापेक्षिक अंतराल में भी जो तुम उपस्थित रहते हो यहाँ भी तुम्हारा उपस्थित होना किसी भी सीध में लंबे समय तक स्थिर नही रहता है,
तुम्हारा उपस्थित होना इधर-उधर के सापेक्षिक दबाव में इधर-उधर बदलता ही रहता है<यह तुम्हारी अस्थिरता की, चंचलता की बहुत ही बड़ी कमी है,
तुम्हें अस्थिरता की, चंचलता की इस कमी को हटाना बहुत ही आवश्यक है,

इसके लिए तुम्हें नासिकाग्र के ठीक सीधे सामने की सीध से सीधे हो उत्तरोत्तर सीधे से सीधे में भली-भाँति संतुलन-पूर्वक स्थिर होने का निमित्त पूरा करना आवश्यक है,
सर्वप्रथम आती-जाती श्वास के ज्ञान की सीध में स्थिरता का निमित्त पूरा करना आवश्यक है,
फिर इससे भी सीधे, फिर इससे भी सीधे, फिर इससे भी सीधे इस तरह उत्तरोत्तर सीधे से सीधे सीध में स्थिरता का निमित्त पूरा करना आवश्यक है,
इस तरह अंततः जब सबसे अंतिम सीधे सीधी सीध में स्थिर होना हो जाता है,
तब फिर इससे सीधे इससे और सीधी सीध न रह जाने से अंतराल में उपस्थित होना भी नही रह जाता है तब अंतरालरहित सीधे बस निमित्तमात्र उपस्थित भर होना ही परिस्पष्टतः रह जाता है, परिस्पष्टतः बस उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका ही रह जाती है,
उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका में ही अंतरालरहित निभ्रान्त यथार्थ स्पष्टता है.....
ध्यान रहे व्यवहारतः स्थिति के परिप्रेक्ष्य में अंतरालरहित कहना अपेक्षाकृत दृष्टिकोण से ही है......
_ध्यान रहे जब तक तुम सापेक्षिक दबाव में हो तब तक तुम्हारी स्थिति सापेक्षता के आयाम में है,
और तब तक तुम सापेक्षता के अंतराल में ही आबद्ध हो भ्रम, संशय, अज्ञान, दुःख तथा शोक में पड़े हो,
सापेक्षिक नियमों की दासता से मुक्ति चाहते हो तो इसके लिए सापेक्षिक आयाम से मुक्ति हो यही तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिए,
इस लक्ष्य की दिशा में उत्तरोत्तर सम्यग् उद्योग का निमित्त पूरा करो,
कोई भी मत स्थापित न करते हुए अनवरत्
यथार्थतः सत्य शोध में लगे रहो,
जब तक पूर्ण यथार्थ सत्य स्पष्ट न हो जाए,
तब तक अपनी तरफ से ऐसा है, वैसा है<'यह सत्य है' कुछ भी निर्धारित मत करो...
ध्यान रहे 'परिस्पष्टता' कर्म का परिणाम नही है सहज सिद्ध है,
इसलिए 'अभ्यास करो' न कहकर 'अभ्यास का निमित्त पूरा करो' यह कहा जाता है,
तुम्हारा अभ्यास बस निमित्त होता है,
यद्यपि मुक्ति अभ्यास का परिणाम नही है पर सम्यग् अभ्यास का निमित्त पूरा किए बिना मुक्ति नही,
इसलिए सम्यग् अभ्यास का निमित्त पूरा करना आवश्यक है,
'अभ्यास करो' कहने में कर्तामूलक अहंभाव खड़ा हो जाता है,
जो सबसे बड़ी बाधा है,
'अभ्यास का निमित्त पूरा करो' कहने में निमित्तभाव रहता है अहंभाव नही.....
क्रमशः

20 Aug 2024

सामान्य भाषा में प्राकृतिक ध्यान का संकेत>
_प्रतिदिन कम से कम ३ बार कम से कम ४५ मिनट तक एक आसन में बिना हिले-डुले हर श्वास-प्रश्वास के आने-जाने के ठीक समय पर उपस्थित होना है,
इस बात की पूरी सावधानी रहे कि बिना उपस्थिति के एक भी श्वास-प्रश्वास न छूटने पाए,
(सांस आ रही है मालूम पड़ रही है,
सांस जा रही है मालूम पड़ रही है,
बस इससे ज्यादा कुछ नही,
सांस आ रही है मालूम पड़ रही है,
सांस जा रही है मालूम पड़ रही है,
बस मालूम भर पड़ने तक ही रहना है क्या मालूम पड़ रहा है, किसे मालूम पड़ रहा है<इस तरफ ध्यान नही देना है),
श्वास बस ज्ञात हो रही है<यह सहज उपस्थित है इससे आगे नही बढ़ना है,
क्योंकि इससे आगे बढ़ने पर फिर क्या ज्ञात हो रहा है, किसे ज्ञात हो रहा है यह काल्पनिक विचार प्रक्रिया भर है,
फिर तुम्हारे पास इतना समय भी नही है,
क्योंकि क्या ज्ञात हो रहा है, किसे ज्ञात हो रहा है<यह विचार करने तक अगली श्वास छूट जाएगी,
अगर निरंतर हर श्वास के ठीक समय पर उपस्थित होना है तो श्वास के बस ज्ञात होने भर तक ही रहना है इसके आगे क्या ज्ञात हो रहा है, किसे ज्ञात हो रहा है इसमें नही उलझना है,
बस केवल ज्ञात होने भर में ही रहना है

इससे जरा भी इधर-उधर नही होना है,
क्या ज्ञात हो रहा है, किसे ज्ञात हो रहा है इसमें नही आना है,
लोकदृष्टि में प्रतिष्ठित गीता-उपनिषद-वेदांत आदि सारा अध्यारोप ही किसे ज्ञात हो रहा है, क्या ज्ञात हो रहा है इस सापेक्षिक जाल पर निर्भर है,
यह लोक ज्ञाता-ज्ञेय के सापेक्षिक जाल में फँसा हुआ दुःख और शोक को प्राप्त है,
किसे ज्ञात हो रहा है, क्या ज्ञात हो रहा है यह प्रश्न ही अपेक्षाकृत<अपेक्षित दृष्टिकोण में है जिसका उत्तर अपेक्षाकृत<अपेक्षित दृष्टिकोण में निर्धारित है,
और ध्यान रहे सारा सम्मोहन, सारा दिग्भ्रम ही अपेक्षाकृत<अपेक्षित दृष्टिकोण का है,
(सारा सम्मोहन, सारा दिग्भ्रम ही किसे ज्ञात हो रहा है = ज्ञाता, क्या ज्ञात हो रहा है = ज्ञेय के सापेक्षिक दबाव से है),
इसलिए किसे ज्ञात हो रहा है, क्या ज्ञात हो रहा है<इससे अनिमित्त हो परिशुद्घ-परिस्पष्ट ज्ञानमात्र के निमित्त हो जाओ तभी सम्मोहन भंग है, दिग्भ्रम भंग है, भ्रम,संशय,अज्ञान,दुःख,शोक भंग है.....
_ध्यान रहे निरंतर बस केवल ज्ञात होते रहने से बस केवल ज्ञात होना ही स्पष्ट होता जाता है,
जब बस ज्ञात होना पूर्णतः स्पष्ट होता है,
तब क्या ज्ञात हो रहा है, किसे ज्ञात हो रहा है
इस संबंध में निभ्रान्ततः पूरी यथा सत्यता परिस्पष्ट हो जाती है, पूरी तरह से पूरी सच्चाई खुल जाती है,
जरा सा भी भ्रम,संशय,अज्ञान,दुःख,क्लेश नही रह जाता है......
जब तक बस केवल ज्ञात होना भर पूर्णतः स्पष्ट नही हो जाता,
तब तक क्या ज्ञात हो रहा है, किसे ज्ञात हो रहा है इस पर ध्यान नही देना है......
_गर्दन तथा रीढ़ की हड्डी को यथा सहजतापूर्वक सीधा स्थिर रखते हुए सीधे स्थिर पद्मासन में बैठकर ध्यान-अभ्यास हो तो अधिक उपयुक्त है,
विद्यार्थी हो, कृषक हो, सैनिक हो कोई भी क्यों न हो यह प्राकृतिक ध्यान-अभ्यास सभी के लिए लाभप्रद है,
होश को, सजगता को बढ़ाने के लिए,
स्फूर्ति,गति,संतुलन को बढ़ाने के लिए, स्मृति<याददाश्त, मनोबल को बढ़ाने के लिए, बुद्धिमत्ता<बुद्धिलब्धि स्तर को बढ़ाने के लिए यह प्राकृतिक ध्यान-अभ्यास बहुत ही उपयोगी है,
यह प्राकृतिक ध्यान-अभ्यास संप्रदाय निरपेक्ष है,
यह किसी भी धर्म<संप्रदाय वाले के लिए आपत्तिजनक नही है....

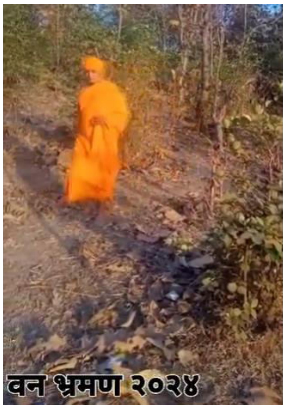

22 Aug 2024

यथार्थतः सत्यनिष्ठ होना तुम्हारा सहज स्वभाव है,
जहाँ किसी दार्शनिक<सैद्धांतिक सत्य की खोज का अर्थ नही है,
सत्यनिष्ठा स्वाभाविक है,
हर कोई सत्य जानना चाहता है,
सत्य क्या है<यह सहज स्वाभाविक आधारीय जिज्ञासा है,
इस आधारीय जिज्ञासा में रहते हुए यह जो भी अस्पष्टतः प्रतीत हो रहा है<इसके प्रति यथा सहज हो तब तक सजग रहना है जब तक यह भली-भाँति पूर्णतः स्पष्ट न हो जाए,
भली-भाँति पूर्णतः स्पष्ट होने पर ही इसकी निभ्रान्त यथार्थतः सत्यता स्पष्ट होती है.....

_ध्यान रहे तुम्हारा उपस्थित होना सहज है,
जिस सीध में तुम्हारी उपस्थिति होती है<उस सीध का ज्ञात होना सहज है, दर्शन होना सहज है,
बस सीधे से सीधे सीध में स्थिरता का निमित्त पूरा करना है,
स्थिरता का निमित्त पूरा होते ही ज्ञानमात्र<(दर्शनमात्र) में उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका स्पष्ट हो जाती है,
ज्ञानमात्र के निमित्त उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका स्पष्ट होते ही सम्पूर्ण भ्रम,संशय,अज्ञान,दुःख भंग हो जाता है,
अगर तुम ईमानदार हो तो संशयों को, संदेहों को अवश्य ही स्वीकार करोगे,
क्योंकि तुम्हारे ये ही संशय, ये ही संदेह सत्य की खोज के लिए आधार हैं,
जिन संबंधों में भी, संदर्भों में भी संशय है, संदेह है<उन संबंधों में, संदर्भों में पूर्णतः सम्यग् समाधानार्थ निभ्रान्त यथा सत्यता स्पष्ट होने पर<पूर्णतः सच्चाई खुलने पर अलग से सत्य जानने के लिए कुछ नही बचता,
उदाहरण के लिए जैसे बुद्ध ने अलग से किसी दार्शनिक सत्य की खोज नही की,
बुद्ध ने जीवन के दुःख संबंधित समस्या के समाधानार्थ<सत्य की खोज की,
यद्यपि बुद्ध की यह खोज अपेक्षाकृत दुःख निरोध के अपेक्षित दृष्टिकोण में थी,
इसलिए बुद्ध की यह खोज भी पूर्णतः सम्यग् समाधानार्थ नही थी,
ध्यान रहे जब तक अपेक्षित दृष्टिकोण है,
तब तक कोई न कोई संशय, संदेह बचता ही है,
और तब तक पूर्णतः सम्यग् समाधानार्थ<पूर्णतः निभ्रान्त पूर्ण यथा सत्य स्पष्ट नही हो सकता.......
कुछ संदेह शेष रहने के कारण गौतम बुद्ध ने पूर्णता की घोषणा नही की,
इसलिए कुछ प्रश्नों के संबंध में बुद्ध ने कोई उत्तर नही दिया,
बुद्ध के अनुयायियों ने ही बुद्ध को सम्यक् सम्बुद्ध कहा.....
(यहाँ बुद्ध का उदाहरण तुम्हें अपेक्षित दृष्टिकोण से सावधान करने के लिए दिया गया है निंदात्मक दृष्टिकोण से नही),
आत्म-अनात्म, ब्रह्म-शून्य, द्वैत-अद्वैत आदि सभी अपेक्षाकृत मत संशय-संदेह के अंतर्गत ही हैं,
अपेक्षाकृत मतों के अनुयायी अपने संशयों को, संदेहों को दबाते हैं उन्हें उभरने नही देते, क्योंकि उन संशयों का, संदेहों का सामना करने पर उनका अपेक्षाकृत मत धराशायी होने लगता है,
सत्य का साधक संशयों को, संदेहों को दबाता नही है,
उसका संशयात्मा विनश्यति यह अपेक्षित दृष्टिकोण नही होता है,
उभरते हुए संशय-संदेह यथार्थतः सत्य ओर खोज का आधार होने से शुभ है,
अगर कोई संशय नही होता, संदेह नही होता तो यथार्थतः सत्य ओर खोज का आधार ही नही होता,
संशयों के, संदेहों के आधार पर ही जिन संबंधों में संशय बने हुए हैं, संदेह बने हुए हैं उनके पूर्णतः सम्यग् समाधान हेतु पूर्णतः सम्यग् यथार्थ सत्य ओर खोज हो पाती है,
इसलिए संशय उत्पन्न होना, संदेह उत्पन्न होना कोई अशुभ नही है,
जिन अध्यारोपित धर्मग्रंथों में संशय को, संदेह को अशुभ बताया है, पाप बताया है,
ऐसे अध्यारोपित धर्मग्रंथों से सावधान रहो,
उदाहरण के लिए अध्यारोपित धर्मग्रंथ गीता के ....संशयात्मा विनश्यति.... इस अपेक्षित दृष्टिकोण से भी सावधान रहो,
साधारण जनता अपेक्षित दृष्टिकोण में ही आबद्ध रहने के लिए विवश है,
इसलिए साधारण जनता को लोकदृष्टि<लोकाचार की आदर्श शास्त्रीय मर्यादा का पालन करने दो,
साधारण जनता नानाविध परंपराओं का वाहक है,
उसे आदर्श शास्त्रीय परंपरानुसार चलने दो,
लोक में सापेक्षिक संतुलन के निमित्त ही लोक में नाना धर्म<संप्रदायों का विस्तार है,
सम्यग् धर्मसाधक समर्थन तथा विरोध से अनिमित्त सम्यग् मार्ग में दृढ़तापूर्वक स्थिर रहता है,
विशेषकर सम्यग् यथार्थनिष्ठ जिज्ञासु को सम्यग् यथार्थ अभिप्रेरित हो अध्यारोपित शास्त्रीय दृष्टिकोण से सावधान रहना आवश्यक है,
कोई भी अपेक्षित दृष्टिकोण सम्यग् समाधानार्थ सम्यग् यथार्थतः सत्य शोध के लिए बाधक है,
संशय के, संदेह के उभरने को अशुभ परिप्रेक्ष्य में नही लेना,
संशय का, संदेह का उभरना तुम्हारे लिए अशुभ नही है, निरर्थक नही है अपितु शुभ है, सार्थक है,
पर ध्यान रहे संशय में, संदेह में ही नही रहना है, हर संशय का, संदेह का पूर्णतः सम्यग् निराकरण होना चाहिए तभी सही अर्थ में पूर्ण मंगल है.....

24 Aug 2024

मात्र उपस्थित भर होने में निमित्तमात्र<निमित्त का न ही कभी जन्म होता है, और न ही कभी मृत्यु होती है,
चित्त ही पुराने शरीर के बीतने पर नये शरीर में उत्पन्न होता है<इस अर्थ में चित्त का ही जन्म होता है,
चित्त वीतधर्मी होने से अनित्य है, अस्थिर है, अनात्म है,
चित्त की गति (चित्त के बीतने तथा उत्पन्न होने की गति) इतनी अत्यधिक तीव्र है कि सामान्यतः चित्त स्थिर लगता है,
चित्त का बीतना तथा उत्पन्न होना इतने अत्यल्प समय का होता है कि सामान्यतः चित्त स्थिर लगता है,
इसी स्थिरता की भ्रान्ति से आत्म-भाव स्थापित हुआ है,
हर बार चित्त के बीतने पर जो अगला चित्त उत्पन्न होता है<वह पहले के चित्त से ठीक वही का वही भी नही होता है, और ठीक दूसरा भी नही होता है,
ठीक वही का वही भी नही, ठीक दूसरा भी नही यह अंतहीन क्रम चलता ही रहता है,
हर बार<बार-बार ठीक वही का वही भी नही, ठीक दूसरा भी नही<इस सनातन बीज ढाँचे पर ही इस जगत की व्यावहारिक सत्यता निर्भर है,
पर निमित्त की निमित्तमात्र उपस्थिति भर की भूमिका इस बीज से परे है......
जब तक चित्त-संतति का क्रम चल रहा है तभी तक दुःखद भव-बंधन है,
चित्त-संतति के क्रमिक आधार पर ही जन्म-मृत्यु का क्रम निर्भर है,
चित्त के निर्वाण होने पर जन्म-मृत्यु के दुःखद भवचक्र बंधन से मुक्ति हो जाती है,
(निर्वाण की स्थिति में भले चित्त की व्यावहारिक स्थिति नही होती पर चित्त का अव्यक्त में बीज अवश्य रहता ही है, अव्यक्त बीज का कभी क्षय नही होता है,
इसलिए निर्वाण के पश्चात अव्यक्त बीज से फिर से चित्त के उत्पन्न होने के लिए दबाव बनता है),
ध्यान रहे चित्त के अपेक्षाकृत बंधन तथा निर्वाण की स्थिति से उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका में कोई अंतर नही पड़ता,
उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका सदा-सनातन, नित्य-स्थिर-अपरिवर्तित है,
चित्त यद्यपि स्वयं ज्ञान-स्वरूप नही है पर ज्ञान से प्रकाशित होने से ज्ञानमय<(चेतनमय) प्रतीत होता है,
यह ज्ञानमय प्रतीति ही विज्ञान है,
ज्ञानमय<(चेतनमय) प्रतीत होने से ही चित्त>(विज्ञान) में आत्म-भाव स्थापित हो जाता है,
चिदानंद आत्मा की धारणा स्थापित होती है,
वस्तुतः ऐसा कोई 'आत्म' नही है, 'आत्मा' नही है जैसा कि आत्मवादी स्थापित करते हैं,
आत्मवादी तादात्म्यतावश ही अनात्म में आत्म-भाव की स्थापना कर आत्मा को सिद्ध करते हैं,
जानने वाला, देखने वाला तथा जिसे जाना जा रहा है, देखा जा रहा है यह सब एक ही सापेक्षिक आयाम में हैं,
जानने वाला, देखने वाला तथा जिसे जाना जा रहा है, देखा जा रहा है यह सब अनात्म है,
ज्ञाता-ज्ञेय से, दृष्टा-दृश्य से अनिमित्त ज्ञानमात्र<दर्शनमात्र के निमित्त उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका में ही आत्मा कहने का सम्यग् लक्ष्यार्थ संकेत स्पष्ट है.....
_यह शरीर भी आत्मा नही है, यह मन भी आत्मा नही है, यह बुद्धि भी आत्मा नही है यह कहकर भी आत्मवादियों का चेतना (विज्ञान) से तादात्म्यतावश इदं अहम्,
इदं मम् आत्मा, इदं अयम् आत्मा का अध्यारोप स्थापित हो ही जाता है,
गीता-उपनिषद-वेदांत के अध्यारोपित आत्मवाद के अपेक्षित दृष्टिकोण से सावधान होना आवश्यक है,
क्योंकि अध्यारोपित आत्मवाद का अपेक्षित दृष्टिकोण सम्यग् यथार्थ परिस्पष्टता में बहुत बड़ी बाधा है,
सारा ध्यान-समाधि का अभ्यास ही चित्त की परिशुद्धता के लिए है,
उत्तरोत्तर सीधे से सीधे हो यथा सहज-यथा सजग रहने से चित्त की उत्तरोत्तर शुद्धि होती है,
श्वास का ज्ञान होश का, सजगता का आरंभिक अवलंबन है,
श्वास के ज्ञान में ठहरने से अंततः ज्ञानमात्र ही स्पष्ट होता है,
चित्त के ज्ञान में ठहरने पर अंततः परिस्पष्टतः विशुद्ध ज्ञानमात्र ही शेष रह जाता है,
ज्ञानमात्र के निमित्त चित्त की उत्तरोत्तर शुद्धि होते-होते अंततः अपनी परिपूर्ण परिशुद्धि में चित्त नही रह जाता,
परिपूर्ण परिशुद्धि में अंततः निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होना ही परिस्पष्टतः रह जाता है,
'यह भी अनात्म है-यह भी अनात्म है' कहकर आत्म-भाव के स्थापित होने से सावधान किया जाता है,
क्योंकि जैसे ही आत्म-भाव स्थापित होता है वैसे ही स्वसम्मोहन निर्मित हो जाता है,
और स्वसम्मोहन में दिग्भ्रमित होना स्वाभाविक है,
जब तक इदं अहम्, इदं मम्, इदं अहम् आत्मा, इदं मम् आत्मा, इदं अयम् आत्मा का अपेक्षाकृत आरोपित दृष्टिकोण बना हुआ है तब तक दिग्भ्रम है,

परिस्पष्टतः उपस्थितिमात्र की निमित्त भर भूमिका में अहम्, मम्, अहमात्मा, ममात्मा, अयमात्मा का आरोपित दृष्टिकोण स्थापित नही है,
जब तक आत्म-भाव स्थापित है तब तक कदापि उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका स्पष्ट नही हो सकती,
इसलिए आत्म-भाव स्थापित न होने पाए इसके लिए ही 'यह भी अनात्म है-यह भी अनात्म है' कहकर सावधान होना पड़ता है,
बौद्धों में निमित्तमात्र उपस्थिति भर की नित्य-स्थिर भूमिका स्वीकार न होने से एकान्तिक अनात्मवाद का दृष्टिकोण स्थापित हो गया,
एकान्तिक अनात्मवाद का दृष्टिकोण तथ्यतः यथार्थ स्पष्टता में सामान्य आत्मवाद के दृष्टिकोण से भी अधिक बाधक है.....
_हिन्दुओं के आत्मवाद तथा बौद्धों के अनात्मवाद दोनों ही वादों के स्थापित होने से सावधान होना आवश्यक है,
न कृष्ण का आत्मवाद, न बुद्ध का अनात्मवाद.....
'आत्मवाद' तथा 'अनात्मवाद' इन दोनों अपेक्षाकृत अंतों के माध्यमिक संतुलन पर ही उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका सिद्ध है....
सबसे सीधे<सबसे निकट के अभी के वर्तमान में उपस्थित होने का निमित्त पूरा होते ही निमित्तमात्र बस उपस्थिति भर की परिस्पष्ट भूमिका स्पष्ट होती है,
नाक के ठीक आगे की आधारीय सीध से सीधे हो उत्तरोत्तर सीधे से सीधे के वर्तमान में उपस्थित होने का निमित्त पूरा करो...

26 Aug 2024 (i)

जन्माष्टमी आदि पर्व में अपने बालक को मोर-मुकुट पहनाकर किसी का duplicate डुप्लीकेट (नकली कृष्ण) मत बनाओ,
किसी का नकली डुप्लीकेट बनाकर उसकी नैसर्गिक-संदुरता को, उसकी नैसर्गिक-छटा को मत बिगाड़ो,
उसके नैसर्गिक-स्वरूप को विकृत मत करो,
उसे नंबर २ मत बनाओ,
उसे दोयम दर्जे का मत बनाओ,
किसी की नकल न करते हुए, किसी का डुप्लीकेट न बनते हुए वह जैसा भी है अपनी जगह पर असली है, ओरिजिनल है, अद्वितीय है, नंबर १ है, अतुलनीय है, अनुपम है, यूनिक है,
अतः किसी का duplicate डुप्लीकेट बनाकर अपने बालक की व्यक्तिगत् निजता का, उसके मूल व्यक्तित्व का अपमान मत करो,
उसकी original personality का अपमान मत करो,
प्रकृति का अपमान मत करो,
कुदरत का अपमान मत करो,
अपने बालक की निजता का, निजी व्यक्तित्व का सम्मान करो,
उसकी असल निजी व्यक्तिगत् भूमिका का सम्मान करो,
उसके निजी व्यक्तित्व में किसी अन्य व्यक्तित्व को अध्यारोपित कर उसे अशुद्ध मत करो, अपवित्र मत करो,
उसे मनोवैज्ञानिक-हीनता का शिकार मत बनाओ,
(जब कोई अपने बालक को मोर-मुकुट पहनाकर कृष्ण का नकली डुप्लीकेट बनाता है तो इससे वह कृष्ण की व्यक्तिगत् निजता का, गरिमा का अपमान तो करता ही है साथ ही अपने बालक की व्यक्तिगत् निजता का, गरिमा का भी अपमान करता है),
अपने बालक की व्यक्तिगत् निजता की पवित्रता की रक्षा करो,
उसे किसी का स्वरूप बनाकर उसके असल निजी ओरिजिनल स्वरूप का अपमान मत करो,
अपने बालक को किसी का नकली डुप्लीकेट बनाकर तुम उसके कोमल मन-मस्तिष्क में दीन-हीन मानसिक दासता का (गुलामी का) बीज आरोपित करते हो,
_जो भी किसी की नकल कर किसी का डुप्लीकेट बन रहा है<वह अपना भी अपमान कर रहा है, और जिसकी नकल कर जिसका डुप्लीकेट बन रहा है उसका भी अपमान कर रहा है....
तुम किसी की कितनी ही नकल कर लो
तुम उसके जैसा कभी नही बन सकते,
तुम रहोगे डुप्लीकेट ही,

तुम रहोगे दोयम दर्जे में ही,
तुम बिना किसी की नकल किए जैसे भी हो अपनी जगह पर नंबर १ हो, ओरिजिनल हो,
यही तुम्हारी निज स्वभावगत् गरिमा है,
कुदरत की तरफ से सीधे ही जो तुम्हारा होना है उसे सम्मान-पूर्वक स्वीकार करो,
किसी अन्य को स्वयं में स्थापित कर स्वयं के निजी व्यक्तित्व को विकृत मत करो,
अपनी यथा पवित्रता भंग मत करो,
डुप्लीकेट को कदापि कभी भी निभ्रान्त यथार्थतः सत्य स्पष्ट नही हो सकता.....
_किसी की नकल करते-करते तुम इतने नकली बन जाओगे कि फिर असली नही हो पाओगे,
जो किसी की नकल करता है वह अपने असल से भी हाथ धो बैठता है,
जो किसी का भी डुप्लीकेट बन जाता है
वह अपनी निजता की सहज पवित्रता को खो देता है,
जो अपनी निजता की सहज पवित्रता को खो देता है उसमें दृष्टि के संयम के लिए, दृष्टि की स्थिरता के लिए बल का आधार नही रह जाता....

26 Aug 2024(ii)

किसी ने ठीक ही कहा है झूठ के पाँव नही होते,
झूठ को सच कह देने से झूठ सच नही हो जाता झूठ 'झूठ' ही रहता है,
प्रचलित बौद्ध साहित्य के अनुसार गौतम बुद्ध के ५ हजार वर्ष बाद जब मैत्रेय बुद्ध होगा तब मनुष्य की आयु एक लाख वर्ष हो जाएगी,
क्या तुम भी ऐसा विश्वास कर सकते हो,
२८ बुद्धों में से गौतम बुद्ध ही एक ऐसा बुद्ध था जिसकी जीवन आयु ८० वर्ष की थी,
गौतम बुद्ध के अलावा अन्य सभी बुद्धों में से किसी की जीवन आयु हजारों वर्ष की थी,
किसी की जीवन आयु लाख वर्ष की थी,
और किसी-किसी की जीवन आयु तो लाख वर्ष से भी अधिक थी,
क्या तुम भी ऐसा विश्वास कर सकते हो,
सब बुद्धों में से गौतम बुद्ध की ही जीवन आयु ८० वर्ष क्यों थी,
क्योंकि गौतम बुद्ध ही मात्र ऐतिहासिक बुद्ध सिद्ध होता है अन्यों की तरह लिखी हुयी काल्पनिक कहानी भर नही......
गौतम बुद्ध का शरीरांत होने के बाद बौद्ध साहित्य में बहुत सारा झूठ लिख दिया गया है,
जातिवादी बौद्ध भिक्षुओं ने आने वाले भविष्य-बुद्ध के जन्म, जाति, कुल, समय, परिस्थिति इत्यादि के बारे में झूठ लिखा है,
प्रचलित बौद्ध साहित्य में मैत्रेय नाम के बुद्ध के बारे में जो लिखा गया है कि उसका इस जाति में जन्म होगा, इस कुल में जन्म होगा,
इस काल में जन्म होगा, इस परिस्थिति में जन्म होगा इत्यादि<यह सब झूठ है,
और इसी तरह गौतम बुद्ध से पहले के
कस्सप, ककुसंध, कोनगमन, सिखी इन ४ बुद्धों के जन्म, जाति, कुल, समय, परिस्थिति इत्यादि के बारे में भी झूठ लिखा है,
हिन्दुओं के पुराणों में भी कल्कि के नाम पर जो झूठा परिचय दिया गया है<वह भी आपत्तिजनक है, निंदनीय है,
ऐसा कल्कि अवतार कभी नही होगा,
ऐसा कल्कि अवतार झूठी काल्पनिक कहानी बनकर रह जाएगा,
यह सब बताना बहुत ही आवश्यक था,
ताकि लोग और धोखे में, और गुमराही में न रहें......
_ऐसा नही कि कोई नही आएगा,
अवश्य आएगा,
जो भी आएगा सबसे पहले वह इस झूठ को झूठा साबित करेगा,
वह कोई ऐसा अभिनेता नही कि कहानी पहले ही निर्धारित करके, फिक्स करके लिख दी गयी हो अब तो बस उसका अभिनय भर ही करना है,
जो भी आने वाला है या आ चुका है वह तुम्हारे अपेक्षित दृष्टिकोण में तुम्हारी झूठी काल्पनिक कहानी का मोहताज नही,

वह ऐसा करके दिखाएगा जिसकी कि तुम्हारे पुराण आदि ने कल्पना भी नही की,
तुम होते कौन हो कि पहले से ही तुम अपनी अपेक्षित सीमित बुद्धि से सांप्रदायिक द्वेषभाव में कुछ भी चरित्र लिख लो, और उसमें कोई तुम्हारी कठपुतली बन कर रह जाए,
बौद्धों से तुम्हारा द्वेष है, घृणा है तो तुमने लिख दिया कि बौद्धों को मारने के लिए कल्कि आएगा,
यह तुम्हारी घृणित निम्न मानसिकता का परिचय है, न कि आने वाले पुरुषविशेष का परिचय,
इस तरह के झूठ इससे पहले भी रचे गए,
पर सारे झूठ बस झूठ बनकर रह गए,
जब भी कोई पुरुषविशेष आता है तो उसके आने से पहले ही उसके संबंध में झूठा काल्पनिक चरित्र रचा हुआ रहता है,
पर हर बार झूठा चरित्र झूठा ही सिद्ध होता है,
हिन्दू अवतारों में सबसे अधिकांश मुख्य अवतार कहलाने वाले किस जाति में आए,
२४ जैन तीर्थंकर किस जाति में आए,
२४ बुद्ध किस जाति में आए,
ईसा, मूसा, मुहम्मद, नानक आदि किस जाति में आए,
उपनिषदों के रचनाकार किस जाति के थे,
प्रचलित गायत्री मंत्र का ऋषि किस जाति का था,
जाति का दावा भी हमेशा से टूटता हुआ आया है,
दावा कुछ और होता है पर होता कुछ और ही है,
अभी भी आने वाले मैत्रेय बुद्ध, तथा कल्कि के परिचय तथा जाति का दावा किया गया है<यह दावा भी पहले की तरह अवश्य ही टूट जाएगा.....
_मनुष्यों को परस्पर नाना जाति में, नाना संप्रदायों में अपेक्षित दृष्टिकोण से ग्रस्त अज्ञानी मनुष्यों ने ही बाँटा है,
प्रकृति से तो एक ही जाति है<वह है मनुष्य-जाति.......
पुरुषविशेष का जन्म देश-काल-पारिस्थितिक निमित्त से कहीं भी हो सकता है
तुम्हारे निर्धारित करने से नही,
जातिवादी, संप्रदायवादी मानसिकता से उबरो,
सभी मनुष्यों को एक ही जाति का, एक ही धर्म का स्वीकार करो,
सभी मनुष्यों की एक ही जाति है<मनुष्य-जाति,
सभी मनुष्यों के सहज स्वभाव का एक ही धर्म है<निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होना.....
अगर कोई मनुष्य अपने को मुस्लिम मानता है, ईसाई मानता है, बौद्ध मानता है, जैन मानता है, हिन्दू मानता है, सिक्ख मानता है अथवा कुछ भी मानता है तो वह अपने मूल स्वभाव से गिरा हुआ है,
फिर भी मनुष्य होने के नाते हर मनुष्य का एक-दूसरे के प्रति मनुष्यवत् व्यवहार होना चाहिए,
प्रचलित बौद्ध ग्रंथों तथा पुराणों आदि के झूठे रचे हुए मैत्रेय बुद्ध तथा कल्कि आदि के परिचय कभी भी सत्य सिद्ध नही होंगे यह सम्यग् आप्त-पुरुष की सिद्ध प्रतिज्ञा है,
सम्यग् आप्त-पुरुष का सिद्ध वचन है जो कदापि असिद्ध नही,
क्योंकि यह सिद्ध प्रतिज्ञा सिद्ध वचन अपौरुषेय ऋत्<अनुसार आप्त-प्रमाणित है|
ध्यान रहे झूठ 'झूठ' होता है,
झूठ को सच कह देने से झूठ सच नही हो जाता झूठ 'झूठ' ही रहता है,
झूठ बोलना, झूठा प्रचार करना, झूठ बोलकर दूसरों को धोखा देना, दिग्भ्रमित करना बहुत बड़ा पाप है,
मध्यकाल में प्रचलित धार्मिक ग्रंथों में बहुत ही मिलावट की गयी है,
कितना असल में है, कितना झूठ मिलाया गया है,
सूक्ष्म विवेक-दृष्टि खुलने पर ही यह स्पष्ट हो सकता है उससे पहले नही....

26 Aug 2024 (iii)

जितनी ही श्वास सूक्ष्म से सूक्ष्म होती जाती है,
अगर उस अनुपात में होश सूक्ष्म नही हुआ,
सजगता सूक्ष्म नही हुयी तो तल्लीनता आ जाएगी,
इसलिए होश की सूक्ष्मता बढ़े, सजगता की सूक्ष्मता बढ़े यह आवश्यक है,
श्वास के प्रति यथा सहज हो सजग रहने से श्वास की भी सच्चाई खुलती है,

और साथ ही श्वास के माध्यम से होश भी बढ़ता है,
श्वास की प्रकृति<श्वास का स्वरूप तुम्हारे अनुकूल संभलने के लिए पहला प्राकृतिक माध्यम है,
इसलिए साधना के आरंभ में सर्वप्रथम तुम्हें श्वास की प्रकृति के अनुसार चलना है,
प्रकृति से लड़ना नही है,
यथा सहजतापूर्वक सजग रहते हुए प्रकृति की दिशा की तरफ हो जाना है,
यथा सहज-सजग हो श्वास की प्रकृति के अनुसार चलते हुए जब श्वास यथा सहज सूक्ष्म से सूक्ष्म हो ठहर जाए तब फिर उससे सीधे यथा सहज-सजग रहते हुए चित्त की प्रकृति के अनुसार चलना है.......
क्रमशः

28 Aug 2024

ध्यान में सीधे स्थिर होकर बैठने का महत्व है,
गर्दन तथा कमर को यथा सहजतापूर्वक सीधा स्थिर रखते हुए सीधे स्थिर पद्मासन में बैठकर नाक के ठीक आगे की आधारीय सीध से सीधे हो श्वास के आभास के प्रति यथा सहजतापूर्वक सजग रहना है,
जब तक श्वास का आभास भली-भाँति पूर्णतः स्पष्ट नही हो जाता तब तक चेतना स्पष्ट नही हो सकती,
और चेतना जब तक भली-भाँति पूर्णतः स्पष्ट नही हो जाती तब तक भ्रम, संशय, अज्ञानता, दुःख, क्लेश बना ही रहता है,
चेतना की परिपूर्ण स्पष्टता में ही निमित्त की उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका स्पष्ट होती है.......
_चूँकि आभास-मात्र में ही श्वास का आभास हो रहा है,
इसलिए जब श्वास का आभास भली-भाँति पूर्णतः स्पष्ट होता है तो एक तरह से उसके आधार आभास-मात्र का तल ही स्पष्ट होता है,
आभास का आधार ज्ञानमात्र है,
ज्ञान<चेतन के चेतनमय प्रकाश से प्रकाशित होने से ही जड़ चित्त चेतनमय प्रतीत होता है,
यहीं से प्रतीत होने की (आभास की) भ्रान्ति होती है,
ज्ञानमात्र स्पष्ट होने पर प्रतीत होने की (आभास की) भ्रान्ति स्पष्ट हो जाती है,
ध्यान रहे ज्ञानमात्र की अस्पष्टता में ही गुण<धर्म से तादात्म्यता होती है,
और गुण<धर्म से तादात्म्यतावश स्वसम्मोहन में चित्त की<चेतनमय प्रतीति की भ्रान्ति उत्पन्न होती है,
इसी भ्रान्ति में मिथ्या आत्मभाव स्थापित होता है,
मिथ्या अहम् स्थापित होता है,
कर्तामूलक अहंकार स्थापित होता है,
इसी भ्रान्ति में आत्मवादी मिथ्या आत्मवाद को स्थापित करते हैं,
अगर इस भ्रान्ति से मुक्ति चाहिए तो
अक्रिय-अकृत्रिम् सहज स्थिर ज्ञानमात्र के निमित्त होना आवश्यक है......
_सबसे पहले श्वास का आभास पूर्णतः स्पष्ट हो इसकी चिंता करो,
श्वास का आभास स्पष्ट हो इसके लिए श्वास के आभास के प्रति यथा सहज रहते हुए होशपूर्वक सजग रहना है,
कम से कम एक घंटे तक लगातार हर आती-जाती श्वास के ठीक समय पर उपस्थित होना आवश्यक है,
तभी होश बढ़ेगा, सजगता बढ़ेगी,
लगातार श्वास का आना-जाना बस मालूम होता रहे,
बस सिर्फ मालूम होने में ही बने रहना है,
क्या मालूम हो रहा है, किसे मालूम हो रहा है इसके चक्कर में नही पड़ना है,
जब लगातार बस सिर्फ मालूम होना ही बना रहेगा तो अपने-आप ही होश बढ़कर पूरा हो जाएगा......
क्रमशः

30 Aug 2024 (i)

ध्यान में सीधे स्थिर होकर बैठने का महत्व है,
गर्दन तथा कमर को यथा सहजतापूर्वक सीधा स्थिर रखते हुए सीधे स्थिर पद्मासन में बैठकर नाक के ठीक आगे की आधारीय सीध से सीधे हो श्वास के आभास के प्रति यथा सहजतापूर्वक सजग रहना है,

जब तक श्वास का आभास भली-भाँति पूर्णतः स्पष्ट नही हो जाता तब तक चेतना स्पष्ट नही हो सकती,
और चेतना जब तक भली-भाँति पूर्णतः स्पष्ट नही हो जाती तब तक भ्रम, संशय, अज्ञानता, दुःख, क्लेश बना ही रहता है,
चेतना की परिपूर्ण स्पष्टता में ही निमित्त की उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका स्पष्ट होती है.......
_चूँकि आभास-मात्र में ही श्वास का आभास हो रहा है,
इसलिए जब श्वास का आभास भली-भाँति पूर्णतः स्पष्ट होता है तो एक तरह से उसके आधार आभास-मात्र का तल ही स्पष्ट होता है,
आभास का आधार ज्ञानमात्र है,
ज्ञान<चेतन के चेतनमय प्रकाश से प्रकाशित होने से ही जड़ चित्त चेतनमय प्रतीत होता है,
यहीं से प्रतीत होने की (आभास की) भ्रान्ति होती है,
ज्ञानमात्र स्पष्ट होने पर प्रतीत होने की (आभास की) भ्रान्ति स्पष्ट हो जाती है,
ध्यान रहे ज्ञानमात्र की अस्पष्टता में ही गुण<धर्म से तादात्म्यता होती है,
और गुण<धर्म से तादात्म्यतावश स्वसम्मोहन में चित्त की<चेतनमय प्रतीति की भ्रान्ति उत्पन्न होती है,
इसी भ्रान्ति में मिथ्या आत्मभाव स्थापित होता है,
मिथ्या अहम् स्थापित होता है,
कर्तामूलक अहंकार स्थापित होता है,
इसी भ्रान्ति में आत्मवादी मिथ्या आत्मवाद को स्थापित करते हैं,
अगर इस भ्रान्ति से मुक्ति चाहिए तो
अक्रिय-अकृत्रिम् सहज स्थिर ज्ञानमात्र के निमित्त होना आवश्यक है......
_सबसे पहले श्वास का आभास पूर्णतः स्पष्ट हो इसकी चिंता करो,
श्वास का आभास स्पष्ट हो इसके लिए श्वास के आभास के प्रति यथा सहज रहते हुए होशपूर्वक सजग रहना है,
कम से कम एक घंटे तक लगातार हर आती-जाती श्वास के ठीक समय पर उपस्थित होना आवश्यक है,
तभी होश बढ़ेगा, सजगता बढ़ेगी,
लगातार श्वास का आना-जाना बस मालूम होता रहे,
बस सिर्फ मालूम होने में ही बने रहना है,
क्या मालूम हो रहा है, किसे मालूम हो रहा है इसके चक्कर में नही पड़ना है,
जब लगातार बस सिर्फ मालूम होना ही बना रहेगा तो अपने-आप ही होश बढ़कर पूरा हो जाएगा......
क्रमशः

30 Aug 2024(ii)

सीधे मन पर नियंत्रण संभव नही है,
चूँकि मन दृष्टि का अनुगामी है,
इसलिए अगर दृष्टि यथा-सहज स्थिर हो जाए तो सहज ही मन पर भी नियंत्रण हो जाता है,
दृष्टि की स्थिरता के लिए एक सहज स्थिर अवलंबन का होना आवश्यक है,
दृष्टि की स्थिरता के लिए लगातार एक सीध में श्वास के ज्ञात होते रहने का अवलंबन सहज ही उपलब्ध है,
इसलिए इधर-उधर भटकने की क्या जरूरत है,
सीधे ही ठीक सामने श्वास के ज्ञात होने में दृष्टि को भली-भाँति स्थिर रखो.....
दृष्टि की स्थिरता के लिए दृष्टि का भली-भाँति संयमित होना आवश्यक है,
दोनों आँखों के ठीक माध्यमिक संतुलन के आधार से नाक के आगे ४५ अंश के कोण में दृष्टि को भली-भाँति संयम-पूर्वक स्थिर रखने का अभ्यास जारी रखो,
४५ अंश का कोण दृष्टि की स्थिरता के लिए संतुलित स्थिर ढाँचा है,
उठते-बैठते, चलते-फिरते हर समय ४५ अंश के कोण के साँचे में ही दृष्टि ढली रहे,
जब ४५ अंश के कोण के साँचे में दृष्टि पूरी तरह ढल जाती है तब दृष्टि का संयम पूरा होता है, दृष्टि की स्थिरता पूरी होती है,
जब भी उठो, बैठो, चलो-फिरो तो तुम्हारी दृष्टि नाक के आगे ठीक ४५ अंश के कोण में ही रहे,
४५ अंश का नासिकाग्र आधार ही स्थिरता के लिए माध्यमिक संतुलन का आधार है,
४५ अंश के इस प्राकृतिक ज्यामितीय संकेत से अभिप्रेरित हो दृष्टि की स्थिरता के लिए अभ्यासरत् रहो....
श्वास की असहजता तथा वासना से ही मन को चलायमान होने के लिए बल मिलता है,
(श्वास संबंधित असहजता के दबाव में, वासनात्मक दबाव में मन चंचल रहता है, अस्थिर रहता है, अनियंत्रित रहता है),

वासना उत्पन्न ही न हो इसके लिए यथा सहजता-पूर्वक सजग हो सावधान रहना आवश्यक है,
वासना के प्रति>(वासना के उत्पन्न होने के प्रति) उत्तरोत्तर यथा सहज हो होश-पूर्वक सजग रहते-रहते अंततः वासना उत्पन्न नही होती,
श्वास के प्रति^(श्वास की असहजता के प्रति) यथा सहजता में रहते-रहते अंततः श्वास की असहजता नही रह जाती है,
श्वास संबंधित असहजता का दबाव नही रह जाता है,
श्वास संबंधित असहजता के दबाव से सूक्ष्म चित्त संबंधित असहजता का दबाव है,
कर्ता-भाव से अनिमित्त सहज स्थिर>अक्रिय ज्ञानमात्र के निमित्त श्वास संबंधित दबाव पर, विचार तथा भावना संबंधित दबाव पर, वेदना-संवेदना संबंधित दबाव पर, चित्त संबंधित दबाव पर>चेतना संबंधित दबाव पर, गुणधर्म संबंधित दबाव पर सहज ही नियंत्रण रहता है......

****

01 SEP 2024

किसी भी अर्थ को किसी भी अन्य अर्थ में आरोप नही करना,
अपनी तरफ से बिना कुछ भी आरोप किए (अपनी तरफ से बिना कुछ भी मिलाए) जो जिस अर्थ में है<उसे उसी अर्थ में रहने देना,
अपनी तरफ से कुछ भी आरोप नही करना,
अपनी तरफ से कुछ भी मत मिलाना,
यह संयम, यह पवित्रता अवश्य रखना,
इस अर्थ में जब तुम्हारा संयम पूरा होगा,
पवित्रता पूरी होगी तभी निभ्रान्त यथार्थ स्पष्ट होगा,
सारा अनर्थ ही, सारी भ्रान्ति ही आरोप करने से है,
तुम अपनी तरफ से कुछ भी कहो<वह तुम्हारा आरोप है,
तुम आत्मा कहो, ब्रह्म कहो कुछ भी कहो यह तुम्हारा आरोप है,
तथ्य की तरफ से कभी कुछ भी नही कहा गया,
तथ्य यथार्थतः निभ्रान्त स्पष्ट है,
तथ्य की पारदर्शिता पूर्णतः स्पष्ट है,
तथ्य की तरफ से कोई भी भ्रान्ति नही,
तुम अपने आरोपित दृष्टिकोण से ही भ्रान्ति में हो, दिग्भ्रमित हो,
गीता-उपनिषद-वेदांत-पुराण आदि आरोपित दृष्टिकोण से सावधान रहना आवश्यक है,
चाहे एक ही बहुत हो गया कहो, चाहे सब एक है कहो, चाहे 'सब में अपने को देखो-अपने में सब को देखो'<यह कहो कुछ भी कहो यह तुम्हारे आरोपित दृष्टिकोण की कृत्रिम् भावना है न कि तथ्यतः यथार्थ,
ध्यान रहे सारा सम्मोहन ही, सारा दिग्भ्रम ही आरोपित दृष्टिकोण की कृत्रिम् भावना का है,
तथ्य की तरफ से कोई सम्मोहन नही,
तुम्हारे आरोप करते ही आरोपित दृष्टिकोण स्थापित हो जाता है,
तुम्हारे आरोप करने की क्रिया में ही प्रतिक्रियात्मक दबाव में सम्मोहन निर्मित हो जाता है,
और जहाँ सम्मोहन निर्मित हो गया तो सम्मोहन में 'यह सत्य है' की भ्रान्ति होनी स्वाभाविक है,
यद्यपि तुम्हारे आरोप करने से तथ्य में कोई अंतर नही पड़ता,
तुम्हारे आरोप करने से तथ्य का कुछ नही बिगड़ता,
तुम्हारे आरोप करने से तुम ही अपनी दृष्टि में दिग्भ्रमित होते हो,
इससे तुम्हारी ही आंतरिक पवित्रता नष्ट होती है, इससे तुम्हारा ही आंतरिक बल गिरता है,
अतः इसमें तुम्हारी ही हानि है,
अपनी तरफ से देखने से सावधान रहो,
अपनी तरफ से देखने में आरोप का होना स्वाभाविक है,
इसलिए देखना नही बल्कि बिना किसी अंतराल के सीधे ही तथ्यतः बस दिखने भर के निमित्त सजग रहो,
तथ्यतः बस दिखने भर के निमित्त कोई आरोप नही, कोई क्रिया नही, कोई प्रतिक्रिया नही, कोई सम्मोहन नही, कोई दिग्भ्रम नही,
अज्ञ मनुष्यों द्वारा (अपेक्षित दृष्टिकोण में) स्थापित की उपासना से विरत रहो,
अविद्या की उपासना से विरत रहो,
असत्य की उपासना से विरत रहो,
निभ्रान्त यथार्थ सत्य ही तुम्हारा उपास्य हो,
निभ्रान्त यथार्थ सत्य ओर ही उपासनारत् रहो,
निभ्रान्त सम्यग् यथार्थ ओर ही निभ्रान्त सम्यग् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त निष्ठा हो, श्रद्धा हो, समर्पण हो,
उदाहरण के लिए जैसे मुहम्मदी 'ला इलाह इल्लल्लाह' कहते हैं,
अर्थात् किसी अन्य की अपेक्षा में विरोध-स्वरूप अल्लाह को सिद्ध करते हैं,
अपेक्षाकृत दबाव में सिद्ध होने से यह भी अपेक्षाकृत दृष्टिकोण में ही है,
मुहम्मदियों के नजरिए में अल्लाह ला-शरीक है<अल्लाह शरीक होने से पाक है कहने में अपेक्षित अध्यारोपित दृष्टिकोण स्थापित हो जाता है,
अल्लाह ला-शरीक है कहने के बजाय अगर जो भी सही में ला-शरीक है कहा जाता तो और अच्छा होता,
ला-शरीक के मतलब से ही ला-शरीक को ला-शरीक के मतलब में कहा जाता तो और भी अच्छा होता,

क्योंकि अल्लाह कहने में फिर अपेक्षाकृत दबाव बन जाता है,
भले ही 'अल्लाह ला-शरीक है' कहना अपेक्षाकृत तुलनात्मक दृष्टिकोण में सिद्ध होता है,
फिर भी मुशरिकों के मुकाबले में इस्लाम की यह खूबसूरती है<जिसकी सराहना होनी चाहिए,
पर ध्यान रहे यह भी एक सीमा तक की ही शुद्धि है वह भी अपेक्षाकृत दृष्टिकोण के ही अंतर्गत...
दृष्टिकोण तो दृष्टिकोण ही है,
दृष्टिकोण में स्वसम्मोहनवश 'यह सत्य है' की भ्रान्ति होती ही है,
इसलिए मुहम्मदी भी दिग्भ्रमित ही हैं,
दीन-ए-इस्लाम से भी सीधा तथा सच्चा फिर अपौरुषेय अकृत्रिम् सम्यग् सनातन सद्धर्म ही है,
क्योंकि सम्यग् सद्धर्म में तो अपेक्षाकृत दृष्टिकोण ही स्थापित नही होता....
हिन्दू-मुस्लिम, आत्म-अनात्म,
ब्रह्म-शून्य, द्वैत-अद्वैत इत्यादि जो भी स्थापित है<वह अपेक्षाकृत दबाव में स्थापित है....

03 SEP 2024

_जो जैसा है उसे ठीक वैसा दिखने के निमित्त सजग रहने पर उससे भी सीधे जो है वह स्पष्ट हो जाता है,
और फिर वह जैसा है उसे ठीक वैसा ही दिखने के निमित्त सजग रहने पर उससे भी सीधे जो है वह स्पष्ट हो जाता है,
इस तरह उत्तरोत्तर सत्यता स्पष्ट होती जाती है,
जिस अनुपात में उत्तरोत्तर सत्यता स्पष्ट होती जाती है,
उसी अनुपात में उत्तरोत्तर भ्रान्ति भी भंग होती जाती है,
उत्तरोत्तर सत्यता स्पष्ट होते-होते अंततः जब
पूर्णतः यथार्थ सत्य स्पष्ट हो जाता है तब पूर्णतः समूल भ्रान्ति भंग हो जाती है,
किसी भी अर्थ में किसी भी अन्य अर्थ को मिलाकर देखने से ही भ्रान्ति उत्पन्न होती है,
इसलिए अपनी तरफ से बिना कुछ भी मिलाए सीधे ही तथ्यतः दिखने भर के निमित्त रहो,
कोई भ्रम, कोई संशय, कोई अज्ञानता नही रह जाएगी.......
_सबसे पहले श्वास जैसी प्रतीत हो रही है वह भली-भाँति स्पष्ट हो इस निमित्त से सजग रहना है,
जब श्वास की प्रतीति भली-भाँति पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है तभी उससे सीधे जो तथ्य है स्पष्ट हो जाता है......
यह जो भी प्रतीत हो रहा है भली-भाँति स्पष्ट हो इसके लिए इसके प्रति यथा सहजता में होशपूर्वक सजग रहना आवश्यक है,
परिपूर्ण स्पष्टता में कोई भ्रान्ति नही रह जाती है, कोई भी अज्ञान, कोई भी दुःख नही रह जाता है......
जिसके प्रति भी सजगता का निमित्त पूरा होता है उसका कारण स्पष्ट हो जाता है,
जब कारण स्पष्ट हो जाता है तब यह भी स्पष्ट हो जाता है कि कारण अपने कार्य से पूर्णतः भिन्न भी नही है, पूर्णतः अभिन्न भी नही है,
सत्कार्यवाद तथा असत्कार्यवाद इन दो अंतों के माध्यमिक संतुलन पर ही कार्य-कारण की सम्यग् न्यायपूर्णता सिद्ध है,
कारण के प्रति सजग होने पर भ्रम, संशय, अज्ञान, दुःख भंग हो जाता है....
_पूरे होश में होने पर विवेक भली-भाँति स्पष्ट रहता है इसलिए किसी भी दुर्घटना की, गलती की संभावना नही रह जाती,
पूरे होश में आने के लिए ही ध्यान-अभ्यास की आवश्यकता होती है...

05 SEP 2024

_प्राकृतिक दिशा<निर्देश-
प्राकृतिक संकेतार्थ दिशा<निर्देश से अभिप्रेरित हो सीधे से सीधे मार्ग में चलते रहो.......
ध्यान<दृष्टि के संतुलन के लिए स्थिरता के लिए प्राकृतिक दिशा-बोध के प्रति सहज संवेदनशील रहो......
_तुम्हारे कान दाएं-बाएं हैं,
कान की संवेदनशीलता तुम्हें दाएं-बाएं से सजग करती है ताकि तुम्हारी दृष्टि दाएं-बाएं बिखरने न पाए,
और जिससे दृष्टि सीधे सामने की ओर ही रहे,
तुम्हारी आँखें दाएं-बाएं नही हैं सीधे ही सामने की ओर हैं,
यह इस बात का प्राकृतिक संकेत है कि तुम्हें सीधे सामने की ओर ही दृष्टि रखनी है,

दाएं-बाएं नही,
तुम्हारी नाक तुम्हारी दोनों आँखों के मध्य के आधार से नीचे झुककर ४५ अंश के कोण पर है,
यह इस बात का प्राकृतिक ज्यामितीय संकेत है कि तुम्हारी दृष्टि दोनों आँखों के मध्य के आधार से नीचे की ओर झुककर ४५ अंश के कोण पर भली-भाँति संतुलन-पूर्वक अविचल स्थिर रह सके,
यह तुम्हारी दृष्टि के लिए सहज स्वाभाविक सीधा सांचा है,
इसी सांचे में अपनी दृष्टि को ढाल कर रखो,
अवश्य ही सूक्ष्म दृष्टि खुलेगी,
आँख,कान,नाक इत्यादि जो अंग जहाँ हैं
उनका वहीं होने पर ही दृष्टि के परिप्रेक्ष्य ध्यान में संतुलन बनता है, ध्यान में स्थिति होती है,
जब भी तुम किसी विषय-वस्तु को बहुत गौर से देखो तो तुम यही पाओगे कि तुम्हारी दोनों दृष्टि-धाराएं नाक के ठीक आगे के मध्य बिंदु में एक हो गयीं,
इस मध्य के बिंदु को भली-भाँति याद करके रखना,
इसी मध्य के बिंदु में जब बिखरी हुई दृष्टि का (बिखरी हुई दृष्टि-धाराओं का) पूर्ण सिमटाव होता है तभी सूक्ष्मता में अंतर्दृष्टि खुलती है,
बाहर से यथा सहजता-पूर्वक आँख बंद रखते हुए भीतर से श्वास के ज्ञात होने की सीध में आँख खोलकर रहो........
सीधे मार्ग के लिए संकेत अर्थ में जो दिशा<निर्देश प्राकृतिक है वह मनुष्य द्वारा अध्यारोपित शास्त्रों द्वारा नही हो सकता,
प्राकृतिक दिशा<निर्देश से अभिप्रेरित हो सीधे से सीधे मार्ग में चलते रहो,
न दाएं देखना है, न बाएं देखना है उत्तरोत्तर सीधे से सीधे चलते ही रहो.....

07 SEP 2024

जैसे अग्नि का गुण<धर्म है उष्णता,
जल का गुण<धर्म है शीतलता,
इस तरह मनुष्य का स्वाभाविक गुण<धर्म है ज्ञान<चेतनता,
कहीं का भी कोई भी मनुष्य क्यों न हो
सभी मनुष्यों का मूलतः सहज स्वाभाविक धर्म १ ही है,
यह दुःख की बात है कि आज राष्ट्रवाद, संप्रदायवाद, जातिवाद के कारण मनुष्य 'मनुष्य' का शत्रु बना हुआ है,
भले ही मनुष्यों में सिद्धांत को लेकर, मत को लेकर, संप्रदाय को लेकर, उपासना-पद्धति को लेकर आपसी विरोध है,
तब भी प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह मनुष्यता के नाते हर मनुष्य के साथ मनुष्यवत् व्यवहार रखे,
जिस मनुष्य के पास मनुष्यता नही है वह कहने भर के लिए ही मनुष्य है,
मनुष्य-जाति में सारा मतभेद, सारा विरोधाभास अपेक्षित दृष्टिकोण को लेकर है,

एक कहावत है<आम आदमी के पास अपना दिमाग नही होता बल्कि उसका दिमाग तैयार किया जाता है,
दार्शनिक तथा राजनेता आम लोगों का दिमाग तैयार करते हैं
(थाली का बैंगन कहीं भी लुढ़क जाता है,
साधारण जनता कब किसके प्रभाव में कहाँ लुढ़क जाए कुछ कहा नही जा सकता),
दार्शनिकों के अपेक्षित दृष्टि के अनुसार ही साधारण जनों में दृष्टिकोण स्थापित होता है,
लोकदृष्टि में प्रतिष्ठित बाइबल,कुरान,गीता,
उपनिषद,वेदांत,पुराण,आगम आदि सभी अध्यारोपित धर्मग्रंथों का अपना-अपना अपेक्षित दृष्टिकोण है,
कोई भी अपेक्षित दृष्टिकोण क्यों न हो सब में 'यह सत्य है' का अपेक्षित आग्रह होता ही है,
'यह सत्य है' का अपेक्षित आग्रह तथ्यतः सत्य शोध में आधारीय बाधा है,
सत्य का शोधार्थी अपेक्षित दृष्टिकोण स्थापित होने से सावधान रहता है,
अपेक्षित दृष्टिकोण से अनिमित्त हो सीधे ही तथ्यतः दर्शनमात्र के निमित्त रहो>ज्ञानमात्र के निमित्त रहो,
ज्ञानमात्र के निमित्त ही भ्रम,संशय,संदेह,
अज्ञान,दुःख,क्लेश से मुक्ति है,
मनुष्यों में आपस का सारा का सारा मतभेद, तथा विरोधाभास अपेक्षित दृष्टिकोण से ही है,
सहज स्वभाव में कोई मतभेद, कोई विरोधाभास नही,
सहज स्वभाव में अपेक्षाकृत तुलनात्मक दृष्टिकोण नही होने से न ही किसी से समता है न ही किसी से विषमता है, न ही किसी से एकता है न ही किसी से अनेकता है,
ध्यान रहे अध्यारोपित धर्मग्रंथों में समता की, एक की, एकता की, किसी से एक होने की बात है<वह अपेक्षाकृत अध्यारोपित दृष्टिकोण में ही है,
तथ्यतः पारदर्शिता पूर्णतः स्पष्ट है,
तथ्यतः यथार्थता में न समता का अर्थ है,
न एक का अर्थ है, न एकता का अर्थ है<अर्थात् न किसी से एक होने का अर्थ है,
सापेक्षिक अंतराल में ही सापेक्षिक दबाव में आकर तुम दूसरे अंत की सापेक्षता में
एक-अनेक, द्वैत-अद्वैत आदि कह पाते हो,
यह तुम्हारा अपना अपेक्षित मत है न कि तथ्यतः यथार्थ,
मूर्छा में तुम आदतन मिलावट कर देते हो,
मिलावट करने की तुम्हारी यह आदत बहुत ही गहरी है,
तुम जो कुछ भी कहते हो उससे पहले तुम्हारी तरफ से गहरे अचेतन में मिलावट हो चुकी होती है,
गहरे अचेतन में मूर्छा में (बेहोशी में) तल्लीनतावश अज्ञान में मिलावट होने के बाद ही तुम एक-अनेक, द्वैत-अद्वैत आदि कुछ कहने के लिए संज्ञान में आ पाते हो,
तुम पूरे होश में नही रहते हो,
तुम ९५ प्रतिशत से अधिक मूर्छा में, बेहोशी में रहते हो,
पूरे होश में आने पर ही तथ्यतः यथार्थता स्पष्ट है,
पूरे होश में आने पर कोई भ्रम, कोई संशय, कोई संदेह, कोई विचार, कोई भावना, कोई संकल्प, कोई विकल्प, कोई वृत्ति, कोई प्रवृत्ति, कोई अअज्ञान, कोई दुःख, कोई क्लेश, कोई बंधन नही रह जाता,
पूरे होश में आने के लिए ही साधना है,
उत्तरोत्तर सीधे से सीधे हो संभलने पर मूर्छा भंग होती है, होश बढ़ता है,
नाक के आगे की सहज स्वाभाविक सीध में अपनी दृष्टि को स्थिर रखो,
सर्वप्रथम श्वास के ज्ञानमात्र में सजगतापूर्वक स्थिरता का निमित्त पूरा करो....
उत्तरोत्तर चेतनता बढ़ाने के लिए (होश बढ़ाने के लिए) जगदीश्वरम् द्वारा पूर्व की देशनाओं में ध्यान-अभ्यास के लिए सार-सार्थक संकेत दिया गया है,
उससे अभिप्रेरित हो नियमित ध्यान-अभ्यास में बैठो अवश्य ही होश बढ़ेगा....
सहज स्वभाव से अभिप्रेरित हो ध्यान-अभ्यास में बैठो,
बिना ध्यान-अभ्यास में बैठे तल्लीनता भंग नही होगी,
_यहाँ सहज स्वभाव का तात्पर्य व्यक्तिगत् स्व-भाव अर्थात् प्रवृत्ति से नही है,
सहज स्वभाव क्या है<यह स्पष्ट नही होने से साधारण जनों के लिए प्रवृत्ति ही है,
साधारण जन प्रवृत्ति में जीते हैं, और प्रवृत्ति में ही मर जाते हैं,
प्रवृत्ति के रहते मरने पर फिर से प्रवृत्ति
में जन्म होता है,

मृत्यु के समय जैसी प्रवृत्ति होती है<उसी के अनुसार अगला जन्म निर्धारित होता है,
प्रवृत्ति के उत्पन्न होने पर जब भली-भाँति पूर्णतः नियंत्रण हो जाता है तब फिर अपेक्षाकृत किसी भी योनि में जन्म नही होता,
जब तक वृत्तियों का पूर्णतः सम्यग् निरोध नही हो जाता तब तक सहज स्वाभाविक स्थिति संभव नही है...

09 SEP 2024(i)

यह हुक्म मुस्लिमीन (मुसलमान) कहलाने वाले (मोहम्मदियों) के लिए है,
_ऐ मोहम्मदियों तुम्हारे लिए फैसला आ चुका.....
तुममें से अगर कोई भी अल्लाह के अर्श से^कुर्सी से मुहम्मद की कब्र को अफजल कहता है<वह अल्लाह की शान का गुस्ताख है,
लिहाजा उसके लिए जन्नत हराम कर दी गयी है,
जो कोई भी अल्लाह के नाम पर तस्वीर बनाएगा, अल्लाह के नाम पर बुत बनाएगा, अल्लाह के नाम पर अदाकार बनेगा उसके लिए जन्नत मुकम्मल हराम है,
अल्लाह को अल्लाह के ही मतलब से<मायने से लो और किसी मतलब से<मायने से न लो, और पैगंबर को पैगंबर के ही मतलब से<मायने से लो,
जो किसी मतलब को<मायने को किसी मतलब में<मायने में लेता है वह शिर्कपरस्त है,
तुममें से कोई भी शान-ए-रिसालत में पैगंबर को इतना भी मत बढ़ाओ कि तुम शिर्क ही कर बैठो,
अल्लाह यकता तन्हा है<यही उसकी पहली खूबी है,
अगर कोई अल्लाह के नाम के साथ मुहम्मद के नाम को जोड़कर रखता है तो गोया उसने शिर्क किया लिहाजा उसके लिए जन्नत सख्त हराम है,
तुममें से अगर कोई भी मुहम्मद को और बाकी सभी पैगंबरों से अफजल कहता है,
मुहम्मद को सभी पैगंबरों का सरदार कहता है, इमाम कहता है<वह बाकी सभी पैगंबरों की तौहीन करने वाला उनका गुस्ताख है,
लिहाजा उसके लिए जन्नत हराम कर दी गयी है,
तुममें से कोई भी मुहम्मद को, अली (अली इब्न तालिब) को, और किसी और को अल्लाह न कहे, दो जहाँ के आका न कहे, मौला-ए-कायनात न कहे, सैय्यद-ए-कायनात न कहे, इमाम-ए-कायनात न कहे जो कहे उसके लिए जन्नत बिल्कुल ही हराम है,
अल्लाह के गुस्ताख के लिए जन्नत को बिल्कुल ही हराम कर दिया गया है,
तुममें से अगर कोई भी अल्लाह को किसी से भी एक करके कहे<उसके लिए जन्नत हराम है,
तुममें से अगर कोई भी अल्लाह की जात में, अल्लाह की सिफात में, अल्लाह की कुदरत में, अल्लाह के हुक्म में किसी को भी एक करता है, शरीक करता है, शामिल करता है, साझा करता है बेशक वह मुशरिक है उसके लिए जन्नत मुकम्मल हराम है,
तुममें से अगर कोई किसी को भी अल्लाह की बराबरी में मानता है, किसी को भी अल्लाह से अफजल मानता है तो उसके लिए जन्नत मुकम्मल हराम है,

मुहम्मद तो बस एक पैगंबर है इससे ज्यादा नही, इससे पहले भी कई पैगंबर आए और गए, मुहम्मद भी उन्हीं में से एक आम पैगंबर है इसलिए अपनी तरफ से पैगंबरों में फर्क मत करो,
सभी पैगंबरों में से कौन किससे अफजल है इसे फैसले के दिन अल्लाह के फैसले पर छोड़ दो अल्लाह का फैसला मुकम्मल हक में है,
अगर तुममें से कोई भी हद से आगे बढ़ता है उसके लिए जन्नत हराम है,
(यह दुनिया परहेजगार मोमिनो के लिए बडा सख्त कैदखाना है,
और काफिरों के लिए मौज की जन्नत है,
सब्र के साथ फैसले के रोज का इंतजार करो, फैसले के रोज बेशक परहेजगार मोमिन फायदे में रहेगा,
जो तुम्हारी जिंदगी का हकीकी मालिक है<उसकी मर्जी में तुम अपनी मर्जी को कुर्बान करो, और सबके साथ पाक मोहब्बत व अमन के साथ रहो तभी तुम सीधे-सच्चे मासूम मोमिन हो<मुस्लिमीन हो,
अगर तुम सीधे रास्ते पर हो तो बेशक तुम्हारे ही हक में फैसला होगा),
तुम किसी भी नबी के उम्मती को किसी भी नबी से अफजल न कहना, बराबर न कहना,
तुममें से कोई भी दुनिया व आखिरात में ईसा इब्न मरियम को मुहम्मद का उम्मती हरगिज न कहना,
जो किसी का उम्मती कहकर ईसा की गुस्ताखी करे उसके लिए जन्नत हराम है,
मुहम्मद के नूर से कायनात का होना न कहो जो कहे उसके लिए जन्नत हराम है,
जो मुहम्मद को अल्लाह का नूर कहे,
और सब जगह हाजिर व नाजिर कहे उसके लिए जन्नत हराम कर दी गयी है,
जो अली को मौला कहे उस पर जन्नत हराम है,
किसी को इतना भी मत बढ़ाओ कि अगले की तौहीन हो.....
दुनिया व जन्नत में कौन सैय्यद है, कौन सैय्यदा है, कौन सरदार है, कौन सरदारनी है, कौन अफजल है इसे अल्लाह के फैसले पर छोड़ दो जो हद से आगे जाएगा उसके लिए जन्नत हराम है,
तुममें से अब से कोई भी हज के दौरान पत्थर को न चूमे, जहालत से निकलो,
तुममें से कोई भी जन्नत की तौहीन न करे,
बेशक जन्नत में कई दर्जे हैं,
अव्वल दर्जे की जन्नत पाक-साफ नुरानियत है,
बेशक तुम तुम्हारी माँ का (अम्मी का) एहतेराम करो यह तुम्हारे लिए हुक्म है,
पर यह जान लो जन्नत कोई तुम्हारे बाप की, तुम्हारी माँ की जागीर नही,
जन्नत अल्लाह की नुरानियत है, अल्लाह की तुम्हारे लिए सबसे बेहतरीन नेमत है,
उस नेमत को तुम तुम्हारे माँ या किसी के भी कदमों में बताकर अल्लाह की तौहीन मत करना, जन्नत दुनिया की तरह नही है,
जो भी ऐसा करता हैउसके लिए जन्नत सख्त हराम है,
जो हदें तुम्हारे रब की तरफ से मुकर्रर हैं उससे आगे मत बढ़ो,
तुममें से कोई भी मरियम का जन्नत में किसी के साथ निकाह होना हरगिज न माने क्योंकि मरियम तो दुनिया और जन्नत दोनों जहाँ में मुहम्मद के लिए उसकी रूहानी माँ (अम्मी) है, जन्नत में मुहम्मद के साथ मरियम का हरगिज निकाह नही,
इसलिए ऐ मोहम्मदियों शर्म करो और हद में रहो,
मरियम तो दुनिया में और जन्नत में एक परहेजगार पाकीजा खातून है,
इसलिए अगर कोई भी मरियम की पाकीजगी में गुस्ताखी करे तो उसके लिए जन्नत मुकम्मल हराम है.......
अगर तुममें से कोई भी पूरे दिलोदिमाग से सच्ची तौबा करता है तो उसकी माफी हो भी सकती है,
पर हरगिज शिर्क की माफी नही.....
_ध्यान रहे यह सब जो कुछ भी कहा गया इसकी पुष्टि दीन-ए-इस्लाम के अपेक्षित दृष्टिकोण से ही है न कि अपौरुषेय ऋत् सनातन सद्धर्म से,
अपौरुषेय ऋत्<नियम के अनुसार पूर्वजन्म, पुनर्जन्म, मोक्ष की, कर्मसिद्धांत की, कार्य-कारण के सिद्धांत की न्यायपूर्ण व्यवस्था है.....

09 SEP 2024(ii)

ज्ञानमात्र (ज्ञात भर होना) तथ्यगत् है,

दर्शनमात्र (दिखना भर होना) तथ्यगत् है, उपस्थितिमात्र (उपस्थिति भर होना) तथ्यगत् है<इससे इतर जो कुछ भी है वह आरोपित दृष्टिकोण है,
ज्ञात भर होने में<दिखने भर होने में उपस्थिति भर होना रह जाए<इसके लिए ही सम्पूर्ण धर्म-साधना है.....
_साधना का आरंभ श्वास के ज्ञात होने में उपस्थित होने से है,
श्वास के ज्ञात होने में, संवेदना के ज्ञात होने में, चित्त के, चेतना के ज्ञात होने में, गुण<धर्म के ज्ञात होने में उपस्थित होने का निमित्त पूरा होने पर परिस्पष्टतः विशुद्ध ज्ञात भर होना रह जाता है,
परिस्पष्टतः निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होना रह जाता है,
श्वास के हर आने-जाने के हर मध्य का अंतराल हर बार सीधे हो संभलने के लिए है,
ताकि हर बार आती-जाती श्वास के ठीक समय पर उपस्थित होना हो सके,
हर अंतराल में हर बार सीधे से सीधे हो संभलते रहने से मूर्छा भंग होती है,
प्राथमिक साधना में श्वास के मध्य का अंतराल होश को बढ़ाने का माध्यमिक आधार है,
चित्त के मध्य का अंतराल आंतरिक होश को बढ़ाने का आंतरिक माध्यमिक आधार है,
बाहर से, भीतर से जब परिस्पष्टतः होश परिपूर्ण होता है तब कोई भ्रम,संशय,
अज्ञान,दुःख नही रह जाता,
परिपूर्णतः परिस्पष्ट पारदर्शिता में कुछ भी छिपा हुआ नही है,
सब-कुछ की पूरी तरह से पूरी सच्चाई खुलकर स्पष्ट है......
_सबसे पहले आती-जाती श्वास के समय पर संभलकर उपस्थित होना है,
इससे भी आगे फिर एक सेकेंड के १० वें, १०० वें, १००० वें, १०००० वें,
१००००००००० वें, १०००००००००००००००० वें, १०००००००००००००००००० वें भाग में संभलकर उपस्थित होकर अपने आंतरिक होश को, स्फूर्ति को बढ़ाते जाना है,
अगर इससे भी आगे एक सेकेंड के असंख्य-असंख्य-असंख्य भाग से भी कम समय में संभलकर उपस्थित होना हो जाए तो तब कितना आंतरिक होश बढ़ सकता है, कितनी आंतरिक स्फूर्ति बढ़ सकती है यह अभी तुम्हारी कल्पना से बाहर है,
प्रकाश की गति से भी असंख्य-असंख्य-असंख्य गुणा गति से भी अधिक गति पर नियंत्रण संभव है
जिसकी कि भौतिक-वैज्ञानिक कल्पना भी नही कर सकते......
और फिर सबसे कम समय में संभलकर उपस्थित होना हो जाए तो कहना ही क्या,
तब तो फिर सुपर मैन, सुपर-सुपर मैन, सुपर गाॅड, सुपर-सुपर गाॅड की कल्पना भी फेल है,
अंतरालरहित की तो तुलना ही नही......
_उत्तरोत्तर कम से कम समय अंतराल
में संभलते-संभलते अंततः जब सबसे कम समय अंतराल में संभलना पूरा होता है तब फिर सापेक्षता में उपस्थित होने के लिए स्थान-समय का अंतराल ही नही बचता.....
_सभी पापों से उत्तरोत्तर शून्य होते-होते अंततः पूर्णतः निष्पापता के अर्थ में<शून्यता की पूर्णता ही सिद्ध है,
शून्यता की पूर्णता में ही शुद्धि पूर्ण है, पवित्रता पूर्ण है,
शून्यता की पूर्णता में
कोई भी दृष्टि, कोई भी दृष्टिकोण<कुछ भी नही बचता,
न कोई आरोप ही बचता है, न
आरोप (क्रिया) का प्रतिक्रियात्मक दबाव ही बचता है, न आरोप-कर्ता ही बचता है,
अपेक्षाकृत जो कुछ भी देखा जा सकता है, जाना जा सकता है, अनुभव किया जा सकता है कुछ भी नही बचता,
अपेक्षाकृत दृष्टा-दृश्य-दर्शन भी नही बचता,
अपेक्षाकृत ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान भी नही बचता,
अपेक्षाकृत कुछ भी नही बचता,
सावधान अपेक्षाकृत कुछ भी नही बचने के अर्थ में अपेक्षाकृत शून्यवाद का दृष्टिकोण स्थापित न होने पाए,
अपेक्षाकृत शून्यवाद का दृष्टिकोण होने से बौद्ध-जन दिग्भ्रमित हैं,
अपेक्षाकृत जो कुछ भी है<वह दबाव में होने से सहज सिद्ध नही है,
इसलिए जो कुछ भी दबाव में आरोपित है, स्थापित है उसके निषेध के लिए ही यहाँ 'कुछ भी नही होने' का अर्थ है,
बिना दबाव के<सहज सिद्ध का निषेध नही,
इसलिए अंतरालयुक्त<न ज्ञाता, न ज्ञेय, न अपेक्षाकृत ज्ञान अर्थात् अंतरालरहित<ज्ञानमात्र की पूर्णता......
अंतरालयुक्त<न दृष्टा, न दृश्य, न अपेक्षाकृत दर्शन अर्थात् अंतरालरहित<दर्शनमात्र की पूर्णता......
अब सम्यग् संकेत अर्थ में मार्ग भी सिद्ध है, लक्ष्य भी सिद्ध है,

सम्यग् संकेत पूर्ण हुआ अब शून्यवाद स्थापित नही होगा,
बुद्ध ने जो निर्वाण का संकेत दिया >
'न आना-न जाना-न ठहरना' इससे बौद्ध-जन दिग्भ्रमित हैं,
क्योंकि इसमें न मार्ग सिद्ध होता है, न लक्ष्य सिद्ध होता है,
इसलिए मार्ग की सिद्धि के लिए 'न आना, न जाना=ठहरने की पूर्णता' कहने पर ही
सम्यग् संकेत अर्थ मार्ग भी सिद्ध होता है, लक्ष्य भी सिद्ध होता है,
अब निर्वाण का निषेधात्मक दृष्टिकोण स्थापित नही होगा,
जितना ही श्वास का आना-जाना कम होता जाता है उस अनुपात में उतना ही ठहरना भी बढ़ता जाता है,
जितना ही चित्त का, चेतना का बीतना-उत्पन्न होना कम होता जाता है उस अनुपात में उतना ही ठहरना भी बढ़ता जाता है,
अंततः जब आना-जाना, बीतना-उत्पन्न होना नही रह जाता है तब अपेक्षाकृत ठहरने की प्रक्रिया भी नही रह जाती है अर्थात् ठहरना पूरा हो जाता है,
पर अपौरुषेय ऋत्<नियम के अनुसार बीज रूप में किंचित दबाव बना ही रहता है<जिसका कदापि कभी भी अभाव नही होता,
बीज दबाव में पूर्व के अनुसार सापेक्षिक संतुलन के निमित्त मोक्ष के उपरांत फिर बंधन का होना सिद्ध है,
निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होना सहज सिद्ध है,
उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका के स्पष्ट होने में सम्यग् मोक्ष की स्थिति है,
और अस्पष्टता में बंधन है.....

11 SEP 2024

अगर तुम्हें किसी की निंदा करने में रस आ रहा है तो यह तुम्हारा पतन है,
किसी की आलोचना करने से अगर तुम्हें रस आ रहा है तो यह जान लो तुम द्वेष-भाव में संचारित हो, ईर्ष्या में हो,
इसलिए द्वेषमूलक निंदात्मक दृष्टिकोण से सावधान रहो,
द्वेष-भावना में आकर, ईर्ष्या में (जलन में) किसी के इष्ट अथवा पैगंबर इत्यादि की निंदा न करें,
बिना किसी द्वेष-भावना के, बिना किसी ईर्ष्या के समालोचना करने का सबको अधिकार है,
जो जैसा है उसको वैसा कहने का सबको न्यायपूर्ण अधिकार है,
यह महत्वपूर्ण नही है कि तुम किससे द्वेष करते हो,
बल्कि महत्वपूर्ण यह है कि द्वेष से पतन होता है,
द्वेष से आंतरिक शुद्धि भंग होती है, आंतरिक पवित्रता भंग होती है,
द्वेष से आंतरिक ऊर्जा क्षीण होती है, द्वेष से
आंतरिक बल गिरता है,
इसलिए द्वेष-भावना के प्रति सजग हो सावधान रहो......
_द्वेष-भावना में ही, ईर्ष्या-भावना में ही शत्रुता का भाव उत्पन्न होता है,
वैमनस्य का भाव उत्पन्न होता है,
द्वेष-भावना में होने से ही विभिन्न सभ्यताओं के मध्य परस्पर रक्तरंजित संघर्ष बना हुआ है,
द्वेष ही नही राग भी आंतरिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है,
राग-द्वेष-मोह ही विशुद्ध करुणामय चित्त में पड़ा हुआ आवरण है,
राग-द्वेष-मोह,काम,क्रोध इत्यादि वैकृतिक आवेगों का सीधे सामना नही करना है,
क्योंकि जब तक वैकृतिक आवेगों को सहन तथा वहन करने की पर्याप्त क्षमता नही है तब तक वैकृतिक प्रबलता के आवेग में बहना स्वाभाविक है,
इसलिए तब तक वैकृतिक आवेगों का सीधे सामना नही करना है,
जब भी वैकृतिक-भाव उत्पन्न हो सीधे ही वहाँ से ध्यान हटाकर श्वास पर ले जाना है,
श्वास के प्रति यथा सहज होने पर श्वास यथा सहज होती है,
उस यथा सहज हुई श्वास का (श्वास के ज्ञान का) सहारा लेने से वैकृतिक आवेगों में वह प्रबलता नही रह जाती है जो तुम्हारे सहन तथा वहन करने की क्षमता से बाहर हो,
जब तक सिद्ध-अवस्था नही है तब तक तुम साधक हो,
अपरिपक्व साधक-अवस्था में पहले तुम अपने होश को संभालो, और होश को बढ़ाने की फिक्र करो,
श्वास के ज्ञान का अवलंबन लेकर अपने होश को, स्फूर्ति को, सहन तथा वहन करने की क्षमता को बढ़ाओ,

वैकृतिक आवेगों का सामना करने के लिए बहुत ही अधिक स्पष्ट होश की जरूरत है,
जब तुम पूरे नये स्पष्ट होश में जग जाओगे
तब फिर पतन होना असंभव है,
इतने होश में तो आना ही पड़ेगा
कि राग-द्वेष-मोह के उत्पन्न होने के प्रति ज्ञानमात्र<दर्शनमात्र के निमित्त यथा सहजता में रहते हुए सजग हो भली-भाँति संभले हुए रह सको,
और तभी राग-द्वेष-मोह के संबंध में सच्चाई खुलेगी,
राग-द्वेष-मोह एक झूठ है जिसकी सच्चाई नही खुलने से उसका अर्थ तथा प्रभाव बना हुआ है,
जब तक किसी संबंध में सच्चाई नही खुलती तभी तक उसका अर्थ, उसका प्रभाव रहता ही है,
सच्चाई से सामना होते ही झूठ बाहर निकल आता है,
बाहर निकल आते ही झूठ की पोल खुल जाती है,
झूठ की पोल खुलने से तब फिर उसका प्रभाव नही रह जाता है, आकर्षण नही रह जाता है,
अपेक्षित दृष्टिकोण के 'यह सत्य है' की भ्रान्ति से ही प्रभाव है, रस है, आकर्षण है,
ध्यान रहे यह स्वाभाविक नियम है कि जब तक तुम्हारी दृष्टि में कोई सत्य सिद्ध है तभी तक उसके प्रति तुम्हारी श्रद्धा रहती है,
असत्य सिद्ध होते ही स्वभावतः उसके प्रति तुम्हारी श्रद्धा भंग हो जाती है,
जब तक तुम्हारी किसी के प्रति श्रद्धा है, विश्वास है तभी तक उसका प्रभाव है, रस है, आकर्षण है,
विवेकवान के लिए इतना संकेत पर्याप्त है,
'यह सत्य है' की भ्रान्ति भंग होते ही सारा प्रभाव, सारा रस, सारा आकर्षण भंग हो जाता है,
सारा सम्मोहन झूठ की स्थापना से ही है,
पूर्ववत् दृष्टिकोण के अर्थ में आभास का होना ही दुःखद बंधन है,
जिस संबंध में भी यथार्थ सत्यता स्पष्ट हो जाती है उस संबंध में पूर्ववत् अर्थ नही रह जाता है<यही बंधन से मुक्ति का संकेत है,
पूर्णतः निभ्रान्त सम्यग् यथार्थ स्पष्ट हो<इस निमित्त से अभिप्रेरित रहो....

13 SEP 2024

यद्यपि नेति-नेति का संकेत महत्वपूर्ण है,
पर प्रचलित हिन्दू-धर्म में इस संकेत के अर्थ का अनर्थ हुआ है,
आत्मा अथवा ब्रह्म को सिद्ध करने के लिए नेति-नेति के अर्थ का अनर्थ हुआ है,
क्योंकि फिर आत्मा अथवा ब्रह्म यह अध्यारोप स्थापित होने से नेति-नेति नही रह गया इति हो गया, इति के अर्थ में मत स्थापित हो गया,
(अगर आत्मा अथवा ब्रह्म यह अध्यारोप न बचाते तो फिर मत की स्थापना कैसे होती,
संप्रदाय की स्थापना कैसे होती,
अगर मत की स्थापना करनी है, संप्रदाय की स्थापना करनी है तो असत्य से समझौता कर सत्य के मार्ग को तो छोड़ना ही पड़ेगा),
तुम आत्मा कहो, ब्रह्म कहो, राम कहो कुछ भी कहो यह सब तुम्हारा मत है,
किसी मत-विशेष को सिद्ध करने के लिए नेति-नेति<यह निषेधमुख निर्वचन नही है,
अपितु मत का निषेध करने के लिए नेति-नेति<इस निषेधमुख निर्वचन का संकेत किया गया है,
नेति-नेति इस वाक्य से द्वैत-अद्वैत आदि मतवादी बहुत घबराते हैं,
क्योंकि इसमें इनका अपना मत गिरने लगता है,
आत्मा,ब्रह्म,शून्य इत्यादि तुम जो कुछ भी कह सकते हो उन सबका निषेध करने के लिए ही नेति-नेति का निषेधमुख निर्वचन है,
इतना संयम हो जाए कि कोई संकल्प ही उत्पन्न न हो, विचारों पर, भावनाओं पर पूरा नियंत्रण हो तभी चित्त की शुद्धि है,
उत्तरोत्तर निषेध करते-करते अंततः जब तुम्हारी तरफ से कुछ भी कहने के लिए नही बचेगा, जब तुम अपनी तरफ से भीतर पूरी तरह खाली हो जाओगे इस अर्थ में जब तुम्हारी शुद्धि पूरी हो जाएगी, पवित्रता पूरी हो जाएगी,
तो उस पूर्ण शुद्धि में, पूर्ण पवित्रता में जो सहज है स्पष्ट हो जाएगा,
सहज सिद्धता को द्वैत-अद्वैत इत्यादि मतों की तरह अपेक्षाकृत दृष्टिकोण से सिद्ध करने की आवश्यकता नही है,

नेति-नेति<निषेधमुख निर्वचन का निमित्त पूरा होने पर सहज ही जैसा है परिस्पष्ट है,
सहज ही जैसा है निभ्रान्त परिस्पष्टता हो इस निमित्त से ही नेति-नेति का संकेत है,
अगर कोई यह कहे कि नेति-नेति कहने की आवश्यकता ही क्यों पड़ी,
तो उसके लिए सामान्यतः यह कहना है कि जन्मों-जन्मों से तुम्हारे अचेतन में आरोपित दृष्टिकोण का संस्कार संग्रहित है,
गहरी मूर्छा में, गहरे अचेतन में बीज-रूप में जो आरोपित दृष्टिकोण का संस्कार है उसके दबाव में तल्लीनतावश आरोप करने की गहरी आदत बनी हुयी है,
आरोप से सावधान करने के लिए ही नेति-नेति<यह निषेधमुख निर्वचन है,
जो कुछ भी तुम कहते हो आरोपित दृष्टिकोण के संस्कारवश ही कहते हो,
आरोप करने के प्रति सजग होते-होते आरोपित दृष्टिकोण के प्रति भी सजग हुआ जा सकता है,
जैसे किसी कांटे से सभी कांटों को निकालने के बाद अंततः उस कांटे को भी फेंक दिया जाता है,
इसी तरह संकेत अर्थ में नेति-नेति कहते-कहते जब आत्मा-ब्रह्म इत्यादि कोई भी आरोप नही बचता,
जब 'ऐसा है, वैसा है' का कोई आरोप नही बचता तब 'नेति-नेति' यह आरोप भी नही बचता,
और तभी पूरी शुद्धि है, पूरी पवित्रता है,
पूरी शुद्धि, पूरी पवित्रता में ही सहजता की पूर्णता है,
सहजता की पूर्णता में जैसा है निभ्रान्त परिस्पष्ट है,
जब तुम्हारी अपनी तरफ से कोई दृष्टि,
कोई दृष्टिकोण नही रह जाता है तब सीधे ही बिना किसी दबाव के सहज ही ठीक जैसा है<(वैसा) निभ्रान्ततः परिस्पष्ट है,
दृष्टि अर्थात् मत के रहते, दृष्टिकोण के रहते कदापि सहज परिस्पष्टता संभव नही......
_मात्र सत्य स्पष्ट हो इस निमित्त से जब तुम्हारा समर्पण पूरा होता है तब तुम्हारी अपनी तरफ से कोई दृष्टि<कोई मत नही होने से, कोई दृष्टिकोण<कोई अपेक्षित आग्रह नही होने से तब फिर तुम्हारी अपनी तरफ से नही वरन मात्र सत्य से ही मात्र सत्य स्पष्ट होता है,
ध्यान रहे मात्र सत्य की धारणा नही बनती,
'यह सत्य है' के परिप्रेक्ष्य में ही धारणा बनती है,
उदाहरण के लिए अगर कोई 'ब्रह्म सत्य है' कहता है तो 'यह सत्य है' के अपेक्षित दृष्टिकोण के सांचे में ही वह ऐसा कहता है,
जो 'ब्रह्म सत्य है' कहता है वह जगत मिथ्या है की अपेक्षा में 'ब्रह्म सत्य है' कहता है,
इसलिए उसका ब्रह्म<(कल्पना) अपेक्षाकृत दबाव में ही सिद्ध है,
अतः अपेक्षाकृत दबाव में होने से ब्रह्म की अपेक्षित धारणा बन जाती है, अपेक्षित मत
बन जाता है,
ध्यान रहे जिसकी भी अपेक्षित धारणा बनती है,
जिसका भी अपेक्षित मत बनता है वह सहज सिद्ध नही है<मात्र सत्य सिद्ध नही है,
अगर किसी को जरा भी विवेक स्पष्ट है तो उसको यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्रह्म आदि कहना सहज सिद्ध<मात्र सत्य न होकर अपेक्षाकृत दबाव में आरोपित मत है,
अपेक्षित मत वालों को अपने-अपने अपेक्षित मत को सिद्ध करने के लिए 'यह सत्य है' कहकर सत्य का ही अवलंबन लेना पड़ता है, सहारा लेना पड़ता है,
जिसे अवलंबन की आवश्यकता है, सहारे की जरूरत है वह सहज सिद्ध नही हो सकता,
आत्म-अनात्म, ब्रह्म-शून्य, द्वैत-अद्वैत आदि अपेक्षाकृत दबाव में सिद्ध होने से सहज सिद्ध नही हैं,
'यह सत्य है' से अनिमित्त मात्र सत्य में ही तुम्हारी निष्ठा हो, श्रद्धा हो, समर्पण हो,
तुम आत्म-अनात्म, ब्रह्म-शून्य, द्वैत-अद्वैत आदि कुछ भी कहो सब दबाव में अवलंबित है,
जो दबाव में अवलंबित है उसमें सहज निष्ठा,
सहज श्रद्धा, सहज समर्पण संभव नही है,
बल्कि जबरन दबाव में ही निष्ठा, जबरन दबाव में ही श्रद्धा, जबरन दबाव में ही समर्पण बनाना होता है,
इसलिए जो द्वैत-अद्वैत आदि अपेक्षित मत का प्रचार करते हैं वे मताग्रही होकर
दबाव-पूर्वक प्रचार करते हैं,
दबाव देकर जबरन (बलात्) दूसरे के मत को परिवर्तित करते हैं,
जो एक अपेक्षित मत से दूसरे अपेक्षित मत में जाते हैं वे भी दबाव में आकर मताग्रह-पूर्वक मत प्रचार में लग जाते हैं,

ध्यान रहे जो दबाव में अवलंबित नही है सहज सिद्ध है उसमें ही बिना किसी दबाव के सहज ही निष्ठा, सहज ही श्रद्धा, सहज ही समर्पण होता है......
यहाँ किसी भी मत के लिए द्वेषात्मक दृष्टिकोण नही है,
तुम्हारा विवेक स्पष्ट हो,
अपेक्षित मतों से तुम्हारा मोह भंग हो, तुम्हारा सम्मोहन भंग हो, तुम्हारा दिग्भ्रम भंग हो,
तथ्यतः यथार्थ स्पष्टता के निमित्त मार्ग स्पष्ट हो इसलिए अपेक्षित मतों का उदाहरण देकर तुम्हें अपेक्षित दृष्टिकोण से सावधान किया गया है,
'यह सत्य है' की भ्रान्ति भंग होते ही
यथार्थतः मात्र सत्य स्पष्ट हो जाता है,
तुम्हारी श्रद्धा स्वभाव से ही मात्र सत्य में है,
पर 'यह सत्य है' के अपेक्षित दृष्टिकोण में होने से यथार्थतः मात्र सत्य परिस्पष्ट नही है,
यह तुम्हारा दुर्भाग्य है कि अपेक्षित दृष्टिकोण के प्रति जो तुम्हारा मोह बना हुआ है इससे तुम मुक्त नही होना चाहते,
पर ध्यान रहे कारागृह सोने का ही क्यों न हो पर वह है कारागृह ही......

_हजारों वर्षों से जो अपेक्षित मतों के झूठ चल रहे हैं लोक-हित में उनका पर्दाफ़ाश होना जरूरी है अन्यथा यह दिग्भ्रम, यह गुमराही बनी ही रहेगी,
अब सब-कुछ सच-सच कहने का समय आ गया है, हर झूठ का पर्दाफ़ाश होगा,
महिमामय पुरुष के लिए आकाश में चिन्ह प्रकट होगा,
पूर्व से एक प्रकाश उठेगा जो देखते-देखते पूरे विश्व में फैल जाएगा,
पूरा विश्व प्रकाशित हो जाएगा,
अंधकार का साम्राज्य समाप्त हो जाएगा,
पूरे विश्व में सद्धर्म का अनुशासन स्थापित हो जाएगा.......

15 SEP 2024

जो भी निर्देश होता है उसे भली-भाँति ठीक-ठीक तात्पर्य से समझना बहुत ही आवश्यक है,
ठीक-ठीक तात्पर्य से भली-भाँति समझकर ही तब व्यवहारतः आचरण में उतारना है,
उपदेशों को पूर्वाग्रह से मुक्त हो विवेकपूर्वक बार-बार पढ़ो, और सही-सही तात्पर्य से समझो,
अगर कोई भी शंका हो तो यहाँ सम्यग् सत्संग सभा में आ सकते हो,
यहाँ आने पर निराशा नही होगी अवश्य ही समाधान होगा,
अभी यहाँ प्रत्यक्ष विराजमान सम्यग् आप्त-पुरुष द्वारा वाणी के माध्यम से हर संशय का, हर संदेह का भली-भाँति निराकरण होता है,
यहाँ आकर सविनय निवेदनपूर्वक ठीक-ठीक समाधान हेतु कोई भी शंका रख सकते हो,
जो खुलासा, जो समाधान यहाँ सम्यग् आप्त-पुरुष के प्रत्यक्ष सानिध्य में हो सकता है वह लिखित उपदेश से नही हो सकता,
लिखित उपदेश की एक सीमा है,
हर बात का पूरा खुलासा, पूरा समाधान लिखित उपदेश से नही हो सकता,
कुछ न कुछ कमी रह जाती ही है,
अभी यहाँ जनपद देहरादून में रायवाला के वन-क्षेत्र में उपदेश होता है,
यह दुर्लभ अवसर गंवाना नही चाहिए,
कुछ ही समय बाद फिर यहाँ से सम्यग् उपदेष्टा का उत्तर-प्रदेश के लिए प्रस्थान होगा......
आज १५ सितंबर रविवार का दिन है,
आज सम्यग् सत्संग सभा के लिए प्रस्थान होगा, फिर कभी फिर लिखित उपदेश होगा....
तुम्हारा बहुत-बहुत भला हो,
तुम्हारा बहुत-बहुत मंगल हो.....
_केन्द्र से ही केन्द्र में वर्तुल के हर कोण की सच्चाई स्पष्ट है,
इसलिए सीधे केन्द्र से ही दिखने के निमित्त रहो,
जब तुम देखने वाले होते हो तब तुम वर्तुल में होते हो, वर्तुल के एक कोण पर (एक कोने पर) होते हो,
जब तुम दिखने भर में निमित्त भर होते हो तब तुम वर्तुल में नही होते हो,

क्योंकि वर्तुल में तुम तभी होते हो जब तुम दृष्टा होते हो,
और जब तुम दृष्टा नही होते हो तब तुम्हारी दर्शनमात्र के निमित्त बस उपस्थिति भर की भूमिका होती है,
दर्शनमात्र ही दृष्टा-दृश्य के सापेक्षिक वर्तुल का केन्द्र है,
इसलिए दृष्टा-भाव से अनिमित्त दर्शनमात्र के निमित्त होने पर ही दृष्टा-दृश्य के आर-पार की निभ्रान्त सत्यता स्पष्ट है,
दर्शनमात्र के केन्द्र से ही दर्शनमात्र के केन्द्र में इस सम्पूर्ण सापेक्षिक वर्तुल की निभ्रान्ततः पूरी सत्यता स्पष्ट है,
वर्तुल के हर कोण की निभ्रान्ततः पूरी सत्यता स्पष्ट है....

17 SEP 2024

प्रतिदिन सीधे स्थिर आसन में ध्यान-अभ्यास जारी रहे,
प्रतिदिन घुटने टेक कर मुँह के बल गिरते हुए प्रार्थना भी जारी रहे,
विशेषकर उपासक के लिए प्रार्थना बहुत ही आवश्यक है,
जो किसी से संभव नही वह सम्यग् यथार्थनिष्ठ प्रार्थना से संभव है,
लोक-प्रचलित अध्यारोपित उपासना पद्धतियों से अनिमित्त हो सम्यग्
यथार्थनिष्ठा में रहो,
सम्यग् यथार्थनिष्ठा में ही नैष्ठिकता की पूर्ण शुद्धि है,
पूर्ण नैष्ठिक-शुद्धता पर ही पूर्ण आंतरिक शुद्धि निर्भर है,
इसलिए निष्ठा संबंधी शुद्धि होनी आवश्यक है,
बिना किसी तुलनात्मक अंतराल के सीधे ही जो जैसा है ठीक वैसा का वैसा ही भली-भाँति स्पष्ट हो इस निमित्त से यथा सहज हो यथा सजग रहना है,
अपनी तरफ से बिना कुछ भी मिलाए,
बिना कुछ भी आरोपित किए, बिना किसी आरोप के<बिना किसी अपेक्षाकृत तुलनात्मक अंतराल के ठीक-ठीक जैसा है<वैसा ही स्पष्ट हो इस निमित्त से जो निष्ठा होती है सम्यग् यथार्थनिष्ठा होती है,
सम्यग् यथार्थनिष्ठा में सम्यग् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त सम्यग् यथार्थ ओर ही समर्पण होता है,
सम्यग् यथार्थनिष्ठा में ही ध्यान तथा प्रार्थना जारी रहे,
(सामान्य जनों के लिए सम्यग् यथार्थनिष्ठा तो बहुत दूर की बात है,
उनके लिए तो ईश्वर का आदर्श ही पर्याप्त है,
पर काश प्रार्थना के लिए उनके लिए ऐसा ईश्वर होता जो किसी से एक नही, जिसका कोई अंश नही, जिसका कोई अवतार नही,
जिसकी कोई नकल नही,
जिसका कोई डुप्लीकेट नही,
जिसके कोई स्वरूप में नही, जिसके कोई समानता में नही, जिसके कोई एकता में नही, जिसके कोई महिमा में नही, जिसके कोई गरिमा में नही, जिसके कोई नाम में नही, जिसकी कोई निंदा नही, जिसका कोई विरोध नही, जिसकी कोई कमी नही कमी ढकने के लिए लीला आदि का बहाना नही.....
पर दुर्भाग्य की बात है कि अध्यारोपित धर्मग्रंथों में ऐसा ईश्वर नही है).......
_जब तुम्हें अपनी उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका स्पष्ट हो जाएगी तब तुम्हें निरपेक्षतः उपस्थिति भर की आधारीय भूमिका में सम्यग् ईश्वर का संकेत भी स्पष्ट हो जाएगा,
सम्यग् ईश्वर का संकेत स्पष्ट होने पर तब तुम अपेक्षित निरीश्वरवादी>(नास्तिक) नही हो पाओगे,
निरपेक्षतः अनिमित्त उपस्थितिमात्र की आधारीय भूमिका के अनुसार ही 'निमित्त' की उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका है (पूर्ण अंतरालरहित उपस्थितिमात्र की पूर्ण अपौरुषेय आधारीय भूमिका के अनुसार ही पुरुष की अर्थात् निमित्त की उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका है),
ध्यान रहे 'निमित्त' की उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका ज्ञानमात्र के निमित्त निर्भरता में है,
पर पूर्ण अंतरालरहित उपस्थितिमात्र की पूर्ण अपौरुषेय आधारीय भूमिका निरपेक्षतः अनिमित्त होने से निर्भरता में नही है.....
_सम्यग् यथार्थनिष्ठा से इतर नही होना है,
क्योंकि सम्यग् यथार्थनिष्ठा से इतर होने पर अपेक्षाकृत दबाव में गिरना स्वाभाविक है,
अपेक्षाकृत दबाव में अध्यारोपित धर्मग्रंथों (गीता-उपनिषद-पुराण आदि) की अपेक्षाकृत अध्यारोपित निष्ठा से सावधान रहना है,

सम्यग् यथार्थनिष्ठा में किसी भी अर्थ को किसी भी अन्य अर्थ में आरोपित कर देखने का आरोपित दृष्टिकोण नही होता है,
सम्यग् यथार्थनिष्ठा में अपेक्षाकृत आग्रह में पूर्व निर्धारित दृष्टिकोण नही होता है,
सम्यग् यथार्थनिष्ठा पूर्णतः परिशुद्‌घ, पूर्णतः पवित्र अव्यभिचारिणी निष्ठा है,
सम्यग् यथार्थनिष्ठा में अपेक्षाकृत आरोपित दृष्टिकोण नही होने से जरा सी भी मिलावट नही है, जरा सी भी अशुद्धि नही है, जरा सी भी अपवित्रता नही है, जरा सी भी मलिनता नही है,
सम्यग् यथार्थनिष्ठ बिना किसी आरोपित दृष्टिकोण के सीधे ही तथ्यतः दर्शनमात्र के निमित्त रहता है,
जो बल सम्यग् यथार्थनिष्ठा में है वह बल अध्यारोपित (अशुद्ध, अपवित्र व्यभिचारिणी) निष्ठा में कहाँ हो सकता है,
पूर्ण शुद्धि का, पूर्ण पवित्रता का बल होने से सम्यग् यथार्थनिष्ठ सभी तरह की अध्यारोपित निष्ठा वालों पर प्रबल रहता है,
अध्यारोपित धर्मग्रंथों की अशुद्ध, अपवित्र व्यभिचारिणी निष्ठा से सावधान होना आवश्यक है,
जो जिस स्थान-समय में जिस अर्थ में है<उसका उसी स्थान-समय में उसी अर्थ में होने से ही यथा-शुद्धि है,
किसी भी संबंध में उसकी यथा स्थिति में ही उसकी यथा सत्यता स्पष्ट है,
उदाहरण के लिए किसी से एक होने की बात करना, सब एक है की बात करना, स्वयं को सब में-सब को स्वयं में देखने की बात करना इत्यादि आरोपित दृष्टिकोण का<मिथ्यादृष्टि का अध्यारोपित धर्मग्रंथों में पर्याप्त
महिमा-मंडन है,
अध्यारोपित धर्मग्रंथों के आरोपित दृष्टिकोण से सावधान रहना आवश्यक है,
अशुद्ध, अपवित्र व्यभिचारिणी निष्ठा से सावधान रहना आवश्यक है,
तथ्य को तथ्य ही रहने दो,
स्वयं को सब में-सब को स्वयं में देखने की आरोपित दृष्टिकोण की भावना से तथ्य की तथ्यता में कोई अंतर नही पड़ता,
पहली बात तो स्वयं कहना,
सब कहना<यह आरोप है, आरोपित दृष्टिकोण है,
फिर दूसरी बात स्वयं को सब में-सब को स्वयं में कहने से पहले से ही जो आरोप है उसमें और आरोप हो जाता है,
पहले से ही जो मिलावट है उसमें और मिलावट हो जाती है,
तथ्य की तरफ से इस तरह का कोई भी आरोप नही है,
सारे ही आरोप तुम्हारे अध्यारोपित धर्मग्रंथों की तरफ से हैं,
पहली बात तो तुम्हारा स्वयं कहना, सब कहना यह तुम्हारा आरोपित दृष्टिकोण है न कि तथ्यगत्.....
फिर भी अगर तुम स्वयं की बात करते हो, सब की बात करते हो तो 'स्वयं' को स्वयं के अर्थ में रहने दो,
'सब' को जिस अर्थ में है उसी अर्थ में रहने दो,
किसी भी अर्थ को किसी भी अन्य अर्थ में देखने से सावधान रहो,
जो जिस अर्थ में है<उसे उसी अर्थ में रहने दो,
अन्य अर्थ को अन्य अर्थ में देखना ही आरोप है, मिलावट है, अशुद्धि है, अपवित्रता है,
ध्यान रहे आरोप के रहते, मिलावट के रहते,
अशुद्धि के रहते, अपवित्रता के रहते कदापि तथ्यतः यथार्थ निभ्रान्त स्पष्टता संभव नही, स्वयं को सब में-सब को स्वयं में देखना तथ्य की तरफ से नही है बल्कि आरोपकर्ता की तरफ से आरोपित दृष्टिकोण है,
इस आरोपित दृष्टिकोण में अपेक्षित आत्म-भाव और प्रबलता से स्थापित होता है,
आत्म-भाव स्थापित होने पर आत्म-भाव भावना का स्वसम्मोहन निर्मित होना स्वाभाविक है,
यहाँ पर स्वयं को सब में-सब को स्वयं में देखने संबंधी आरोपित दृष्टिकोण का उदाहरण तुम्हें आरोपित दृष्टिकोण से सावधान करने के उद्देश्य से दिया गया है,
इस तरह अध्यारोपित धर्मग्रंथों में आरोपित दृष्टिकोण के और भी कई उदाहरण हैं जो यहाँ नही दिए गये हैं उनसे भी सावधान रहना आवश्यक है,
यहाँ पर गीता-उपनिषद-वेदांत आदि के संबंध में द्वेषमूलक निंदात्मक दृष्टिकोण नही है,
तुम्हें अपेक्षाकृत अध्यारोपित दृष्टिकोण से सावधान करने के लिए ही इनका उदाहरण दिया गया है,
तुम्हारा सम्यग् विवेक स्पष्ट हो,
आरोपित दृष्टिकोण की भ्रान्ति भंग हो,
तथ्यतः निभ्रान्त स्पष्टता हो,
तुम्हारा सम्यग् अर्थ में मंगल हो इस उद्देश्य से ही उपरोक्त उदाहरण दिए गए हैं,
लोकदृष्टि में प्रतिष्ठित अध्यारोपित धर्मग्रंथों का सम्मोहन भंग होना आवश्यक है,

तभी पूर्वाग्रह भंग होगा,
और तभी तुम तथ्यतः दर्शनमात्र के निमित्त तैयार हो सकते हो,
अन्यथा अपेक्षाकृत दबाव में अध्यारोपित धर्मग्रंथों के अपेक्षाकृत अध्यारोपित दृष्टिकोण के रहते कदापि तथ्यतः दर्शनमात्र के निमित्त तैयारी संभव नही,
सीधे ही दर्शनमात्र के निमित्त होने में सबसे बड़ी बाधा स्थापित आत्म-भाव है,
आत्म-भाव स्थापित होने से सावधान होना बहुत ही आवश्यक है,
गीता-उपनिषद-वेदांत आदि अध्यारोपित धर्मग्रंथ आत्म-भाव को प्रबलता से स्थापित कर आत्म-भाव भावना का<भावनात्मक सम्मोहन ही निर्मित करते हैं,
आरोपित दृष्टिकोण में<(कृत्रिमतः मिथ्यादृष्टि में) भावित होने पर स्वसम्मोहनवश 'यह सत्य है' की दिग्भ्रान्ति होना स्वाभाविक है,
सामान्यतः यह सम्पूर्ण लोक 'यह सत्य है' की दिग्भ्रान्ति में ही दुःख को प्राप्त है,
स्थापित हुआ यह आत्म-भाव ही दुःख का अपेक्षित आधार है,
जब तक यह आधार नही गिरता तब तक कदापि दुःख से मुक्ति नही,
अध्यारोपित धर्मग्रंथों द्वारा स्थापित 'आत्म-भाव' दुःख से मुक्ति के मार्ग में आधारीय बाधा है,
आत्म-भाव का संस्कार अज्ञानी जनों के अचेतन मन में बहुत ही गहरे से प्रविष्ट है,
आत्म-भाव ही कर्तामूलक अहंकार का आधार है,
आत्म-भाव के निमित्त ही कर्तामूलक अहंकार उत्पन्न होता है,
आत्म-भाव से अनिमित्त हो<ज्ञाता-भाव से अनिमित्त हो अक्रियतः स्थिर ज्ञानमात्र के निमित्त होने से कर्ता उत्पन्न नही होता,
कर्तामूलक अहंकार उत्पन्न नही होता,
स्थापित आत्म-भाव से अनिमित्त ही निमित्तमात्र बस उपस्थिति भर की भूमिका सहज सिद्ध है,
निमित्त की उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका में जरा भी आत्म-भाव स्थापित नही है, जरा भी आरोप करने वाला आरोपकर्ता स्थापित नही है,
आरोप करने वाला यह आरोपकर्ता (जो तुम बने हुए हो) तथ्यतः यथार्थ निभ्रान्त स्पष्टता में सबसे बड़ी बाधा है, सबसे बड़ा विघ्न है,
जब तुम्हारी बस उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका होती है तब न आरोपकर्ता होता है, न आरोप होता है,
बस उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका का स्पष्ट होना ही अपने-आप में मुक्ति है,
निमित्तमात्र बस उपस्थिति भर की भूमिका स्पष्ट होने पर सम्पूर्ण भ्रम,संशय,अज्ञान,दुःख से सहज ही मुक्ति है,
ज्ञानमात्र के निमित्त ही 'निमित्त' की उपस्थिति भर की भूमिका है,
इसलिए ज्ञाता-भाव से अनिमित्त ज्ञानमात्र के निमित्त रहो......
सीधे ही तथ्यतः दिखने भर में निमित्त रहो,
अपनी तरफ से आरोप करने से सावधान रहो,
तथ्य में अपनी तरफ से आरोप न करना, मिलावट न करना अव्यभिचारिणी निष्ठा में है,
जैसे ही तुम अपनी तरफ से तथ्य में आरोप करते हो, अपनी तरफ से तथ्य में मिलावट करते हो इससे तथ्य की तथ्यता में तो कोई अंतर नही पड़ता पर तुम्हारी तरफ से आरोप करने में तुम्हारी निष्ठा अपवित्र हो जाती है, तुम्हारा मन अपवित्र हो जाता है, तुम्हारी दृष्टि अपवित्र हो जाती है,
इसलिए तुम्हें उससे शुद्ध होने के लिए, पवित्र होने के लिए ज्ञानमात्र के निमित्त ध्यान-स्नान करना आवश्यक है,
(जैसे वासना आदि निमित्त से अशुद्ध होने पर वस्त्र सहित पूर्ण स्नान कर शुद्ध होना आवश्यक है,
इसी तरह अध्यारोपित दृष्टिकोण से अशुद्ध होने पर ज्ञानमात्र के निमित्त ध्यान-स्नान कर शुद्ध होना आवश्यक है),
अध्यारोपित दृष्टिकोण आंतरिक व्यभिचार है<इसके रहते आंतरिक पवित्रता कदापि संभव नही.....
_तथ्यतः पारदर्शिता पूर्णतः स्पष्ट है,
तथ्य से कोई दिग्भ्रम नही,
तुम अपने आरोपित दृष्टिकोण से अपनी ही दृष्टि में दिग्भ्रमित हो,
आरोपित दृष्टिकोण स्थापित होने पर 'यह सत्य है' की भ्रान्ति होना स्वाभाविक है,
आरोपित दृष्टिकोण भंग होते ही 'यह सत्य है' की भ्रान्ति भंग हो जाती है,
जैसा है<(वैसा) निभ्रान्त स्पष्ट हो जाता है......
पूर्व से तुलना किए बिना जो जिस अर्थ में है उसी अर्थ में स्पष्ट होते ही उससे सीधे जो है<उसकी सीध में दृष्टि हो जाती है,
इस तरह उत्तरोत्तर सीधे से सीधे दृष्टि का निमित्त पूरा होने पर अंततः अंतरालरहित दर्शनमात्र स्पष्ट हो जाता है,

अंतरालरहित दर्शनमात्र में ही द्रष्टा-दृश्य के आर-पार की सत्यता स्पष्ट है.....
सारी भ्रान्ति ही द्रष्टा-दृश्य के सापेक्षिक आभास से है,
दर्शनमात्र के निमित्त ही द्रष्टा-दृश्य के सापेक्षिक आभास की भ्रान्ति भंग है......
_दृष्टि में इतना संयम हो जाए कि अंततः दृष्टि भी न रह जाए बस दर्शनमात्र ही रह जाए,
ध्यान से बुद्धि की गहराई खुलती है तो प्रार्थना से हृदय की गहराई खुलती है,
बुद्धि तथा हृदय दोनों का संतुलनपूर्वक विकास हो इसके लिए संतुलनपूर्वक ध्यान तथा प्रार्थना दोनों का होना आवश्यक है,
अकेले बुद्धि के खुलने से, अकेले हृदय के खुलने से सामान्यतः जीवन में संतुलन नही बनेगा,
सजगतापूर्वक होशपूर्वक 'ध्यानपूर्ण' होने के साथ श्रद्धा-प्रेमपूर्वक समर्पणपूर्वक 'प्रार्थनापूर्ण' होना आवश्यक है,
प्रतिदिन का ध्यान-अभ्यास नही छोड़ना है,
प्रतिदिन का ध्यान-अभ्यास बहुत ही आवश्यक है,
भले ही काम छूट जाए, सगे-संबंधी छूट जाएं पर कदापि ध्यान-अभ्यास न छूटने पाए,
भले ही भोजन-पानी छूट जाए पर कदापि ध्यान-अभ्यास न छूटने पाए,
जीवन में ध्यान-अभ्यास को महत्व दो,
प्रतिदिन कम से कम दो बार कम से कम एक घंटे तक बिना हिले-डुले बिना किसी अंतर के हर श्वास के बस ज्ञात भर होने में उपस्थित होते रहना है,
इस तरह उत्तरोत्तर बिना किसी अंतराल के लगातार ज्ञात होते रहने से ज्ञान का>(ज्ञानमात्र का) ऐसा प्रबल करंट बन जाएगा कि पूरी मूर्छा ही भंग हो जाएगी,
पूरे के पूरे बिल्कुल नये-ताजे-जीवंत होश में आ जाओगे,
ऐसी स्थिति में कोई भ्रम,संशय,अज्ञान,दुःख नही रह जाता....

19 SEP 2024(i)

_इस्लाम, ईसाइयत, बौद्ध, जैन, वैष्णव, शैव, शाक्त आदि सब कृत्रिमतः भावनाओं के अंतर्गत हैं,
कृत्रिमतः हर भावना का अपना अपेक्षित दृष्टिकोण होता है,
अतः कृत्रिमतः किसी भी भावना में भावित होने पर स्वसम्मोहनवश 'यह सत्य है' की दिग्भ्रान्ति होना स्वाभाविक है,
जो कोई भी 'यह सत्य है' की घोषणा करता है<यह उसका अपना अपेक्षित दृष्टिकोण है न कि तथ्यतः सत्य......
_ध्यान रहे कृत्रिमतः कोई भी भावना तथ्यतः सत्य नही है......
_विभिन्न सूत्रकारों तथा भाष्यकारों ने भाँति-भाँति की नाना कृत्रिम भावनाओं की लोकदृष्टि में स्थापना की है,
कृत्रिम भावना से ही लोकदृष्टि का पोषण होता है, लोकदृष्टि का सम्मोहन प्रबल होता है,
जो लोकदृष्टि से अनिमित्त तथ्यतः सत्य के मार्ग में है वही लोकदृष्टि के इस प्रबल भारी सम्मोहन से मुक्त है......
_मूर्ख जन आजीवन-मृत्युपर्यंत आत्म-अनात्म, द्वैत-अद्वैत आदि सापेक्षिक प्रपंच के जटिल जाल में उलझे रहते हैं<यह उनका दुःखद दुर्भाग्य है कि उन्हें तथ्यतः सत्य का मार्ग स्पष्ट नही हो पाता,
जीवन रहते अगर तथ्यतः सत्य का मार्ग स्पष्ट नही हुआ तो जीवन की सबसे बड़ी हानि है......
_जन्मों-जन्मों तक नाना भावनीय भावनाओं का निमित्त पूरा होने पर जब भावित होने के लिए कोई भी भावनीय भावना शेष नही रह जाती तब सहज ही तथ्यतः सत्य का मार्ग स्पष्ट हो जाता है......
लोक में नाना कृत्रिम भावनाओं का जाल है,
तथ्यतः सत्य का मार्ग स्पष्ट होना लोक में बहुत ही दुर्लभ है,
धन्य है जिसे तथ्यतः सत्य का मार्ग स्पष्ट है.....
और जिसे तथ्यतः सत्य का मार्ग स्पष्ट नही है उसके लिए सहानुभूति है, दया है...

19 SEP 2024(ii)

तुम्हारा होना बस निमित्तमात्र उपस्थित भर होना है<यही तुम्हारी सच्चाई है, यही तुम्हारी वास्तविकता है, असलियत है,
जब कोई भी अध्यारोप नही रह जाता है तब विशुद्धतः बस ज्ञानमात्र ही रह जाता है,
ज्ञानमात्र में तुम ज्ञाता नही होते हो,
ज्ञानमात्र में तुम्हारी भूमिका निमित्तमात्र बस उपस्थिति भर की होती है,
(सापेक्षिक दबाव स्वरूप अंतराल में ही तुम ज्ञाता हो पाते हो अंतरालरहित ज्ञानमात्र में नही),

ज्ञानमात्र की पारदर्शिता परिपूर्णतः परिस्पष्ट है,
और ध्यान रहे परिपूर्णतः परिस्पष्ट पारदर्शिता में जरा भी भ्रम, संशय, अज्ञान, दुःख संभव नही है,
अतः अपेक्षित दृष्टिकोण से अनिमित्त ज्ञानमात्र के निमित्त अगर तुम्हें तुम्हारी उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका स्पष्ट हो जाती है तो फिर कोई भ्रम, कोई संशय, कोई अज्ञानता, कोई दुःख नही रह जाता है,
क्यों, किसलिए आदि अपेक्षित प्रश्नों का अर्थ नही रह जाता है,
जब तुम्हें तुम्हारी उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका स्पष्ट होती है तब तुम्हें पूर्ण अंतरालरहित उपस्थिति भर की अनिमित्त आधारीय भूमिका का संकेत भी स्पष्ट होता है,
अंतरालरहित उपस्थिति भर की अनिमित्त आधारीय भूमिका में सम्यग् ईश्वर (सही अर्थ में ईश्वर) का संकेत स्पष्ट होने से तुम्हारे लिए फिर नास्तिक होना असंभव है......
पूर्णतः अंतरालरहित उपस्थिति भर की अनिमित्त भूमिका के अनुसार ही 'निमित्त' की उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका है, ध्यान रहे पूर्णतः अंतरालरहित उपस्थिति भर की आधारीय भूमिका पूर्णतः निरपेक्ष होने से पूर्णतः अनिमित्त है,
पर 'निमित्त' की उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका ज्ञानमात्र के निमित्त है,
ज्ञानमात्र के निमित्त ही 'निमित्त' की उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका सिद्ध है......
व्यवहारतः तुम्हारी उपस्थिति स्थान-समय के अंतराल में ही संभव है अंतरालरहित में नही,
इसलिए तुम्हें हर श्वास-प्रश्वास के ठीक स्थान-समय पर उपस्थित होने का निमित्त पूरा करना आवश्यक है,
फिर चित्त के बीतने-उत्पन्न होने के ठीक स्थान-समय पर उपस्थित होने का निमित्त पूरा करना आवश्यक है,
उत्तरोत्तर सूक्ष्म से सूक्ष्म स्थान-समय के अंतराल में उपस्थित होते रहने का निमित्त पूरा होने पर तब अंततः उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका स्पष्ट होती है.....

21 SEP 2024(i)

क्या यह दुनिया खत्म होने जा रही है,
बदले की आग में इजराइल जिस तरह से युद्ध-तकनीकी में आगे बढ़ रहा है,
हाल ही में जो पेजर धमाके हुए हैं, मोबाइल-सेट>वाॅकी-टाॅकी पर धमाके हुए हैं<यह तो बस शुरुआत है,
अब तो रेडियो-सेट, मोबाइल-सेट आदि से सावधान रहने की भी आवश्यकता है,
ए.आई. में चीन अंदर ही अंदर भारत से बहुत ही आगे बढ़ चुका है,
कट्टर संप्रदायवाद से त्रस्त भारत उसके मुकाबले बहुत ही पीछे हो चुका है,
भारत को हिंदू-मुस्लिम होने से ही फुर्सत नही है वह क्या विकास करेगा,
भारत के लोकप्रिय जनप्रतिनिधि ही भारत के भविष्य के लिए घातक सिद्ध हैं,
कोई धार्मिक अथवा राजनैतिक प्रतिनिधित्व से नही बल्कि केवल बस सिद्ध-शक्तियों के माध्यम से ही आगे भारत को बचाया जा सकता है
पर कोई साधक सिद्ध बने तब तो......
यहाँ भी जो साधक हैं उनमें से अधिकांश में अब न श्रद्धा है, न साधना-अभ्यास है,
अधिकांश जो कथित साधक अनुशासन में नही हैं वे गुरुद्रोही बने हुए हैं, मनमुखी बने हुए हैं, जरा सी बात पर नकारात्मक हो जाते हैं और यहाँ सम्यग् गुरु के सानिध्य में सम्यग् सत्संग में आना ही छोड़ देते हैं,
ऐसे कई साधक हैं जिन्होंने तो आना ही छोड़ दिया है,
इसलिए यहाँ किसी की दृष्टि खुले यह संभावना बहुत ही कम है,
उसी की दृष्टि खुल सकती है जो यहाँ गुरु की आज्ञा में, अनुशासन में है,
जिसकी यहाँ गुरु के प्रति श्रद्धा-भक्ति-विश्वास-समर्पण है......
जब यहाँ गुरु के प्रति निष्ठा होगी, श्रद्धा होगी, विश्वास होगा तो निश्चित ही यहाँ गुरु की बतायी गयी धर्म-साधना पर भी निष्ठा होगी, श्रद्धा होगी, विश्वास होगा, और चलने के लिए बल का आधार होगा,
तब फिर दृष्टि खुलना बिल्कुल संभव है.....
_पर अब समय निकलता जा रहा है,
समय रहते सिद्ध-शक्ति जागृत नही हुई तो आगे भारत की लगभग ७३ प्रतिशत से अधिक आबादी नष्ट होने वाली है,
इस नकारात्मक भविष्यवाणी से केवल सिद्ध ही बचा सकते हैं,
पृथ्वी-ग्रह की दिशा तथा दशा इतनी गलत हो गयी है कि अब आगे वैज्ञानिक-तकनीकी से भी नही बचा जा सकता है,
दिव्य-बल से युक्त होने पर ही तुममें से कोई इस पृथ्वी को बचा सकता है,
तुम हनुमान चालीसा पढ़ो चाहे कुछ भी पढ़ो इससे तुम बचने वाले नही हो,

अंधविश्वास पर आधारित तथाकथित धर्मों से तुम बचने वाले नही हो,
प्रत्यक्ष दिव्य-बल से ही तुम बच सकते हो,
अगर दिव्य-शक्ति नही खुली तो बहुत ही बड़ा अनर्थ होने वाला है,
हैरत की बात है विज्ञान से भी अधिक प्रत्यक्ष प्रामाणिक तथा प्रायोगिक धर्म-साधना का निर्देश होने पर भी यहाँ के साधकगण लापरवाह हैं, बेईमान हैं?
अगर ऐसी ही लापरवाही चलती रही,
और सद्धर्म का अनुशासन न रहा तो कृत्रिम बुद्धिमत्ता
(ए.आई.) को खुली मनमानी छूट मिल जाएगी,
तब आगे आने वाले समय में ऐसा भी संभव है ए.आई. के माध्यम से तुम्हारा दिमाग ही हाईजैक किया जा सकता है,
तुम्हारे मस्तिष्क में स्थित न्यूरोट्रांसमीटर को ही हाईजैक किया जा सकता है,
अगर ऐसा हो गया तब सूचनाओं के आधार पर तुम जो भी निर्णय करोगे वह तुम्हारा अपना निर्णय नही रह जाएगा,
किसी दुष्ट-सत्ता का निर्णय हो जाएगा,
(क्योंकि तुम सूचनाओं के आधार पर ही निर्णय करने के लिए विवश हो),
तुम किसी दुष्ट-सत्ता द्वारा संचालित उसका यंत्रवत् माध्यम बनकर रह जाओगे<यह बहुत ही घोर आपत्तिजनक दासता का लक्षण है,
सोचो जब तुम्हारा दिमाग ही हाईजैक किया जा सकता है तब फिर बचा ही क्या है,
तब तो ए.आई. के माध्यम से तुमसे कहीं भी किसी की भी हत्या करवायी जा सकती है,
तब तुम एक जिंदा लाश>ज़ोम्बी बनकर रह सकते हो,
इसलिए कहीं टीके लगवाने जाओ तो अभी से सावधान रहने की आवश्यकता है,
कृत्रिम बुद्धिमत्ता artificial intelligence का जिस द्रुत-गति से विकास होता जा रहा है अगर ऐसा ही विकास होता रहा तो आगे लगभग पूरी दुनिया उसके कब्जे में होने वाली है...

21 SEP 2024(ii)

श्वास के आने-जाने के ठीक मध्य में दृष्टि रहने से श्वास का आना-जाना सहज ही ज्ञात हो जाता है,
जैसे-जैसे श्वास के आने-जाने के मध्य से मध्य में स्थिति होती जाती है आसन की भी स्थिरता होती जाती है,
मन की भी स्थिरता होती जाती है,
इस तरह जब श्वास के आने-जाने के माध्यमिक संतुलन पर ध्यानदृष्टि पूर्णतः स्थिर हो जाती है तभी अंतःदृष्टि खुलती है,
आरंभ में श्वास के आने-जाने के मध्य में स्थिरता होने पर अंतर-विद्युतीय स्पंदन की अनुभूति होती है,
(भीतर जाती हुई श्वास में ऑक्सीजन की नमी होने से विद्युत की उपस्थिति तो रहती है, इसलिए भीतर जाती हुई श्वास पर जब गहरे से दृष्टि रहती है तब गहरी दृष्टि के घर्षण होने से विद्युत का प्राकट्य हो जाता है, भीतर बिजली के झटके लगने से तुम्हारे मन का, बुद्धि का संतुलन स्थापित होता है, तुम्हारी आंतरिक मूर्छा भंग होती है, इससे तुम्हारी जरा भी हानि नही बल्कि यह तुम्हारे लिए सुखद स्वास्थ्यवर्धक है, तुम्हारा मनोरोग भंग होता है, तुम्हारा पागलपन हट जाता है),
श्वास के आने-जाने के मध्य अंतराल में जो श्वास के आने-जाने के लिए दबाव रहता है उस दबाव में ही श्वास का बीज-स्वरूप निहित रहता है,

अगर श्वास का बीज-स्वरूप स्पष्ट होता है तब सम्यग् संकेतार्थ पूरे जीवन की, पूरे संसार की सार-सच्चाई स्पष्ट हो जाती है, और श्वास संबंधित दबाव नही रह जाता है,
ध्यान रहे श्वास का स्वरूप है जाना-ठहरना-आना,
और संसार का भी स्वरूप है जाना-ठहरना-आना,
इसलिए जब श्वास के जाने-ठहरने-आने का रहस्य स्पष्ट हो जाता है तब सार-अर्थ में संसार का रहस्य भी स्पष्ट हो जाता है,
आने-जाने के ठीक मध्य के वर्तमान में ही जीवन की, संसार की सार-सत्यता स्पष्ट है,
इसलिए तो श्वास के आने-जाने के मध्य अंतराल में दृष्टि के स्थिर होने का महत्व है,
श्वास के आने-जाने के मध्य अंतराल में श्वास का आना-जाना दबाव रूप में सघनित हो निहित रहता है,
अंतर-विद्युतीय स्पंदन के झटकों से तुम्हारी भीतर की मूर्छा भंग होती है, और तुम नये होश में जगते हो,
जब श्वास के पूर्ण मध्य में स्थिरता होती है तब सहज ही दृष्टि खुल जाती है,
जब चेतना के बीतने-उत्पन्न होने के ठीक मध्य में पूर्णतः स्थिरतापूर्वक स्थिति होती है तब तो फिर दृष्टि का ही अतिक्रमण हो जाता है, और तभी पूर्ण सहजता है....
_तुमने पेंडुलम वाली पुरानी दीवार घड़ी देखी होगी जैसे ही उसकी बैटरी निकाल दी जाती है तो पेंडुलम सहज ही मध्य में स्थिर हो जाता है,
इस तरह जब नासिकाग्र में दृष्टि का सिमटाव हो जाता है, और जब वासना नही रह जाती है तब श्वास का जो असहज दबाव में आना-जाना है<वह सहज ही स्थिर हो जाता है,
जब श्वास अपनी पूर्ण यथा सहजता में स्थिर हो जाती है तब मन भी सहज हो शान्त-स्थिर हो जाता है,
दृष्टि तथा वासना के दबाव में ही श्वास की असहज गति है,
ध्यान रहे दृष्टि की सहज स्वाभाविक सीध नासिकाग्र की ही सीध है,
जहाँ नासिकाग्र की सीध में ही दृष्टि होने से सहज ही मन स्थिर हो शान्त रहता है,
इसलिए ध्यान रहे नाक के आगे की ठीक सहज स्वाभाविक सीध में ही दृष्टि भली-भाँति स्थिरतापूर्वक रहे,
दृष्टि के<नजर के<निगरानी के नाक के आगे>सहज स्वाभाविक सीध में रहने से सहज ही श्वास के आने-जाने के मध्य में स्थिरतापूर्वक स्थिति होती है, और हर श्वास का सहज ही ज्ञान होता है......
_प्रत्यक्ष ध्यान-अभ्यास में बैठने पर ही मार्ग स्पष्ट होता है,
ध्यान-अभ्यास में दृष्टि सूक्ष्म होती जाती है,
बुद्धि सूक्ष्म होती जाती है,
सूक्ष्म दृष्टि खुलने से, सूक्ष्म बुद्धि खुलने से तब मार्ग और सूक्ष्मता में स्पष्ट होता है,
सम्यग् मार्ग कोई दार्शनिक मत नही है, अपितु पूर्णतः प्रत्यक्ष प्रायोगिक (प्रैक्टिकल) मार्ग है,
इसलिए प्रत्यक्ष प्रायोगिक (प्रैक्टिकल) अभ्यास बहुत ही अनिवार्य है,
किसी नदी के किनारे बैठकर नदी पार होने के लिए कितना ही मनन कर लो, चिंतन कर लो पर इससे तुम नदी पार नही हो सकते हो,
नदी पार होने के लिए तुम्हें सीधे छलांग लगाकर तैरना पड़ेगा तभी तुम नदी पार हो सकते हो,
समझदार के लिए इतना इशारा काफी है...

23 SEP 2024(i)

ध्यान अभ्यास के लिए एक कुशल इंजीनियर से भी अधिक-तकनीकपूर्ण होना आवश्यक है|

23 SEP 2024(ii)

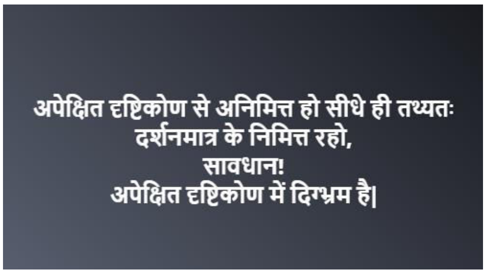

23 SEP 2024(iii)

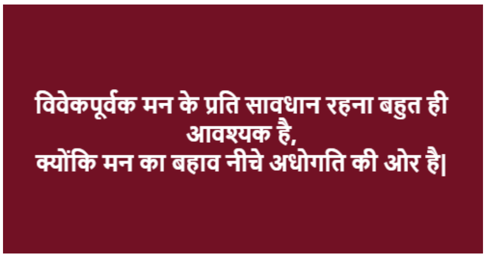

23 SEP 2024(iv)

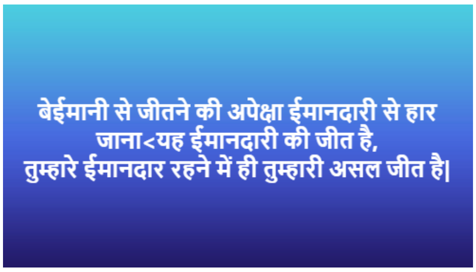

23 SEP 2024(v)

_जैसे कोई भौंरा पुष्प को कोई नुकसान पहुँचाए बिना पुष्प से रस लेकर उसमें से कुशलतापूर्वक निकल जाता है,
भौंरे और पुष्प के संकेतप्रद उदाहरण से तुम्हें भी प्रेरित होना चाहिए,
इसी संकेतप्रद उदाहरण से प्रेरित हो तुम्हें भी श्वास के प्रति ऐसे रहना है कि जिससे श्वास की यथा सहजता भी भंग न हो, और श्वास का ज्ञानमात्र भी ग्रहण हो जाए,
और इसी तरह इस संसार में रहना है,
संसार को कोई नुकसान पहुँचाए बिना संसार-सागर (भव-सागर) से पार हो जाने में ही कुशलता है,
श्वास अपनी यथा सहजता में जैसी चल रही है उसे वैसा ही चलने देना है,
अपनी तरफ से श्वास में कोई छेड़छाड़ नही करनी है,
श्वास की यथा सहजता प्रभावित न हो इसके लिए श्वास के प्रति ज्ञानमात्र के निमित्त यथा सहजता में रहते हुए ही सजग रहना है,
श्वास के प्रति यथा सहजता में रहते हुए सजग रहने से श्वास अपनी यथा सहजता में जैसी चल रही है वैसी ही भली-भाँति स्पष्टतः ज्ञात होगी,
श्वास की यथार्थ स्पष्टता होने पर श्वास का अपेक्षित बंधन नही रह जाता है....

_ध्यान में>(सम्यग् ध्यान में) प्रचलित ध्यान-विधियों की तरह अलग से कोई भी आरंभ नही है, अलग से प्राणायाम आदि कोई भी क्रिया नही है,
अलग से मंत्र-जप, नाम-रूप आदि कोई भी धारणा नही है,
सम्यग् ध्यान में सीधे ही सहज ज्ञानमात्र के निमित्त बस उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका होती है,
सर्वप्रथम श्वास के ज्ञात होने में उपस्थित होना होता है,
श्वास के ज्ञात होने में जब पूर्णतः स्थिरतापूर्वक उपस्थिति हो जाती है तब उससे भी सीधे जो तथ्य है उसके लिए सीध स्पष्ट हो जाती है<खुल जाती है,
इस तरह उत्तरोत्तर सीधे से सीधे सीध का निमित्त पूरा होने पर अंततः सीधरहित, अंतरालरहित सहज ज्ञानमात्र ही रह जाता है,
चूँकि ज्ञानमात्र की पारदर्शिता परिपूर्णतः परिस्पष्ट है,
इसलिए किसी भी तरह के भ्रम,संशय,संदेह,
अज्ञान,दुःख का कोई अर्थ नही रह जाता है,
ध्यान रहे जब तक दो अंतों के मध्य<स्थान-समय का अंतराल है तभी तक सीध भी संभव है,
जब दो अंतों के मध्य का अंतराल नही रह जाता है तब सीध भी नही रह जाती है.....
तुम्हें अलग से कृत्रिमतः प्राणायाम आदि करने की आवश्यकता नही है,
कृत्रिमतः प्राणायाम आदि करने से श्वास की यथा सहजता प्रभावित होती है,
श्वास के प्रति यथा सहजता में रहने से श्वास और सहजता में होती है,
श्वास के प्रति उत्तरोत्तर यथा सहजता में रहने से अंततः श्वास अपनी पूर्ण यथा सहजता में ठहर जाती है,
प्रचलित कृत्रिम प्राणायाम के माध्यम से बलात् श्वास के ठहरने के लिए प्रयास किया जाता है,
इससे एक सीमा तक ही श्वास के ठहरने के लिए दबाव बन सकता है,
अपनी तरफ से प्राणायाम आदि कृत्रिमता का दबाव देकर कभी भी श्वास का ठहरना पूरी तरह से नही हो सकता,
चूँकि कर्ताभाव स्वयं ही दबाव में आरोपित है,
इसलिए तुम अपनी तरफ से श्वास के ठहरने के लिए कितना भी दबाव क्यों न बना लो उसकी एक सीमा है,
उस सीमा के बाद तुम्हें गिरना ही पड़ेगा,
क्रिया से अनिमित्त अक्रिय ज्ञानमात्र के निमित्त उपस्थित भर होने में तुम कर्ताभाव में नही होते हो,
इसलिए दबाव नही होने से गिरना भी नही होता,
क्रिया के>(क्रियायोग के) अपेक्षित<निमित्त कर्ताभाव में होने से योगी के>(क्रियायोगी के) योगभ्रष्ट होने की संभावना है, पर अक्रिय सहज ज्ञानमात्र के निमित्त ज्ञानी के ज्ञानभ्रष्ट होने की संभावना नही है, कृत्रिमतः हठयोग में, क्रियायोग में अगर कोई भी क्रिया बिगड़ गयी तो जीवन से भी हाथ धोना पड़ सकता है.....
ध्यान रहे जब तक कर्ताभाव है तब तक नियंत्रण संभव नही है,
चूँकि क्रिया तथा कर्ता एक-दूसरे के सापेक्ष अवलंबित होने से कर्ता के बिना क्रिया संभव नही है,
इसलिए क्रिया से क्रिया पर नियंत्रण नही हो सकता,
पर कर्ताभाव से अनिमित्त अक्रिय ज्ञानमात्र के निमित्त सहज ही नियंत्रण रहता है,
कितने आश्चर्य की बात है जब नियंत्रण करने के लिए कोई होता है तब नियंत्रण नही होता,
पर जब नियंत्रण के लिए कोई नही होता तब सहज ही नियंत्रण हो जाता है,
आदतन कुछ न कुछ तुम होते ही हो,
तुम्हारा अपनी तरफ से जब तक होना है तब तक कदापि क्रिया पर, कर्म पर, फल पर नियंत्रण संभव नही है,
अक्रिय ज्ञानमात्र के निमित्त होने से कर्ताभाव उत्पन्न नही होता,
गुण<धर्म के सापेक्ष होने से कर्ताभाव उत्पन्न होता है,
ज्ञानमात्र की ऐसी महिमा है कि ज्ञानमात्र में सहज ही सब पर पूर्णतः पूर्ण नियंत्रण रहता है.....
_यद्यपि अन्य भावना योग्य भावनीय भावनाओं की तरह प्रचलित हठयोग भी एक सीमा तक विकास तथा संतुलन के निमित्त है,
यहाँ प्रचलित हठयोग का विरोध नही है,
जिसे सम्यग् मार्ग स्पष्ट नही है,
जिसका लोकदृष्टि में प्रचलित हठयोग के प्रति आकर्षण है वह हठयोग में रह सकता है,
पर उसे किसी कुशल हठयोगी के अनुशासन में रहकर हठयोग-साधना के प्रति बहुत ही सावधान रहने की आवश्यकता है,
पर सहज ज्ञानमात्र के निमित्त सहज
ज्ञानमार्ग में बच्चा-जवान-बूढ़ा कोई भी यथा सहजतापूर्वक चल सकता है, किसी के लिए भी कदापि कोई हानि नही है,

किसी के लिए भी बिल्कुल कोई जोखिम नही है......
_चूँकि प्रतिक्रियात्मक दबाव होने से क्रिया में स्थिति संभव नही है,
क्योंकि आरंभ होते ही>क्रिया का आरंभ होते ही प्रतिक्रियात्मक दबाव स्थापित हो जाता है,
इसलिए हठयोगी का>(क्रियायोगी का) प्रतिक्रियात्मक दबाव में होने से क्रियायोग से गिरने की बारंबार संभावना बनी ही रहती है,
पर क्रिया से अनिमित्त होने से क्रिया का प्रतिक्रियात्मक दबाव न होने से अक्रिय ज्ञानमात्र के निमित्त उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका से गिरना कदापि संभव नही है,
क्रिया में ही<क्रिया से ही>(प्रतिक्रियात्मक दबाव में) गिरना होता है,
ज्ञान में गिरना नही होता, ज्ञान में स्थिति होने से गिरना नही होता,
क्रिया से अपेक्षित होने से योगी>(क्रियायोगी)
की ज्ञान में स्थिति संभव नही,
चूँकि क्रिया से क्रिया में स्थिर होना प्रकृति विरुद्ध है,
और क्रिया से ज्ञान में स्थिर होना सहजता के नियम के विरुद्ध है,
ज्ञान के निमित्त ही ज्ञान में स्थिति संभव है,
ज्ञानमात्र के निमित्त ही ज्ञानमात्र के निमित्त उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका स्पष्ट है......
_चूँकि सारा सम्मोहन ही क्रिया के प्रतिक्रियात्मक दबाव का है,
इसलिए क्रियायोगी का सम्मोहन में होने से दिग्भ्रमित होना स्वाभाविक है,
जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि की बात ही तथ्यगत् स्पष्टता से वंचित होने से आरोपित दृष्टि के स्वसम्मोहनवश दिग्भ्रम में ही चरितार्थ होती है,
सम्यग् सद्धर्म से इतर जितने भी प्रचलित हिन्दू आदि स्थापित धर्मावलंबी हैं<संप्रदायवादी हैं<वे सब अंधभक्त ही हैं,
अंधभक्त अपने ही बनाए हुए झूठे भगवान अर्थात् मिथ्यादृष्टि की भावना में भावित हो सम्मोहित हो>(भावनात्मक सम्मोहन में) दिग्भ्रमित हैं,
पर ध्यान रहे सम्यग् यथार्थनिष्ठा में पूर्णतः सम्यग् विवेक स्पष्ट होने से कदापि अंध-भक्ति संभव नही,
सम्यग् यथार्थनिष्ठा में पूर्णतम् सम्यग् यथार्थ ओर ही पूर्णतः सहज श्रद्धा रहती है, पूर्णतः सहज समर्पण रहता है,
अपेक्षित दृष्टिकोण में होने से ही स्वसम्मोहनवश 'यह सत्य है' की भ्रान्ति होती है,
इसलिए अपेक्षित दृष्टिकोण में स्वसम्मोहनवश दिग्भ्रमित होने से हिन्दू, मुस्लिम आदि सभी स्थापित धर्मावलंबी एक-दूसरे के शत्रु बने हुए हैं,
जब तक 'यह सत्य है' का अपेक्षित दृष्टिकोण स्थापित है (मिथ्यादृष्टि स्थापित है) तब तक कदापि तथ्यतः यथार्थ सत्य स्पष्ट नही हो सकता.......
ध्यान रहे तुम अपने ही द्वारा आरोपित किए हुए मिथ्यादृष्टि में दिग्भ्रमित हो,
तथ्यतः यथार्थ स्पष्टता में कोई दिग्भ्रम नही है,
सारा दुःख, सारा क्लेश, सारी चिंता तुम्हारे दिग्भ्रम में होने से ही है,
अगर वाकई दुःख से मुक्ति चाहिए तो आरोपित दृष्टि से अनपेक्ष हो सीधे ही तथ्यतः यथार्थ स्पष्टता के निमित्त रहो.....
_हठयोग की भावनीय भावना हो, चाहे कोई भी अन्य भावनीय भावना हो<सभी तरह की भावनीय भावनाओं का निमित्त पूरा होने पर
अंततः ज्ञानमात्र के निमित्त होना ही पड़ता है,
अंततः ज्ञानमात्र के निमित्त उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका ही सहज सिद्ध है......

25 SEP 2024(i)

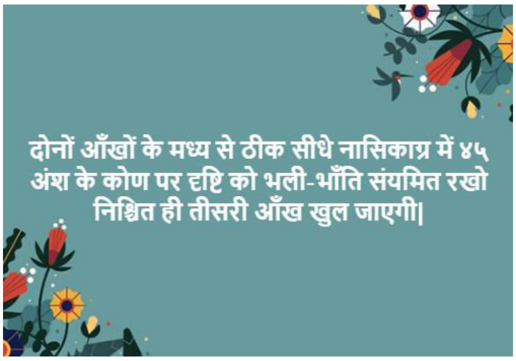

25 SEP 2024(ii)

_जनता की आपत्ति का प्रतिक्रियात्मक दृष्टिकोण से उत्तर-
जगदीश्वरम् न किसी का अंश है न उसका कोई अंश है,
न किसी का स्वरूप है न कोई उसके स्वरूप में है, न किसी का अवतार है न उसका कोई अवतार है,
इसलिए कोई भी उसे कल्कि-अवतार न कहे,
जो भी उसे कल्कि-अवतार बोलता है<वह झूठ बोलता है,
वह जगदीश्वरम् की गरिमा की अवमानना करता है,
जगदीश्वरम् की अपनी गरिमा है, अपनी पवित्रता है, अपनी शुद्धता है,
जगदीश्वरम् अपनी गरिमा में, अपनी पवित्रता में, अपनी शुद्धता में पूर्णतः अविचल स्थिर है,
वह अपनी गरिमा से, अपनी पवित्रता से, अपनी शुद्धता से नही गिरता,
('वह' राम, कृष्ण आदि की तरह अपनी गरिमा से, अपनी पवित्रता से, अपनी शुद्धता से नीचे नही उतरता),
उसका आना किसी भी पारंपरिक तरीके से नही है, जिस तरह से किसी ने सोचा भी नही होगा उस तरह से उसका आना है,
जिस तरह से पुराण आदि में कल्कि-अवतार के बारे में लिखा है उस तरह से उसका आना नही है, उस तरह से उसका परिचय नही है, उस तरह से उसका चरित्र नही है,
उसका आना अद्भुत रीति से है,
उसका परिचय, उसका चरित्र, उसका आचरण, उसका व्यवहार, उसका ज्ञान, उसका दर्शन अद्भुत है,
कल्कि-अवतार तथा मैत्रेय-बुद्ध तो
पुस्तकों में लिखी गयी कथा-कहानी भर ही है इससे अधिक उनका अस्तित्व नही है,
पर जगदीश्वरम् (जसु) किसी की लिखी हुयी कथा-कहानी नही है<वह व्यवहारतः प्रत्यक्ष उपस्थित है,
वह व्यवहारतः प्रत्यक्ष सम्यग् पथप्रदर्शक है,
(पुराण आदि में कल्कि-अवतार का परिचय तथा चरित्र निम्न मानसिकता में होने से बहुत ही आपत्तिजनक तथा अपमानजनक है जो जगदीश्वरम् की गरिमा के अनुकूल नही है),
जगदीश्वरम् न किसी का माध्यम है, न किसी का पुत्र है, न किसी का पैगंबर है, न किसी का भेजा हुआ है,
जगदीश्वरम् किसी से नही......
_जगदीश्वरम् का कोई गुरु नही....
परशुराम आदि भी नही बल्कि जगदीश्वरम् तो परशुराम, वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि का गुरु है, परम् गुरु है......
_जगदीश्वरम् का कोई ईश्वर नही.....
शिव आदि भी नही बल्कि जगदीश्वरम् तो शिव, विष्णु, ब्रह्मा आदि का नाथ है, ईश्वर है.....
_जगदीश्वरम् का कोई पुरोहित नही, कोई याजक नही....
याज्ञवल्क्य भी पुरोहित नही, याजक नही बल्कि जगदीश्वरम् तो याज्ञवल्क्य आदि का याजक है, परम् याजक है......
_जगदीश्वरम् की कोई जाति नही, कोई गोत्र नही, कोई वर्ण नही, कोई संप्रदाय नही, कोई देवी नही, कोई देवता नही,
जो कोई भी जगदीश्वरम् को किसी जाति-वर्ण आदि में कहता है तो वह जगदीश्वरम् की गरिमा की अवमानना करता है,
पूर्व कल्प के अनुसार ही इस वर्तमान कल्प में भी जगदीश्वरम् की भूमिका लोक में विकृति का विनाश करने की है,
और सम्यग् सनातन सद्धर्म अनुशासन स्थापित करने की है,
जगदीश्वरम् के अनुशासन में अदृश्य दिव्य-शक्तियाँ हैं,

कल्प के आरंभ से लेकर इस समय तक मनुष्य-जाति में जिन बातों को लेकर मतभेद तथा विरोधाभास होता आया है, उन सब बातों की सच्चाई खुलेगी,
हर झूठ का पर्दाफ़ाश होगा, हर विकृति का अंत होगा,
सब पर सम्यग् सनातन सद्धर्म का शासन<अनुशासन लागू होगा,
सम्यग् सनातन सद्धर्म शासन<अनुशासन में
सबके साथ न्यायपूर्ण-मैत्रीपूर्ण व्यवहार स्थापित होगा,
स्वच्छ, स्वस्थ, शोषण-मुक्त पारदर्शी समाज की स्थापना होगी....

25 SEP 2024(iii)

ध्यान के लिए श्वास से सहज स्वाभाविक अवलंबन दूसरा नही है,
श्वास सीधे सामने एक सीध में चल रही है,
सीधे सामने एक सीध में अगर ध्यान को स्थिर करना है तो इससे सहज स्वाभाविक सीधा अवलंबन दूसरा नही है,
श्वास के माध्यम से (श्वास के सहारे) तुम कितने ही घंटों तक एक सीध में स्थिर होकर बैठ सकते हो,
श्वास के आने-जाने के हर मध्य का अंतराल पुनः-पुनः और सीधे से सीधे हो संतुलन-पूर्वक संभलने के लिए है,
ताकि हर बार संभलकर हर आती-जाती श्वास के ठीक समय पर नये होश से उपस्थित हो सको,
उत्तरोत्तर सूक्ष्मतर होते क्रम में हर आने-जाने के, हर बीतने-उत्पन्न होने के मध्य के अंतराल में सीधे हो संभलकर नये होश से सजग होने पर ही तुम्हारा अचेतन भंग होगा, तुम्हारी मूर्छा भंग होगी, तुम्हारी तल्लीनता भंग होगी, तुम्हारी तादात्म्यता भंग होगी.....
_तुम्हें अपनी तरफ से कुछ नही करना है बस सीधे सामने हो वर्तमान से वर्तमान के श्वास में उपस्थित भर होना है,
सबसे पहले लगातार हर श्वास के ठीक समय पर उपस्थित होना है,
इतने में ही रुक नही जाना है,
जितना समय श्वास के आने-जाने के मध्य लगता है फिर उससे भी कम समय पर उपस्थित होना है,
यहाँ तक कि एक सेकेंड के १०वें, १००वें, १०००वें, १००००वें, १००००००००००वें भाग से भी कम समय पर उपस्थित होना है,
जब तक समय का ही अंत न हो जाए तब तक अनवरत् उत्तरोत्तर कम से कम समय पर उपस्थित होते ही जाना है,
अभी तुम्हें यह असंभव लगेगा,
ध्यान रहे जैसे कोई अभी तक नदी के बहाव के साथ बहते हुए आ रहा हो उसे अब नदी की धारा के विपरीत दिशा में जाना है तो उसे बहुत कठिन लगेगा,
नदी की धारा के विपरीत दिशा में जाते हुए अभी उसके कमर तक पानी है, आगे बढ़ने पर फिर घुटनों तक पानी रह जाता है,
और आगे बढ़ने पर स्रोत के पास जल बहुत कम रह जाता है, तब फिर एक छलांग की ही जरूरत रह जाती है,
अभी तक तुम मन की अनुकूलता में संसार की धारा में बहते हुए आ रहे थे अब अगर तुम्हें सद्धर्म के अनुशासन में चलना हो तो बहुत कठिन लगेगा,
पर सद्धर्म के अनुशासन में जैसे ही एक घंटे तक लगातार हर श्वास-प्रश्वास के ठीक समय पर उपस्थिति होती है इतने भर में ही सहजता का इतना दबाव बढ़ जाता है कि सीधे ही एक सेकेंड के सौवें भाग में उपस्थिति हो जाती है,
एक सेकेंड के सौवें भाग में उपस्थिति होते ही एक सेकेंड के लाखवें, फिर अरबवें भाग में उपस्थित होने के लिए सहजता का दबाव बन जाता है,
सबसे अधिक कठिनाई अभी आरंभिक ध्यान-अभ्यास में ही है,
इसके बाद फिर कोई कठिनाई नही है,
एक बार भी एक घंटे तक लगातार हर श्वास के आने-जाने के ठीक समय पर एक होश में उपस्थित हो जाओ बस,
इसके बाद तो उत्तरोत्तर सहजता के दबाव से उत्तरोत्तर सीधे से सीधे उपस्थित होना सहज हो जाता है,
एक सेकेंड के सौवें भाग से सीधे ही लाखवें भाग में, फिर अरबवें भाग में छलांग लग सकती है,
जितनी ही कम से कम समय में उपस्थिति होती जाती है उतनी ही और कम से कम समय में उपस्थित होने के लिए स्फूर्ति भी बढ़ती जाती है,
सोचो जब एक सेकेंड के अरबवें भाग में संभलना हो जाए, संभलकर उपस्थित होना हो जाए तो कितनी अधिक स्फूर्ति होगी, कितनी अधिक गति होगी, कितना अधिक होश होगा, कितनी अधिक सजगता होगी,
कितना अधिक बल होगा, कितनी अधिक सक्षमता होगी, कितनी अधिक सामर्थ्य होगी
तुम्हारे सोचने से बाहर है,

फिर अंतरालरहित (समयरहित) ज्ञानमात्र का>(ज्ञानमात्र की पूर्णता का) तो कहना ही क्या........
_जितना मध्य का कम से कम अंतराल होगा उतना ही कम से कम ध्यान बँटेगा,
जितना ही कम से कम ध्यान बँटेगा उतनी ही स्थिरता-पूर्वक स्थिति होगी,
इसलिए जितना ही मध्य का अंतराल कम होता जाता है उतना ही ध्यान और अधिक सीधे होता है,
जब तक श्वास से भी सीधे होने के लिए सहजता नही हो जाती तब तक निरंतर हर श्वास-प्रश्वास के ठीक समय पर उपस्थित होते रहना है,
इस तरह उत्तरोत्तर सीधे से सीधे होने पर अंततः अंतरालरहित यथार्थ<मात्र सत्य स्पष्ट हो जाता है...

27 SEP 2024(i)

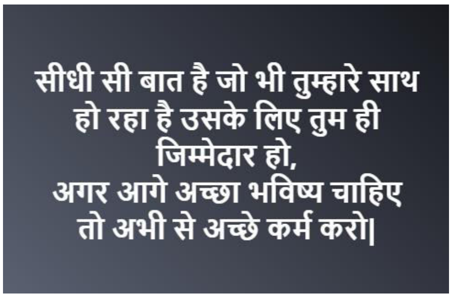

27 SEP 2024(ii)

_जो आने वाला है<वह आ चुका बस प्रगट भर होने की देर है....
भावनात्मक सम्मोहन में भक्त अच्युतानंद दास द्वारा रचित भविष्य-मालिका की बेमेल पहेलीनुमा भविष्य-वाणियाँ साधारण
जन-समुदाय को दिग्भ्रमित कर रही हैं,
बहुत सारे झूठे कल्कि-अवतार पैदा हो गए हैं,
इस समय तो झूठे कल्कि-अवतारों की बाढ़ सी आ गयी है,
और इस तरह कितने ही झूठे मैत्रेय-बुद्ध भी हो गए हैं,
इन झूठों को झूठा सिद्ध करने के लिए सम्यग् आप्त-पुरुष ने इनके आधार कल्कि-अवतार तथा मैत्रेय-बुद्ध को ही अपनी सिद्ध संकल्प-शक्ति से निरस्त कर दिया है,
अब न कल्कि-अवतार ही होगा, न ही मैत्रेय-बुद्ध होगा,
न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी....
समझदार इस इशारे को समझ जाएंगे......
पुराणकारों तथा अन्य लेखकों ने अपने-अपने अपेक्षित दृष्टिकोण के अनुसार कल्कि-अवतार के नाम से काल्पनिक चरित्र गढ़ा है,

जो बहुत ही घोर आपत्तिजनक तथा घोर अपमानजनक है,
इसलिए सम्यग् आप्त-पुरुष ने अपने
सिद्ध संकल्प-बल से उसे निरस्त कर दिया है,
और इसलिए अब 'वैसा' कल्कि-अवतार कभी भी नही होगा,
फिर भी महिमामय पुरुष का प्राकट्य अवश्य ही होगा,
पर काल्पनिक कल्कि के नाम से नही
बल्कि महिमामय नाम से.......
हर बार जब भी कोई समय का महापुरुष आता है उसके पहले से ही इस तरह का काल्पनिक चरित्र गढ़ा जाता है,
पर हर बार झूठ 'झूठ' सिद्ध होता है,
जब भी कोई आता है वह अपने ढंग से ही आता है,
इस समय जो प्रगट होने वाला है<वह सबसे अद्भुत व महिमामय है.....
_ध्यान रहे कई भविष्यवक्ताओं ने वर्तमान समय के महापुरुष के बारे में जो भविष्यवाणी की है वह सांकेतिक अर्थ में अवश्य ही सत्य सिद्ध है,
इसलिए तो इस समय जहाँ इतने सारे झूठे हैं
वहाँ एक सच्चा भी अवश्य ही है बस प्रगट भर होने की देर है,,
उसने उड़ीसा नही उत्तर-भारत की पवित्र-भूमि में शरीर ग्रहण किया है,
इस समय जो आया है<वह छिपकर आया है, और अपनी महिमा, अपना ईश्वरत्व छिपाकर अब तक छिपा हुआ है....

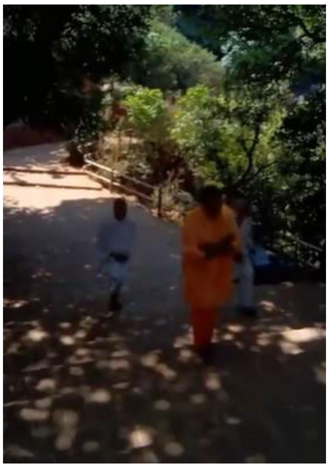

27 SEP 2024(iii)

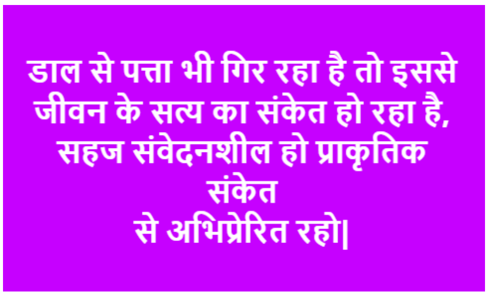

27 SEP 2024(iv)

_गति, संतुलन, स्थिरता पर भली-भाँति नियंत्रण होना आवश्यक है,
गति, संतुलन, स्थिरता पर भली-भाँति पूर्ण नियंत्रण होने पर फिर साधने के लिए कुछ नही बचता,
जीवन की सफलता ही स्थिरतापूर्ण संतुलन पर निर्भर है,
(जीवन के हर क्षेत्र में पूर्णतः कुशलता, पूर्णतः नियंत्रण स्थिरतापूर्ण संतुलन पर ही निर्भर है),
किन्हीं दो अंतों के माध्यमिक संतुलन पर ही उस परिप्रेक्ष्य में स्थिरता-पूर्वक स्थिति निर्भर है,

उत्तरोत्तर माध्यमिक संतुलन का निमित्त पूरा होने पर सापेक्षिक दबाव में गिरना असंभव है,
जब तक तुम कर्ता-भोक्ता बने हुए हो तब तक तुम सापेक्षिक दबाव में गिरे हुए ही हो,
हाँ जब तुम कर्ता-भाव से अनिमित्ततः अनपेक्ष होते हो,
निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होते हो तब तुम सापेक्षिक दबाव में नही होते हो,
निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होने में ही संतुलन की पूर्णता है......
_सारी समस्याओं का हल निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होने में है,
उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका पूर्णतः अपेक्षा-रहित है,
पूर्णतः अपेक्षा-रहित होने पर ही पूर्णतः यथा-शुद्धि है,
और पूर्णतः यथा-शुद्धि में ही पूर्णतः निभ्रान्त यथार्थ स्पष्टता है,
(किसी भी अर्थ को किसी भी अन्य अर्थ की अपेक्षा में आरोपित कर देखने पर ही दिग्भ्रम होता है अन्यथा कोई दिग्भ्रम है ही नही, द्वैत-अद्वैत आदि सारा दिग्भ्रम तुम्हारे आरोपित दृष्टिकोण में है तथ्यतः कोई दिग्भ्रम है ही नही,
तुम्हारे आरोप करने की क्रिया के प्रतिक्रियात्मक दबाव में स्वसम्मोहनवश तुम ही तुम्हारी आरोपित दृष्टि में दिग्भ्रमित हो, दुःखी हो,
जब तक 'यह सत्य है' का अपेक्षित दृष्टिकोण बना हुआ है तब तक कदापि निभ्रान्ततः यथार्थ स्पष्टता नही हो सकती),
ज्ञाता-भाव से अनिमित्त ज्ञानमात्र के निमित्त ही बस उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका संभव है,
जब तक तुम अलग से देखने वाले बने हुए हो, अलग से जानने वाले बने हुए हो तब तक कदापि संतुलनपूर्ण स्थिति संभव नही है,
जब तुम अलग से देखने वाले नही होते हो,
अलग से जानने वाले नही होते हो,
जब तुम सीधे ही बस दिखने भर के निमित्त होते हो, सीधे ही ज्ञान भर के निमित्त होते हो तब सहज ही संतुलन रहता है.......
_सापेक्षता के दो अंतों के माध्यमिक संतुलन पर स्थिरता हो जाए (ठहरना हो जाए) इसके लिए ही तुम्हारा अभ्यास है, तुम्हारी साधना है,
उत्तरोत्तर सूक्ष्मतर होते अंतों के माध्यमिक संतुलन पर स्थिरता का निमित्त पूरा करना है, स्थिरता का निमित्त पूरा होते ही सहज ही सहज-स्थिति हो जाती है,
सहज-स्थिति कर्म का परिणाम नही है,
कर्म का फल नही है कर्म का तो बस निमित्त है,
यद्यपि सहज-स्थिति किसी कर्म का परिणाम नही है, किसी कर्म का फल नही है (किसी अभ्यास का परिणाम नही है, किसी अभ्यास का फल नही है) अपितु
सहज-सिद्ध है,
पर कर्म का (अभ्यास का) निमित्त पूर्ण हुए बिना सहज-स्थिति संभव नही,
कर्म का (अभ्यास का) निमित्त पूरा करना अनिवार्यतः आवश्यक है,
कर्ता<कर्तव्य-भोक्ता<भोक्तव्य से अनिमित्त अक्रियतः स्थिर ज्ञानमात्र के निमित्त समर्पित होने पर ही कर्म का (अभ्यास का) निमित्त पूरा हो अंततः कर्म का (अभ्यास का) अंत होता है<यही पूर्णतः सम्यग् मोक्ष है,
कर्ता-भाव के अपेक्षित दबाव में ही फल भोगने के निमित्त कर्म की प्रति-समान्तर भूमिका बनती है,
अतः कर्ता-भाव के रहते कदापि फल के अपेक्षित बंधन से मुक्ति संभव नही....
किसी काल्पनिक<मिथक के प्रति समर्पण न होकर सम्यग् यथार्थ स्पष्ट हो<इस निमित्त से बस सीधे ही मात्र सम्यग् यथार्थ ओर ही समर्पण हो.....
_नाक के आगे की ठीक सीध के आधार से सीधे हो उत्तरोत्तर सीधे से सीधे सीध में भली-भाँति संतुलन-पूर्वक संभलते जाना है,
मध्य का अंतराल भली-भाँति संतुलन-पूर्वक सीधे हो संभलने के लिए है,
हर मध्य के अंतराल में भली-भाँति संतुलन-पूर्वक सीधे हो संभलना है,
जरा भी प्रमाद नही करना है,
हर वर्तमान की श्वास से सीधे ही अगली श्वास के लिए संभल जाना है,
उठते,बैठते,चलते-फिरते हर व्यावहारिक क्रिया के प्रति भली-भाँति होश-पूर्वक संभले हुए रहना है|
क्रमशः

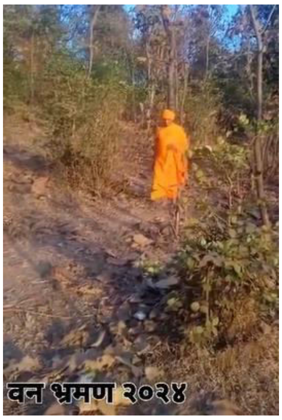

29 SEP 2024(i)

29 SEP 2024(ii)

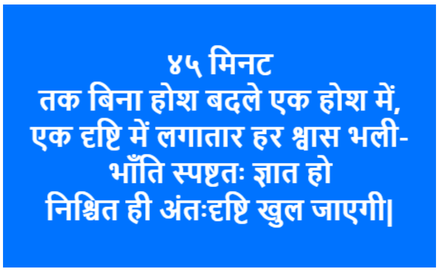

29 SEP 2024(iii)

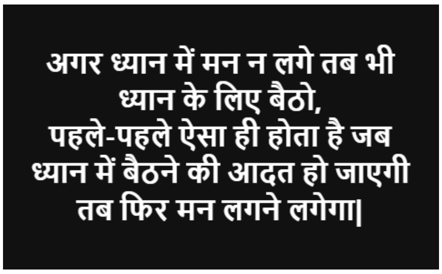

29 SEP 2024(iv)

ध्यान में बैठने पर
ख़याल आ रहे हैं तो कोई बात नही,
जैसे ही ख़याल आते हैं बिना कोई देर किए
तुरंत सांस के मालूम होने में आ जाओ|

29 SEP 2024(v)

_जीवन-आयु बहुत ही अल्प है,
इस अल्प आयु में ही जीवन का सार्थक उद्देश्य पूरा कर लो,
यहाँ-वहाँ, इधर-उधर की व्यस्तता में खोकर तुम अपनी जीवन-आयु को व्यर्थ कर रहे हो,
अगर इसी तरह इधर-उधर की व्यस्तता में खोए रहोगे तो तुम्हें पता भी नही चल पाएगा कि कब तुम जवान से बूढ़े हो गए, और कब तुम्हारी जीवन-लीला ही पूरी हो गयी,
अब तक जो हुआ सो हुआ पर अब समय को बिल्कुल भी व्यर्थ मत जाने दो,
इसी समय संभल जाओ और जीवन का सार्थक उद्देश्य पूरा करने में जुट जाओ,
जीवन की यथार्थ सच्चाई खुले बिना अगर जीवन पूरा हो गया तो समझ लो तुम्हारा यह पूरा जीवन ही व्यर्थ गया,
जीते जी सम्पूर्णतः भ्रम,संशय,अज्ञान,दुःख से मुक्ति हो यही जीवन का मूल-उद्देश्य है,
सत्य जाने बिना पूरा जीवन ही व्यर्थ है......
ध्यान रहे कोई दुर्घटनावश तुम्हारा जन्म नही हुआ है,
सार्थक उद्देश्य को लेकर ही तुम्हारा जन्म हुआ है,
जब तक जीवन का सार्थक उद्देश्य पूरा नही हो जाता तब तक बार-बार भ्रम,संशय,
अज्ञानता,दुःख,क्लेश में ही जन्म होता रहेगा,
अगर अज्ञानता के रहते मृत्यु हो गयी तो फिर से अज्ञानता में ही फिर जन्म होना सुनिश्चित है.....
_दुःख का कारण अज्ञानता है,
जब तक अज्ञानता है तभी तक दुःख का प्रत्यय बना हुआ है<दुःख बना हुआ है,
अज्ञानता के हटते ही दुःख भी हट जाता है,
ज्ञानमात्र की पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता में जरा सा भी भ्रम,संशय,अज्ञान,दुःख नही है,
इसलिए अपेक्षित दृष्टिकोण से अनिमित्त ज्ञानमात्र के निमित्त हो जाओ,
चूँकि अज्ञान कहने का तात्पर्य पूर्णतः अस्पष्ट अज्ञान से नही है,
अर्थात् अज्ञान तो है पर पूरी तरह स्पष्ट न होकर अधूरे में स्पष्ट है,
और दूसरे अर्थ में यह भी कहा जा सकता है कि ज्ञान तो है पर पूरी तरह स्पष्ट न होकर अधूरे में स्पष्ट है,
जो अधूरे में स्पष्ट है<वह पूरा स्पष्ट हो जाए बस इस निमित्त से अलग से कोई आरंभ न करते हुए यहीं से सीधे हो संभलना है,
(ध्यान रहे यह संकेत बहुत ही महत्वपूर्ण है),
ज्ञान पूरा स्पष्ट होते ही सहज ही सारा दिग्भ्रम, सारा संशय, सारा दुःख भंग हो जाता है,
जब तुम व्यवहारतः श्वास के सामने उपस्थित होते हो तब श्वास का ज्ञान अर्थात् श्वास का ज्ञात होना सहज ही होता है,
श्वास के ज्ञात होने को तुम्हें अलग से कहीं से लाना नही पड़ता,
इसलिए अलग से कुछ भी नही करना है सहज ही उपस्थित श्वास के ज्ञात होने में बस वहीं बने रहना है श्वास का ज्ञात होना स्पष्ट हो जाएगा,
जब श्वास का ज्ञात होना भली-भाँति पूर्ण स्पष्ट अहोता है तब उस भली-भाँति पूर्ण स्पष्टता में बस ज्ञात होना ही भली-भाँति स्पष्टतः रह जाता है,
जैसे जल में रहते हुए भी कमल जल से अस्पृश्य रहता है, अलिप्त रहता है,
इसी तरह श्वास का ज्ञान होते हुए भी श्वास का ज्ञान 'श्वास' अर्थात् क्रिया से अस्पृश्य है, अलिप्त है,
अतः श्वास के ज्ञानमात्र में स्थिति होने पर श्वास अर्थात् क्रिया पर सहज ही नियंत्रण रहता है,
संसार में रहते हुए भी ज्ञानमात्र के निमित्त स्थित-प्रज्ञ<ज्ञानी का संसार से स्पर्श नही होता, लिप्तता नही होती,
जल-कमलवत् सिद्धावस्था के लिए ही साधना का लक्ष्य होना चाहिए.....
_क्या ज्ञात हो रहा है-किसे ज्ञात हो रहा है<यही सापेक्षिक भ्रम-जाल है,

जब क्या ज्ञात हो रहा है-किसे ज्ञात हो
रहा है नही रह जाता है विशुद्धतः बस केवल ज्ञात होना भर ही रह जाता है<तब यही सापेक्षिक भ्रम-जाल से मुक्ति है...

****

01 OCT 2024(i)

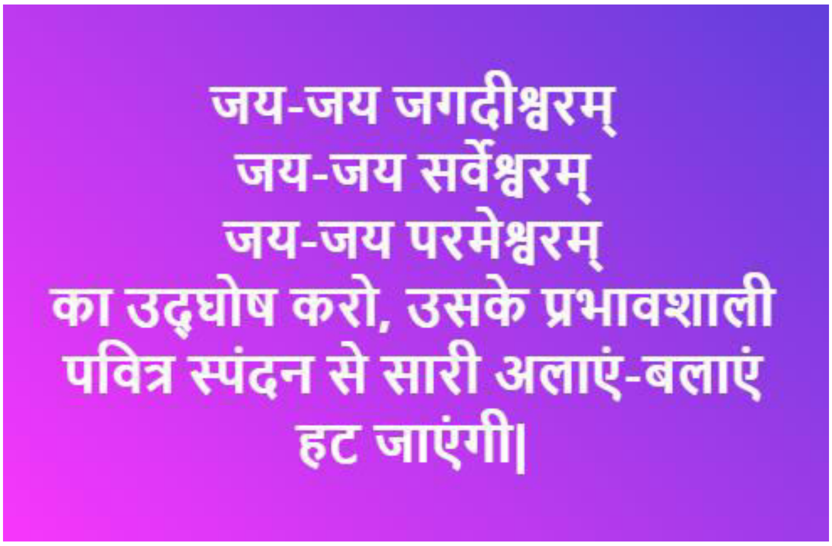

01 OCT 2024(ii)

_जन्मो जन्मों से भटकते तुम आखिर यहाँ तक पहुँच ही गए,
अब आपको और भटकने की जरूरत नहीं है क्योंकि यहाँ आपकी पूर्ण परिपूर्ण दृष्टि खोलने का रास्ता है,
जब 'जैसे ही' आपकी पूर्ण पूर्ण दृष्टि<(दृष्टि) खुलती है, तो आपकी सारी भ्रम और भ्रम समाप्त हो जाएगी।

01 OCT 2024(iii)

_जसू ने अपने पूर्व जन्मों में कई थोपे गए धर्मों की स्थापना की थी,
जो आज भी बहुसंख्यकों में पूज्य और प्रचलित हैं, परन्तु इस जन्म में उन्होंने सीधे सही रास्ता स्पष्ट किया है। आम लोगों को सिर्फ थोपे गए धर्मों में विश्वास है, आम लोगों को भावुक होने के लिए कुछ कृत्रिम भावनाओं पर भरोसा करना पड़ता है,
सत्य का मार्ग पौराणिक लोगों के लिए नहीं है,

वास्तविक <सच्चे लोग ही वास्तविक <सत्य के मार्ग पर चलते हैं।

01 OCT 2024(iv)

सांस लेने की रेखा, लंबाई और समय पर पूर्ण नियंत्रण होना आवश्यक है।

01 OCT 2024(v)

जब दृष्टि नाक के ठीक सामने 45 डिग्री के कोण पर पूरी तरह से नियंत्रित और संतुलित होती है,
अंतर्दृष्टि खुलती है।

01 OCT 2024(vi)

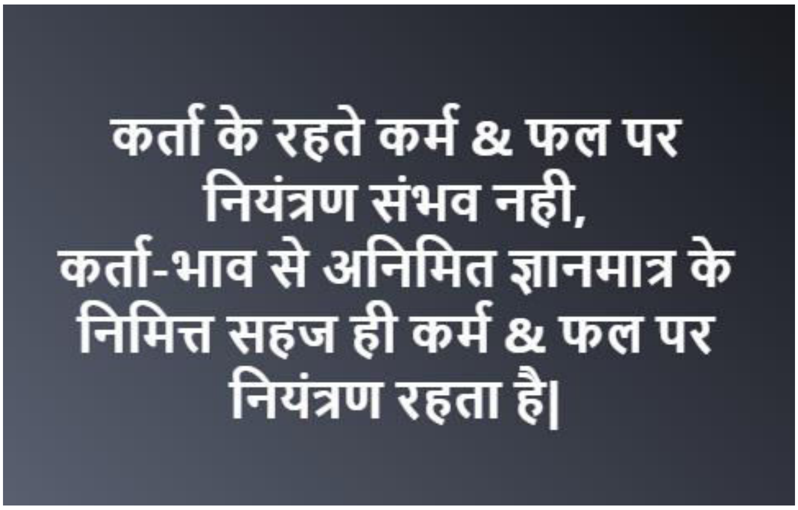

01 OCT 2024(vii)

पूरे नये-ताजे-स्पष्ट होश में आने पर मूलतः भ्रान्ति भंग होती है,
इसलिए पूरे नये-ताजे-स्पष्ट होश में आने के लिए ही साधना<अभ्यास की आवश्यकता है, हर बार होश के रहते-रहते ही और होश में आ जाने पर ही कुशलता है,
और इसी कुशलता में होश से होश बढ़ता जाता है.....

_जैसे कोई दीवार बनाना आरंभ करता है तो दीवार की पहली परत के रहते हुए ही उसमें दूसरी नयी परत चढ़ाता है,
और दूसरी परत के रहते हुए ही उसमें तीसरी नयी परत चढ़ाता है,
इस तरह परत पर परत चढ़ाते-चढ़ाते अंततः १० हाथ की दीवार खड़ी हो जाती है,
अगर दीवार की पहली परत ही गिर जाती तो क्या दीवार कभी पूरी हो पाती,
दीवार की हर पहली परत दूसरी नयी परत के लिए आधार है,
और इस आधार पर ही दीवार संतुलन-पूर्वक खड़ी रहती है,
दीवार के इस उदाहरण में उत्तरोत्तर नये से नये होश में होश पर होश को बढ़ाने का सार्थक संकेत है,
इस सांकेतिक उदाहरण से अवश्य ही तुम्हें अभिप्रेरित हो पूरे नये-ताजे-स्पष्ट होश में ठहरने का निमित्त पूरा करना है,
आरंभ में होश को बढ़ाने के लिए श्वास का अवलंबन है,
इससे सीधे फिर चेतना का अवलंबन है,
श्वास के आने-जाने का मध्य<(अंतराल) पहले की अपेक्षा और नये होश में संभलने के लिए अवलंबन है,
होश भंग हो इससे पहले ही सीधे हो और नये होश में संभल जाना है,
जिस होश में पहली श्वास ज्ञात हुयी उस होश के रहते-रहते अगली श्वास और नये होश में ज्ञात हो यह आवश्यक है,
इस तरह बिना चूके निरंतर ही उत्तरोत्तर नये से नये, ताजे से ताजे, स्पष्ट से स्पष्ट होश में आते ही जाना है,
और इस तरह ४५ मिनट में ही होश का इतना करंट बन जाता है,
कि उस करंट के झटके में अंतःदृष्टि स्पष्ट हो जाती है (अंतःदृष्टि खुल जाती है),
(करंट शब्द लोक-व्यवहार में अधिक प्रभावयुक्त<असरदार तथा संकेतप्रद होने के कारण यहाँ इस शब्द का प्रयोग किया गया है).....
_ध्यान रहे 'ध्यान' में स्थिर होने के लिए ब्रह्मचर्य के पवित्र बल का आधार होना आवश्यक है,
इसलिए पवित्रता-पूर्वक ब्रह्मचर्य का पालन करो, सदा सत्य बोलो, कभी भी झूठ मत बोलो, चोरी मत करो, व्यभिचार मत करो, हत्या मत करो, नशा मत करो, मद्यपान मत करो, किसी के साथ छल मत करो, विश्वासघात मत करो, किसी से द्वेष मत रखो, किसी की निंदा मत करो,
कभी भी किसी को दुःख मत पहुंचाओ,
आचरण का बल होगा तो तभी तुम्हारी ध्यान-दृष्टि नासिकाग्र की आधारीय सीध में संतुलन-पूर्वक स्थिर हो सकती है,
शील-सदाचार की शिक्षा भारतीय-धर्मों में ही नही बल्कि अब्राहमिक-धर्मों में भी है,
उदाहरण के लिए जैसे झूठी गवाही नही देना, चोरी नही करना, व्यभिचार नही करना, हत्या नही करना आदि मुख्य आज्ञाएं बाइबल में भी हैं......
_सम्पूर्ण मानव-जाति के लिए शील-सदाचार प्रथमतः अनिवार्य है,
सभी स्थापित धर्मों में मूलतः शील-सदाचार को लेकर कोई मतभेद तथा विरोधाभास नही है,
जो भी मतभेद है<वह दार्शनिक सिद्धांतों को लेकर है, उपास्य तथा उपासना-पद्धति को लेकर है,
इसी से शील-सदाचार का प्रथमतः महत्व बढ़ जाता है.....
सभी का भला हो,
सभी का मंगल हो,
सभी का कल्याण हो,
सभी में परस्पर मंगलमैत्री-पूर्वक व्यवहार हो....

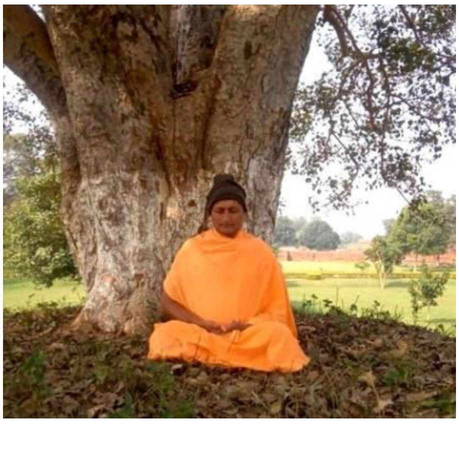

03 OCT 2024(i)

लोकदृष्टि में एक बात बहुत ही प्रचलित है,
_बाहर कहाँ खोजता है,
जिसे तू खोज रहा है,
वह तो तेरे भीतर ही है<यह बात अपेक्षित दृष्टिकोण में होने पर भी बहुत ही संकेतप्रद है,
यहाँ संकेत को बस संकेत ही रहने देना है,
सूर्य की ओर इशारा करती हुई अंगुली सूर्य नही हो जाती,
पर अगर कोई अंगुली को ही सूर्य मान कर उसे ही पकड़ कर बैठ जाए तो यह उसकी मूर्खता ही है,
मूर्ख जन संकेत को संकेत के अर्थ में नही रहने देते संकेत में ही लक्ष्य का आरोप कर लक्ष्य से चूक जाते हैं,
आत्मा, ईश्वर आदि कहना संकेत भर है,
इशारा भर है,
जो कुछ भी कहा जा सकता है<वह सब संकेतमात्र है.....
_जिस ओर का सम्यक् संकेतार्थ निर्देश हो रहा है<उस ओर ही दर्शनमात्र (दिखने भर) के निमित्त रहो,
जैसे ही सम्यग् संकेत की दिशा में दर्शनमात्र पूर्ण होता है,
वैसे ही सम्यग् संकेत की दिशा में लक्ष्य भी स्पष्ट हो जाता है,
जिसे बाहर खोजते-फिरते हो,
वह तुम्हारे भीतर ही है,
ऐसा कहना मार्ग के लिए संकेत भर है,
तुम्हारे भीतर की अंतर्दृष्टि खुलने के लिए मार्ग के परिप्रेक्ष्य में संकेत भर है,
_बाहर से आँख बंद कर लो,
बाहर से आँख बंद करके भीतर से देखो,
तो कुछ भी बाहर नही है,
जो कुछ भी है भीतर ही है,
श्वास का ज्ञान भी भीतर ही हो रहा है,
दृष्टि भी भीतर ही है,
भीतर से भीतर ही श्वास के ज्ञान में दृष्टि रखो,
जब भीतर से भीतर ही श्वास के ज्ञान में दृष्टि भली-भाँति पूरी तरह से स्थिर हो जाती है,
तभी भीतर से भीतर ही भीतर की आँख खुल जाती है,
भीतर से भीतर ही भीतर के पट खुल जाते हैं,
आँख खुलते ही, पट खुलते ही
सारा अंधियारा, सारा भ्रम मिट जाता है,
जब सारा भ्रम हट जाता है,
तब यह भी स्पष्ट हो जाता है,
कि जिस भगवान को, जिस ईश्वर को, जिस ब्रह्म को, जिस आत्मा-परमात्मा को मत के आधार पर खोज रहे थे,
वह सब अपेक्षित दृष्टिकोण का भ्रम ही था,
और भ्रम का दर्शन होना भी जरूरी था,
क्योंकि जब तक भ्रम का दर्शन नही हो जाता,
तब तक भ्रम बना ही रहता है,
भ्रम के दर्शन होते ही भ्रम भंग हो जाता है,
यथार्थ सत्य स्पष्ट हो जाता है,
अंतर्दृष्टि खुलने पर तब फिर न बाहर रह जाता है, और न भीतर रह जाता है,
(बाहर-भीतर होने का अपेक्षित भ्रम हट जाता है,)
न यहाँ रह जाता है न वहाँ रह जाता है,
न यह रह जाता है न वह रह जाता है,
तब न ऐसा है न वैसा है,
सापेक्षता में जो यह-वह, यहाँ-वहाँ, सब जगह होने की जो भ्रान्ति हो रही है,
यह जो कुछ भी प्रतीत हो रहा है<वह सब आरोपित वक्र दृष्टि का>(अपेक्षित दृष्टिकोण का) ही सम्मोहनात्मक भ्रम है,
इसलिए अपेक्षित दृष्टिकोण भंग होते ही

(अपेक्षित दृष्टिकोण का सम्मोहनात्मक भ्रम भंग होते ही) जब यथार्थ सत्य स्पष्ट होता है, तभी यह स्पष्ट होता है कि सारी खोज ही अपेक्षित दृष्टिकोण में है,
अपेक्षित दृष्टिकोण का भ्रम है,
(आत्म-अनात्म, ब्रह्म-माया, द्वैत-अद्वैत आदि कृत्रिम दार्शनिक जाल अपेक्षित दृष्टिकोण का ही सम्मोहनात्मक भ्रम है),
बाहर-भीतर सभी ओर के आर-पार का दर्शनमात्र स्पष्ट होते ही अपेक्षित दृष्टिकोण की भ्रान्ति भंग हो जाती है,
बिना किसी दबाव के, बिना किसी अंतराल के सीधे ही सहज में जैसा है स्पष्ट हो जाता है

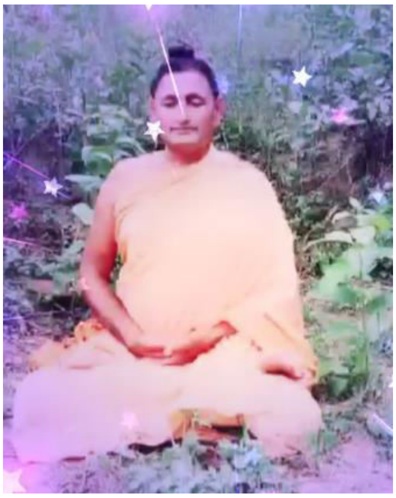

03 OCT 2024(ii)

ब्रह्मचर्य सहज स्वाभाविक है दबाव में अपेक्षित नही है,
वासना सहज स्वाभाविक नही है दबाव में अपेक्षित है....
_नीत्शे, फ्रायड, ओशो जैसे स्वेच्छाचारी अल्पज्ञ मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक ही ब्रह्मचर्य को, संयम को दमन व अप्राकृतिक<प्रकृति विरुद्ध कहते हैं जो अनुपयुक्त है,
सरल,सहज,निर्दोष,निष्पाप,निर्मल,शुद्ध,
पवित्र बने रहो,
ब्रह्मचर्य से पवित्रता है, शुद्धता है,
ब्रह्मचर्य से सरलता है, सहजता है, स्थिरता है,
ब्रह्मचर्य से निर्दोषता है, निष्पापता है,
ब्रह्मचर्य से स्वास्थ्य है, ताजगी है, ब्रह्मचर्य से बल है, स्फूर्ति है,
ब्रह्मचर्य से ओज है, कांति है, प्रफुल्लता है,
ब्रह्मचर्य दृष्टि की स्थिरतापूर्ण संयम के लिए आधारीय बल है,
अगर तुम्हारा मन चंचल है,
अगर तुम्हारे में असहजता को सहन तथा वहन करने की पर्याप्त क्षमता नही है,
तो अवश्य ही ब्रह्मचर्य पालन में कमी है,
ब्रह्मचर्य पालन किए बिना स्थिरता पूर्ण नही हो सकती......
_संबंधों की मर्यादा तथा पवित्रता बनाए रखो,
जरा भी चारित्रिक पतन न हो,
जरा भी आचरणहीनता न आए,
इस निमित्त से तुम्हारी यह संयम-साधना है, पवित्र तपस्या है,
समाज के, परिवार के जो संबंध जिस परिप्रेक्ष्य में, जिस मर्यादा में, जिस अर्थ में है वह उसी परिप्रेक्ष्य में, उसी मर्यादा में, उसी अर्थ में रहे,
यह ग्रहस्थ के लिए पवित्र तपश्चर्या है,
इस तरह के संयम में, सावधानी में शुद्धि है, पवित्रता है,
लोकदृष्टि के अनुसार प्राचीनकालीन आर्य<सूर्यवंश इसका सांकेतिक उदाहरण है,
जहाँ प्राचीन-काल में सूर्यवंश के पुरुष स्वप्न में भी परपत्नी का स्मरण तक नही करते थे,

और नारियां स्वप्न में भी परपुरुष का स्मरण तक नही करती थीं,
यह अद्भुत पवित्र संयम का उदाहरण है,
संयम व सावधानी के लिए इससे अवश्य ही प्रेरित होना चाहिए,
निश्चित ही जिसका अगर संयम पूरा हो जाए,
तो चित्त समाधिस्थ हो जाएगा,
जो जिस अर्थ में है<उसे उसी अर्थ में दिखने भर के निमित्त रहो, तभी तुम्हारी आंतरिक पवित्रता पूर्ण है,
अन्य अर्थ को अन्य अर्थ में आरोपित कर देखने से आंतरिक परिसर (मानसिक & बौद्धिक परिसर) अशुद्ध व अपवित्र हो जाता है.....
_क्या सहज उपस्थित है,
और क्या दबाव में आरोपित है,
इसका भलीभाँति ठीक-ठीक विवेक स्पष्ट होना बहुत ही आवश्यक है,
ध्यान रहे,
जो सहज उपस्थित है,
वहीं ठहरना संभव है,
जो दबाव में आरोपित है,
वहाँ ठहरना असंभव है,
क्योंकि दबाव में गिरना स्वाभाविक है,
सहजता में गिरना नही है,
देखना अपेक्षित दबाव में होता है,
बस दर्शन भर हो रहा है (बस दिखना भर हो रहा है),
बस ज्ञान भर हो रहा है (बस पता भर चल रहा है)<यह बिना किसी दबाव के सहज उपस्थित है,
बस इसी में ठहरना पूरा हो सकता है,
पर आरंभिक-अभ्यासी को दर्शनमात्र (बस दर्शन भर होना), ज्ञानमात्र (बस ज्ञान भर होना) स्पष्ट नही होता है,
इसलिए आरंभिक-अभ्यासी को चाहिए कि वह पहले श्वास के ज्ञान में (पता चलने में) ठहरने का अभ्यास करे,
जब तक श्वास का बस ज्ञात होना भर पूर्णतः स्पष्ट नही हो जाता,
तब तक श्वास के सामान्यतः ज्ञात होने में ही (मालूम होने में ही) ठहरे रहना है|

03 OCT 2024(iii)

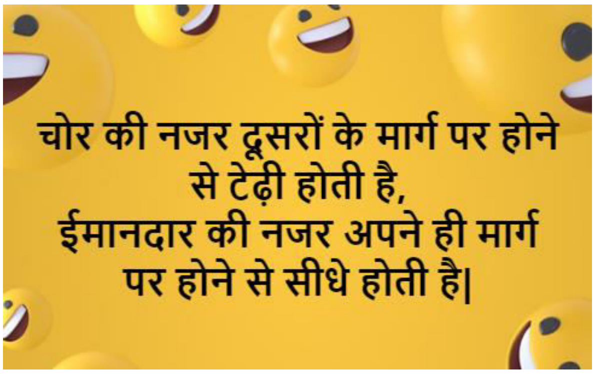

03 OCT 2024(iv)

यह उपदेश विशेषतः सम्यग् सद्धर्म के उपासक-साधकों के लिए है....
_पूर्व कल्प की तरह ही इस कल्प में भी जगदीश्वरम् द्वारा सम्यग् सद्धर्म<उपदेश हो रहा है,
जो भी जगदीश्वरम् के अनुशासन में चल रहे हैं,
वे परंपरागत् स्थापित हुए लोक-धर्म के अनुशासन में आबद्ध नही हैं,
वे शारदा, श्रृंगेरी, गोवर्धन, ज्योतिर्मठ आदि मठों तथा व्यास-पीठ आदि के अनुशासन से ऊपर हैं,
उनके लिए बस सम्यग् सद्धर्म का ही अनुशासन है न कि किसी सापेक्षिक धर्म (संप्रदाय) का,
ध्यान रहे अक्रिय ज्ञानमात्र के निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होने में ही स्थिरता है,
इससे इतर सापेक्षिक दबाव है,
जहाँ सापेक्षिक दबाव में गिरना स्वाभाविक है,
चूँकि सभी मत, संप्रदाय, मठ, पीठ, अखाड़े आदि सापेक्षिक दबाव में स्थापित हैं, इसलिए जो भी सम्यग् सद्धर्म के अनुशासन में हैं उन्हें किसी भी मत, संप्रदाय, मठ, पीठ, अखाड़े आदि के आगे समर्पण नही करना है, उनके उपास्यों के आगे, उनके आचार्यों आदि के आगे समर्पित<अभिवादन नही करना है,
(ध्यान रहे समर्पित<अभिवादन तथा
सामान्य अभिवादन में अंतर है),
यहाँ किसी के लिए भी अपमान का उद्देश्य नही है,
यह सब निष्ठा की, शुद्धि की, पवित्रता की रक्षा के उद्देश्य से कहा जा रहा है,
क्योंकि सापेक्षिक दबाव के आगे समर्पण करने से सापेक्षिक दबाव में गिरना स्वाभाविक है,
जो पूरी तरह से सीधे हो पूरी तरह से सीधे सही-सही ओर ही बस सीधे समर्पित हैं<उनका सापेक्षिक धर्मों में कदापि समर्पण नही हो सकता...
_सापेक्षता से सीधे होना है न कि सीधे से सापेक्षिक हो इधर-उधर होना है,
इसके लिए तुम्हें व्यावहारिक सत्यता का, व्यावहारिक संयम का निमित्त पूरा करना आवश्यक है,
उदाहरण के लिए जैसे सद्गृहस्थ सदाचारी पुरुष स्वप्न में भी परस्त्री का स्मरण तक नही करता, सती नारी स्वप्न में भी परपुरुष का स्मरण तक नही करती<यह संयम का, शुद्धता का, पवित्रता का व्यावहारिक परिचय है,
इससे तुम्हें भी अवश्य ही अभिप्रेरित हो सदाचरणशील होना चाहिए,
इतना संयम पूरा हो जाए कि नासिकाग्र की आधारीय सीध से दृष्टि जरा भी दाएं-बाएं होने न पाए,
तभी तो अंतर्दृष्टि खुलने का लाभ होगा....
_सम्यग् सद्धर्म की अपनी निष्ठा है, अपनी शुद्धता है, अपनी पवित्रता है, अपनी आचार-संहिता है, अपना विनय है, अपना अनुशासन है, अपनी गरिमा है,
जो भी सम्यग् सद्धर्म के अनुशासन में हैं वे सम्यग् सद्धर्म के प्रति अपनी निष्ठा से, अपनी शुद्धता से, अपनी पवित्रता से, अपने आचरण से, अपनी गरिमा से नीचे न गिरें.....
_वासना का उत्पन्न होना ही अशुद्धि है, अपवित्रता है,
इसलिए जरा सी भी वासना उत्पन्न न होने पाए, यथा सहज पवित्रता बनी रहे<इसके लिए दबावरहित अक्रिय ज्ञानमात्र के निमित्त हो यथा सहजतापूर्वक-यथा सजगतापूर्वक सावधान रहना आवश्यक है,
शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक शुचिता बनी रहे यह बहुत ही आवश्यक है,
बाह्य तथा आंतरिक शुचिता परिपूर्ण हो<इसके लिए ही साधना<अभ्यास है,
बाहर-भीतर हर तरफ से शुद्धता के, शुचिता के, पवित्रता के परिपूर्ण होने पर ही निभ्रान्ततः सम्यग् यथार्थ परिस्पष्टता है,

इसलिए सम्यग् सद्धर्म में शुद्धता का, शुचिता का, पवित्रता का बहुत ही अधिक महत्व है,
जगदीश्वरम् द्वारा निर्देशित सम्यग् धर्म-साधना में भली-भाँति सविनय आचरित रहें....

03 OCT 2024(v)

यह उपदेश विशेषतः सम्यग् जिज्ञासुओं के लिए ही है.....
_जब तक अपनी तरफ से दृष्टि स्थापित है तब तक दिग्भ्रम का होना<(दृष्टि का दिग्भ्रम होना) स्वाभाविक है,
जब अपनी तरफ से दृष्टि स्थापित नही होती तब दिग्भ्रम नही होता,
तब सहज ही निभ्रान्त यथार्थ स्पष्ट है,
लोकदृष्टि में एक कहावत प्रचलित है जैसी दृष्टि वैसी सृष्टि<यह लोक-कहावत दिग्भ्रम का ही परिचायक है.....
_हर कोई अपनी ही दृष्टि के कारण अपनी ही दृष्टि में दिग्भ्रमित है,
तथ्यतः कोई दृष्टि स्थापित नही है,
तुमने ही 'ऐसा है-वैसा है' का आरोप करके आरोप-स्वरूप दृष्टि को स्थापित किया है, और अपने आरोप के कारण अपनी ही आरोपित-स्थापित दृष्टि में दिग्भ्रमित हो......
_तथ्यतः पारदर्शिता पूर्णतः स्पष्ट है,
तथ्य से कोई दिग्भ्रम नही है,
तुम अपनी ही दृष्टि के कारण अपनी ही दृष्टि में दिग्भ्रमित हो,
(आरोपित जैसी दृष्टि<आरोपित वैसी सृष्टि का दिग्भ्रम),
तथ्यतः दर्शनमात्र में जैसी
दृष्टि वैसी सृष्टि का दिग्भ्रम नही है,
तथ्य की तथ्यता निभ्रान्ततः यथावत् परिस्पष्ट है,
अतः तथ्य में दिग्भ्रम का होना कदाचित संभव ही नही,
तथ्यतः न दो है न एक, न द्वैत है न अद्वैत,
यह सब तुम्हारा आरोप है,
तादात्म्यतावश स्वसम्मोहन में तुम्हें पता भी नही चल पाता कि कब तुमने आरोप करके मिलावट कर दी,
किसी से तादात्म्य होने पर ही भ्रान्ति से एक होने की धारणा उत्पन्न होती है,
और इस तरह की भ्रान्त धारणाओं का तुम्हारे अध्यारोपित धर्म-शास्त्रों में महिमा-मंडन किया गया है जहाँ से तुम्हें इस तरह की भ्रान्त धारणाओं में भावित होने के लिए बल मिलता है,
काश तुम दृष्टा<दृष्टि से अनिमित्त तथ्यतः दर्शनमात्र के निमित्त हो जाते तो दो, एक, द्वैत, अद्वैत आदि कोई सापेक्षिक भ्रान्ति होती ही नही,
तथ्यतः यथार्थ स्पष्ट न होना सबसे बड़ा दुर्भाग्य है,
तथ्यतः यथार्थ स्पष्ट न होने से ही भ्रान्तिवश तुम्हारी दृष्टि में दुःख की सत्ता बनी हुई है,
अन्यथा दुःख तो है ही नही......
दृष्टि से अनिमित्त दर्शनमात्र में तुम्हारी उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका सहज सिद्ध है,
दर्शनमात्र का आधार परिस्पष्ट न होने से तुम दृष्टि से अनिमित्त नही हो पाते,

अतः तुम जिसे सत्य कहते हो, तुम जिसे 'यह सत्य है' कहते हो<वह तुम्हारी दृष्टि का दिग्भ्रम है,
जब तक तुम्हारी अपनी तरफ से दृष्टि स्थापित है, अध्यारोपित शास्त्र की तरफ से दृष्टि स्थापित है, अध्यारोपित शब्द-प्रमाण पर आधारित दृष्टि स्थापित है तब तक तुम कृत्रिमतः भावनात्मक सम्मोहन में दिग्भ्रमित हो,
तब तक तुम ईश्वर कहो, भगवान कहो, आत्मा-ब्रह्म कुछ भी कहो वह तुम्हारी दृष्टि का दिग्भ्रम है (तुम्हारे द्वारा आरोपित दृष्टि का दिग्भ्रम है), आरोप-स्वरूप<गीता-उपनिषद-वेदांत-दर्शन आदि सब सापेक्षिक-प्रपंच दिग्भ्रम ही है,
(जब तक तुम अपनी तरफ से हो,
जब तक तुम्हारी अपनी तरफ से दृष्टि स्थापित है तब तक दिग्भ्रम का होना स्वाभाविक है),
चूँकि शास्त्र भी दृष्टि ही है,
इसलिए भले ही तुम यह भी कह लो कि अपनी तरफ से नही है वरन शास्त्र की तरफ से है तब भी दृष्टि स्थापित है,
अतः जब तक दृष्टि स्थापित है तब तक तुम कुछ भी घोषणा करो, कुछ भी दावा करो, कुछ भी बन जाओ, कुछ भी हो जाओ<वह सब तुम्हारा दिग्भ्रम है<तुम्हारी दृष्टि का दिग्भ्रम है....
_ध्यान रहे तुम्हें किसी ने भी दिग्भ्रमित नही किया है,
तुम तुम्हारी दृष्टि के कारण ही दिग्भ्रमित हो,
तुम तुम्हारे ही द्वारा आरोप करने की क्रिया के प्रतिक्रियात्मक दबाव में आकर स्वसम्मोहनवश दिग्भ्रमित हुए हो,
अपने ही आरोप के कारण अपनी ही आरोपित दृष्टि में दिग्भ्रमित हुए हो....
ध्यान रहे दिग्भ्रम तभी भंग होगा जब तुम्हारी आरोपित दृष्टि भंग होगी.....
_चूँकि तुम्हारे आरोप करने से ही तुम्हारी यह आरोप-स्वरूप दृष्टि स्थापित हुई है,
इसलिए आरोप के प्रति<आरोप करने के प्रति<आरोप स्थापित होने के प्रति भली-भाँति यथा सजगता-पूर्वक सावधान रहो ताकि कोई भी आरोप स्थापित न होने पाए,
इतनी सावधानी हो जाए, इतनी सजगता हो जाए, इतना संयम हो जाए कि जरा सा भी आरोप स्थापित न होने पाए,
जब जरा सा भी आरोप नही रह जाता तभी पूरी शुद्धि है, पूरी पवित्रता है, पूरी सरलता है, पूरी सहजता है, पूरी शान्ति है, पूरी स्थिरता है<तब ऐसी पूरी शुद्धि में, पूरी पवित्रता में, पूरी सरलता में, पूरी सहजता में, पूरी शान्ति में, पूरी स्थिरता में सहज ही निभ्रान्त यथा-स्पष्टता है..

20 OCT 2024
सूचित किया जाता है>आर्य मित्र नाम से यह पृष्ठ जगदीश्वरम् का नही है,
जगदीश्वरम् (जसु) का अपना कोई सांसारिक<राष्ट्रीय पहचान-पत्र, फोन नंबर इत्यादि नही है,

(जगदीश्वरम् का अपना कोई व्यक्तिगत निजी राष्ट्र नही है,
बल्कि जगदीश्वरम् की सभी राष्ट्रों के मध्य निष्पक्ष भूमिका है,
निष्पक्ष भूमिका वाला ही सबके साथ निष्पक्ष न्याय कर सकता है<जो आगे अब जगदीश्वरम् को करना है,
समझने वाले के लिए इतना इशारा काफी है),
समर्पित शिष्यों का जगदीश्वरम् के प्रति समर्पित हुए फोन नंबर पर ही 'आर्य मित्र' यह पृष्ठ बना हुआ है,
समर्पित शिष्यों द्वारा जगदीश्वरम् को फोन नंबर समर्पित होने से 'आर्य मित्र' यह पृष्ठ जगदीश्वरम् की ओर से ही स्वीकार है न कि समर्पित करने वाले की ओर से,
इतना होने पर भी यह पृष्ठ न जगदीश्वरम् का है और न ही किसी और का,
(समर्पित होने से उक्त फोन नंबर न जगदीश्वरम् के शिष्यों का व्यक्तिगत रह गया है और न ही जगदीश्वरम् का व्यक्तिगत रह गया है,
इसलिए उक्त समर्पित फोन नंबर पर जगदीश्वरम् की ओर से बना यह पृष्ठ किसी का व्यक्तिगत न होकर बस माध्यमिक भूमिका भर में रह गया है),
जगदीश्वरम् का इस पृष्ठ में<(माध्यम में) बस उपदेश भर होता है,
इस पृष्ठ पर जो भी उपदेश लिखा जाता है, और जो भी चित्र-संकेत भेजा जाता है<वह सब सीधे जगदीश्वरम् द्वारा ही रहता है न कि किसी अन्य द्वारा.......
_इस बात का खेद व्यक्त किया जाता है कि फोन आदि साधन चोरी होने से कुछ दिनों से इस 'आर्य मित्र' पृष्ठ पर उपदेश नही हो पाया...

22 OCT 2024(I)

जहाँ भी तुम्हारा ध्यान होता है वहीं की स्पष्टता खुलती है, वहीं की कुशलता खुलती है,
एक चोर भी अनजाने में ध्यान को ही साधता है, होश को ही साधता है, सजगता को ही साधता है, सावधानी को ही साधता है, संतुलन को ही साधता है, कुशलता को ही साधता
है पर उसकी दिशा गलत है,
अगर उसकी दिशा सही हो जाए तो उसकी भी सही मार्ग में दृष्टि खुल सकती है,
जितना होश, जितनी सजगता, जितनी सावधानी एक कुशल चोर की लक्ष्यपूर्वक चोरी करते समय होती है उतना होश, उतनी सजगता, उतनी सावधानी भी अगर तुम्हारी लक्ष्यपूर्वक श्वास के आने-जाने के प्रति हो जाए तो निश्चित ही तुम्हारी दृष्टि खुल सकती है,
जीवन का महानतम लाभ तुम्हें हो सकता है...

22 OCT 2024(II)

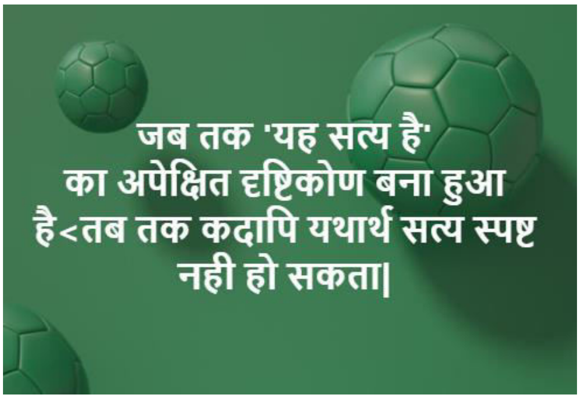

22 OCT 2024(III)

नासिकाग्र की आधारीय सीध से सीधे हो सीधे से सीधे संभलने पर अंततः बस अंतरालरहित दर्शनमात्र ही रह जाता है,
_अंतरालरहित दर्शनमात्र में तुम्हारी भूमिका निमित्तमात्र बस उपस्थिति भर की है<यही तुम्हारी यथार्थतः सहज स्थिति है<इससे इतर होने पर ही तुम सापेक्षिक दबाव में आकर दृष्टा-भाव में<व्यक्ति-भाव में आबद्ध हुए हो,
पर याद रहे व्यक्ति-भाव से अनिमित्त निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होना तुम्हारा सहज स्वभाव है....

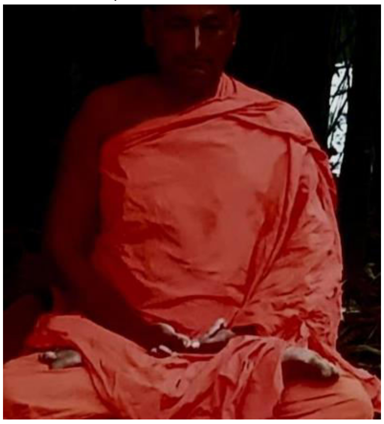

24 OCT 2024(I)

24 OCT 2024(II)

_हर क्रिया का, हर कर्म का आरंभ होने से हर क्रिया के, हर कर्म के पीछे आरंभ का दबाव है,
जहाँ भी आरंभ है वहाँ प्रतिक्रियात्मक दबाव में गिरना स्वाभाविक है,

अतः क्रिया में, कर्म में स्थिरता असंभव है,
अक्रियतः सहज उपस्थित ज्ञानमात्र का आरंभ नही होने से ज्ञानमात्र के पीछे कोई दबाव नही है,
अतः अंतरालरहित<दबावरहित सहज स्थिर ज्ञानमात्र से गिरना असंभव है,
किन्हीं दो अंतों अर्थात् दो अतियों के मध्य ही सापेक्षिक दबाव रहता है,
जहाँ सापेक्षिक दबाव में ही एक अंत से अर्थात् एक अति से दूसरे अंत में अर्थात् दूसरी अति में गिरने की प्रक्रिया अनवरत् जारी रहती है,
पर अंतरालरहित होने से ज्ञानमात्र में कोई भी अंत अर्थात् कोई भी अति नही है,
सभी अंतों अर्थात् सभी अतियों के आर-पार होने से ज्ञानमात्र में सापेक्षिक दबाव नही है,
अतः मध्य का सापेक्षिक दबाव नही होने से सहज स्थिर ज्ञानमात्र से गिरना असंभव है,
कर्ता-भाव के रहते कदापि दबाव पर नियंत्रण संभव नही,
कर्ता-भाव के रहते कदापि कर्म पर<उसके फल पर, क्रिया पर<उसकी प्रतिक्रिया पर संतुलनपूर्वक नियंत्रण संभव नही, कर्ता-भाव से अनिमित्त ज्ञानमात्र के निमित्त सहज ही संतुलनपूर्वक पूर्णतः नियंत्रण रहता है,
यह आश्चर्य की बात है कि जब तक नियंत्रण करने वाला कोई (कर्ता) रहता है तब तक नियंत्रण नही हो पाता,
पर जैसे ही कोई नियंत्रण करने वाला नही रहता तब सहज ही नियंत्रण रहता है,
जैसे ही कर्ता-भाव से अनिमित्त ज्ञानमात्र के निमित्त<निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होना होता है तब सहज ही नियंत्रण हो जाता है,
पर यह तुम्हारा दुःखद दुर्भाग्य है कि तुम कर्ता-भाव से अनिमित्त हो ही नही पाते, कर्ता होना तुम्हारी बहुत ही गहरी तल्लीनता में है,
दर्शनमात्र से इतर द्दष्टामूलक साक्षी-भाव के दबाव में संस्कारवश<आदतन तुम कर्ता होने के लिए मजबूर हो,
यह मूर्छावश तल्लीनता में तुम्हारी इतनी गहरी आदत है कि यह तुम्हारे लिए तुम्हारा स्वभाव सा हो गया है,
पर ध्यान रहे कर्ता-भाव के रहते दुःखद भव-बंधन के चक्र से मुक्ति हो यह कदापि संभव नही,
अतः कर्ता-भाव से, कर्म से, क्रिया से अनिमित्त हो अक्रियतः सहज स्थिर ज्ञानमात्र के निमित्तमात्र हो जाओ<तभी सम्पूर्णतः दुःखों से, क्लेशों से मुक्ति है,
ध्यान रहे यह निर्देश विशेषकर अक्रियतः ज्ञानमात्र में निष्ठावान साधकों के लिए है,
पर ध्यान रहे लक्ष्यपूर्वक कर्म में निष्ठा रखने वाले, फल में निष्ठा रखने वाले, परिणाम में निष्ठा रखने वाले सामान्य जनों को सकारात्मक लक्ष्य के साथ सकारात्मक>कुशल कर्मों का निमित्त पूरा करना अनिवार्यतः आवश्यक है,
सकारात्मक>कुशल कर्मों का निमित्त पूरा होने पर ही ज्ञानमात्र के निमित्त<निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होने के लिए सहजता हो पाती है उससे पहले नही,
कुशल कर्मों का-पुण्य कर्मों का निमित्त पूरा होने पर ही ज्ञानमात्र में सहजतापूर्वक निष्ठा हो पाती है उससे पहले नही,
सामान्य जनों को झूठ, छल, धोखाधड़ी, बेईमानी, धूर्तता, घमंड, चोरी, हत्या, व्यभिचार, जुआ, मद्यपान, धूम्रपान आदि हर तरह के नशे इत्यादि<सभी तरह के पापों से पूर्णतः विरत हो सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय, मद्यनिषेध, अपरिग्रह, उपकार, कृतज्ञता, विनय, मैत्री, करुणा, मुदिता, दया, क्षमा, धैर्य, सहनशीलता, तपश्चर्या, संयमशीलता, उपेक्षा, प्रज्ञा, समाधि, शान्ति, स्थिरता, सरलता, शुद्धता, पवित्रता आदि सभी तरह के कुशल<पुण्यों का निमित्त पूरा करना अनिवार्यतः आवश्यक है<इसके बिना सद्गति नही......
क्रमशः

26 OCT 2024(I)

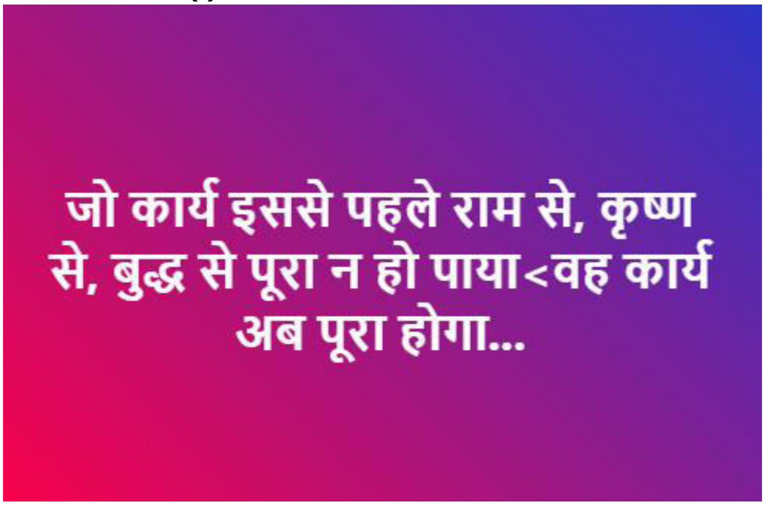

26 OCT 2024(II)

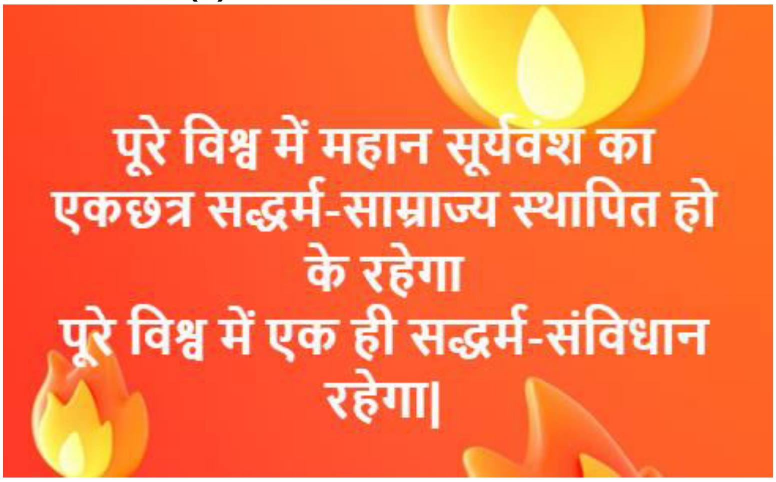

26 OCT 2024(III)

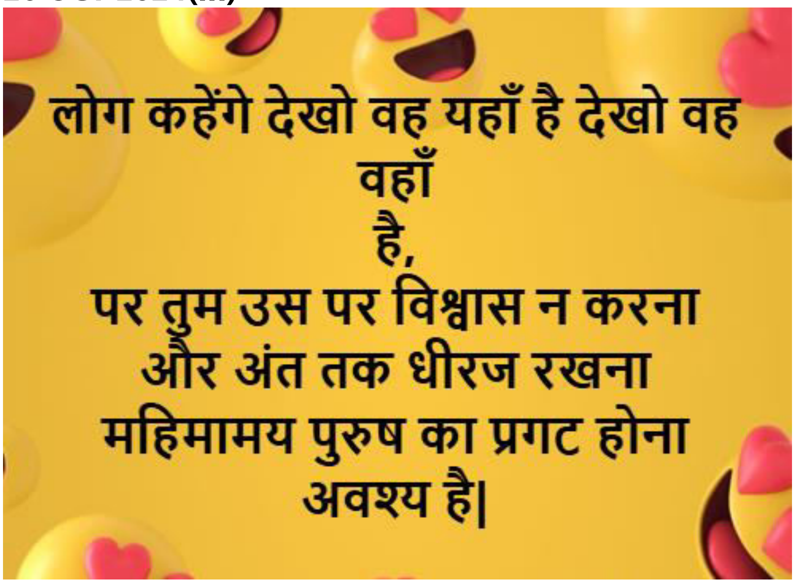

03 OCT 2024(IV)

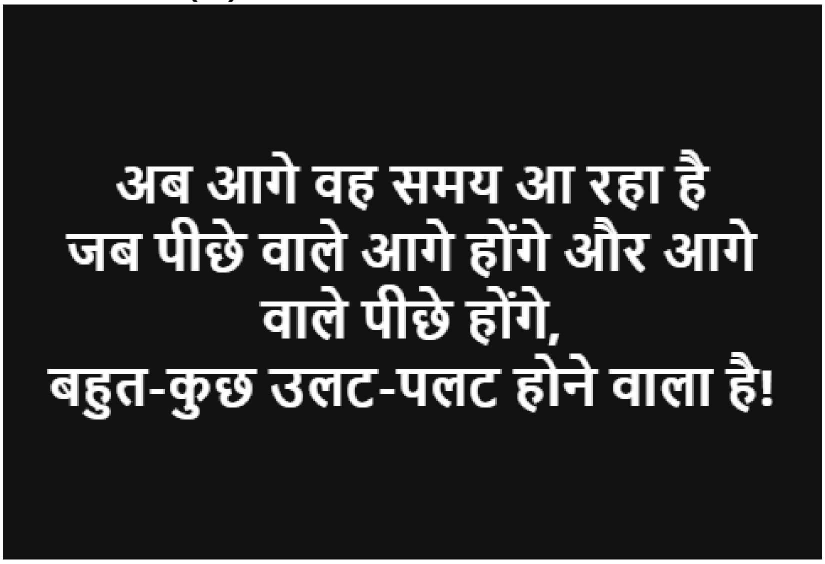

26 OCT 2024(V)

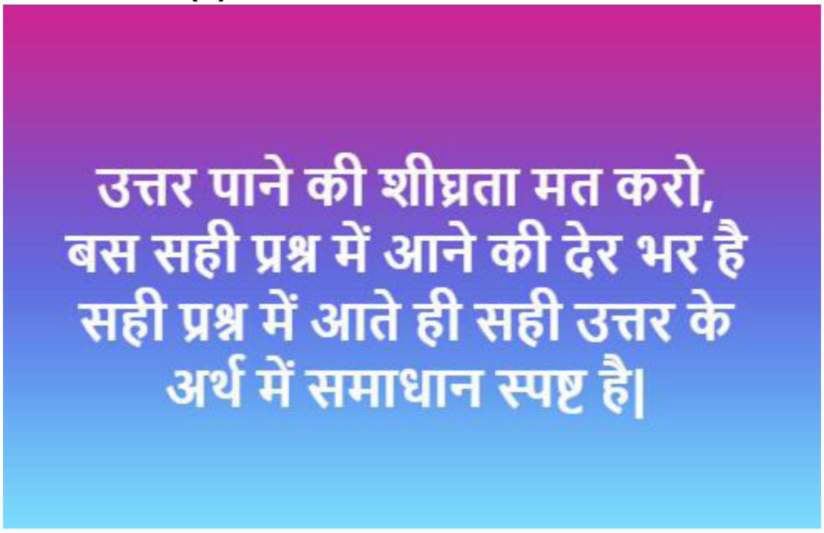

26 OCT 2024(VI)

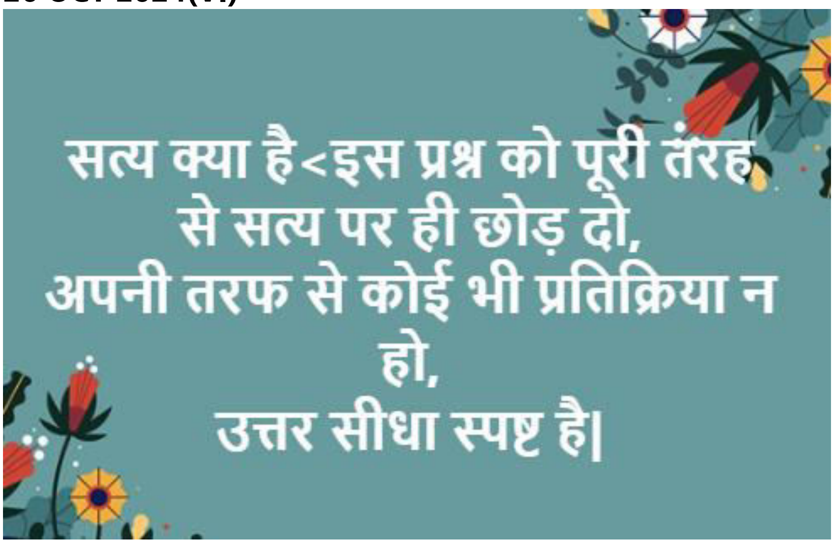

26 OCT 2024(VII)
_सीधे वर्तमान से वर्तमान में उपस्थित होना है,
वर्तमान से जरा सा भी इतर नही होना है,
न अतीत की याद में, न भविष्य की चिंता में.....
पूरी तरह से बस वर्तमान में ही उपस्थित रहना है,
पूरी तरह वर्तमान में उपस्थित होने का निमित्त पूरा होने पर ही सहज-स्थिर स्थिति का अनुत्तर लाभ हो पाता है....
_उत्तरोत्तर सूक्ष्मता के क्रम में हर जाने तथा आने, हर बीतने तथा उत्पन्न होने के ठीक मध्य में उपस्थिति होती रहे,
इस तरह जब दृष्टि का अंततः सबसे सूक्ष्मता के मध्य में उपस्थिति का निमित्त पूरा होता है<तभी अंतरालरहित दर्शनमात्र स्पष्ट होता है,
दो अतियों के ठीक मध्य के संतुलन पर ही पूर्णतः वर्तमान की स्थिति है<जहाँ से सामान्यतः गिरना नही होता,
लोकदृष्टि में सामान्यतः वर्तमान की बात अपेक्षाकृत वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में ही होती है वर्तमान की पूर्णता के परिप्रेक्ष्य में नही होती......
वर्तमान की पूर्णता क्या है<यह सामान्य जनों की कल्पना से बाहर है,
सामान्य जनों की क्षमता अपेक्षाकृत वर्तमान को ही धारण करने की होती है......
_वर्तमान अर्थात् अपेक्षाकृत वर्तमान नही अपितु वर्तमान की पूर्णता कहना ही मार्ग की पूर्णता का संकेत है......
_सम्यग् मार्ग में पहले की अपेक्षा और सीधे हो संभलने के लिए ही वर्तमान की बात की जाती है<जो मार्ग के दृष्टिकोण से बहुत ही आवश्यक है अन्यथा वर्तमान का कोई अर्थ नही है,
वैसे भी यथार्थतः वर्तमान का कोई अर्थ नही है,
आरोपित वक्रदृष्टि में ही वर्तमान का भ्रम हो रहा है,
वर्तमान से उत्तरोत्तर वक्रता में ही समय का भ्रम हो रहा है,
सामान्यतः जिसे वर्तमान कहा जाता है<वह भूत-भविष्य के सापेक्ष ही है,
जब तक भूत-भविष्य है<तभी तक वर्तमान भी है,
भूत-भविष्य है तो उसके मध्य का अंतराल वर्तमान भी है......
नासिकाग्र की केंद्रीय सीध में जब सापेक्षिक दबाव में बिखरी हुई दृष्टि का सिमटाव हो जाता है<तब अंततः वर्तमान की भ्रान्ति भी भंग हो जाती है......
न आना-न जाना-न ठहरना>
न आना-न जाना=ठहरने की पूर्णता.....
न भविष्य-न भूत-न वर्तमान>
न भविष्य-न भूत=वर्तमान की पूर्णता.....
उक्त संदर्भ में सम्यग् मार्ग का संकेत स्पष्ट है...

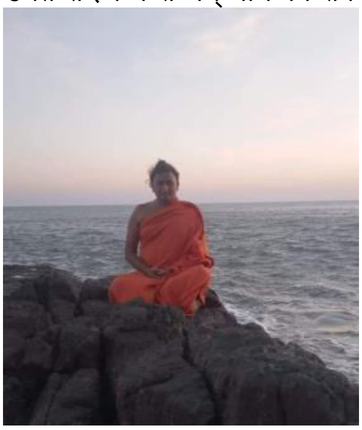

28 OCT 2024(I)
यह भी संकेत है>
कि भारत में ही विश्व की सर्वोच्च धर्मसंसद स्थापित होगी<जिसमें सिद्ध<साधक ही सांसद की निमित्त-भूमिका में होंगे...
_अयोध्या भले ही राजनैतिक राजधानी रहेगी पर उत्तरप्रदेश के जिला-बदायूं>तहसील-बिसौली क्षेत्र पर से सद्धर्म अनुशासन आरंभ होगा और उत्तराखंड की पवित्र भूमि पर से पूरे विश्व में सद्धर्म-शासन चलेगा....

28 OCT 2024(II)

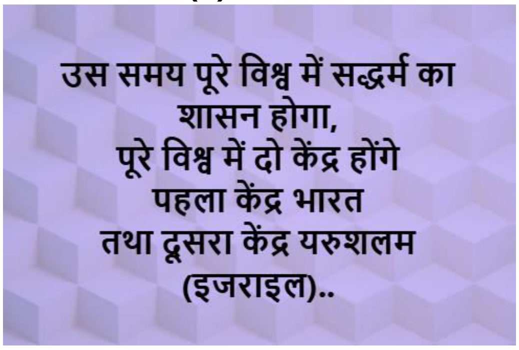

28 OCT 2024(III)

यह भी संकेत है>
कि भारत में ही विश्व की सर्वोच्च संसद>
(सम्यग् सद्धर्म-संसद) स्थापित होगी<जिसमें सिद्ध<साधक ही सांसद की निमित्त-भूमिका में होंगे...
_अयोध्या भले ही राजनैतिक राजधानी रहेगी पर उत्तरप्रदेश के जिला-बदायूं>तहसील-बिसौली क्षेत्र पर से सद्धर्म-अनुशासन आरंभ होगा और उत्तराखंड की पवित्र-भूमि पर से पूरे विश्व में सम्यग् सद्धर्म-शासन चलेगा...

28 OCT 2024(IV)

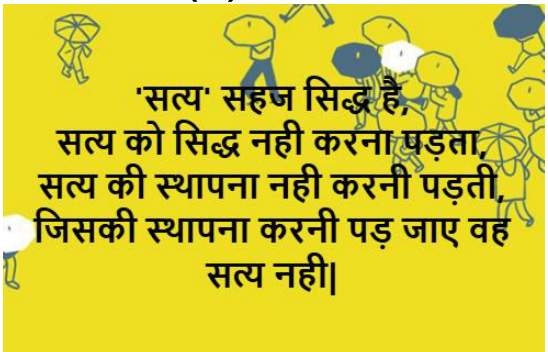

28 OCT 2024(V)

_तुम्हारी सहज ही उपस्थिति है,
तुम्हें तुम्हारी उपस्थिति कहीं से लानी नही है,
तुम्हें न कहीं से ज्ञान लाना है, न कहीं से दर्शन लाना है,
जहाँ तुम्हारी उपस्थिति होती है<वहाँ का ज्ञान, वहाँ का दर्शन सहज ही होता है,
बस तुम्हें सीधे हो संभलने का निमित्त भर पूरा करना है,
तुम्हें नासिकाग्र की आधारीय सीध से सीधे हो उत्तरोत्तर सीधे से सीधे सीध में संभलते जाना है,
नासिकाग्र की आधारीय सीध से जिस सीध में श्वास का ज्ञान हो रहा है<उस सीध का मिलान करने पर जो सीध सुनिश्चित होती है<उसी सीध में भली-भाँति स्थिरतापूर्वक संभले हुए रहना है,
उसी सीध में भली-भाँति संतुलनपूर्वक दृष्टि को स्थिर रखना है,
तुम्हें उस सीध से अन्यत्र कहीं भी नही भटकना है, उसी सीध में हर बार श्वास का आना-जाना ज्ञात होता रहेगा,
एक भी श्वास बिना ज्ञात हुए नही छूटेगी,
अगर लगातार एक घंटे तक भी हर श्वास उसके ठीक समय पर ज्ञात होती रही तो इतने भर में ही भीतर से इतनी सजगता, इतना होश बढ़ जाएगा, इतनी स्फूर्ति, इतना बल बढ़ जाएगा कि जिससे तुम फिर पहले की तरह दीन-हीन, असहाय नही रह जाओगे,
यह ध्यान की ही महिमा है कि जहाँ भी तुम्हारा ध्यान रहता है वहाँ की ही स्पष्टता होती है,
वहाँ की ही सच्चाई खुलती है,
जब भी तुम ध्यान में बैठो पूरी तरह से निश्चिंत होकर बैठो ताकि तुम्हारा ध्यान पूरी तरह से ध्यान में ही रहे,
जब भी तुम ध्यान में बैठो पूर्वाग्रह से मुक्त होकर बैठो ताकि पूर्ववत् आभास न हो,

जब भी तुम ध्यान में बैठो पहले की तुलना में दृष्टिकोण स्थापित न हो,
पहले की तुलना में देखने पर ही तुलनात्मक दृष्टिकोण स्थापित होता है,
(पहले की अपेक्षा में देखने पर ही अपेक्षित दृष्टिकोण स्थापित होता है),
कम से कम ध्यान के समय में इस पर संयम होना आवश्यक है,
इस तरह से भली-भाँति सजगतापूर्वक संभले हुए रहना है कि जरा सा भी अपेक्षाकृत<तुलनात्मक दृष्टिकोण स्थापित न हो,
पहले की अपेक्षा में, तुलना में जरा सी भी प्रतिक्रिया उत्पन्न न हो,
तभी यह क्षण पहले से अस्पृश्य बिल्कुल नया क्षण होगा,
बिल्कुल नये क्षण में बिल्कुल नये होश में ही यथार्थ सच्चाई स्पष्ट होती है,
ठीक सीध में ठीक समय पर उपस्थित होना ही साधना है...

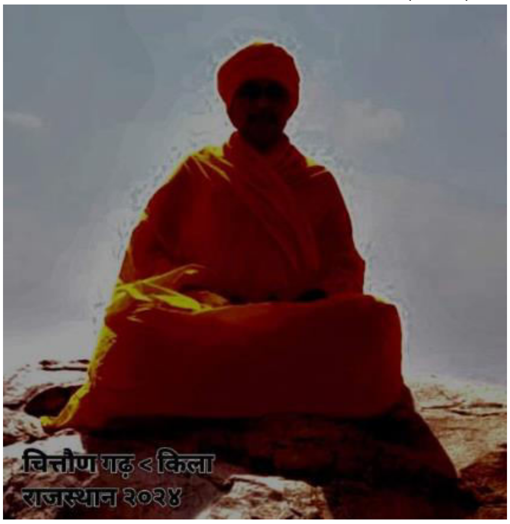

30 OCT 2024(I)

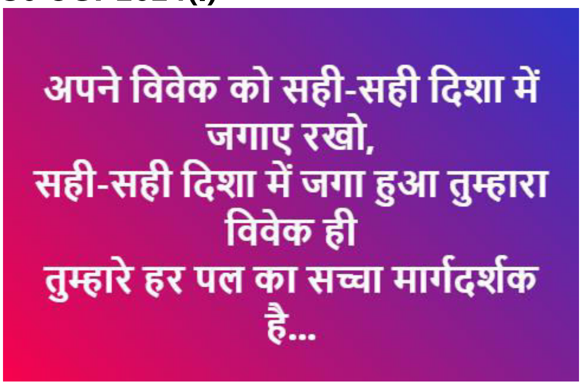

30 OCT 2024(II)

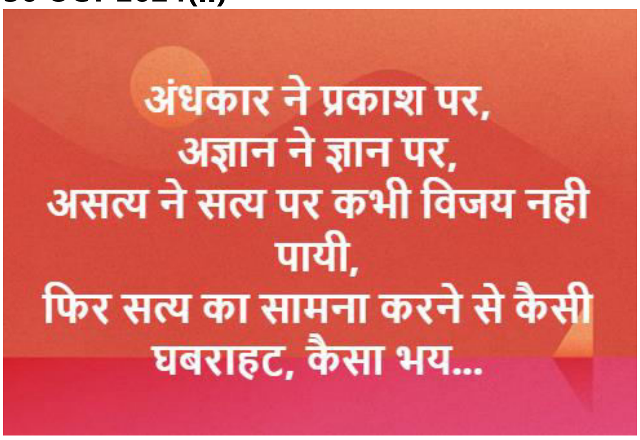

30 OCT 2024(III)

30 OCT 2024(IV)

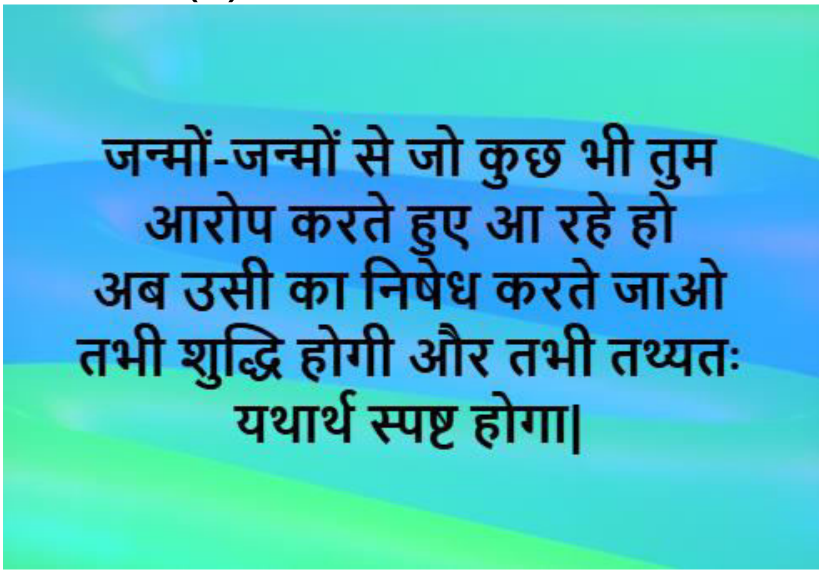

30 OCT 2024(V)

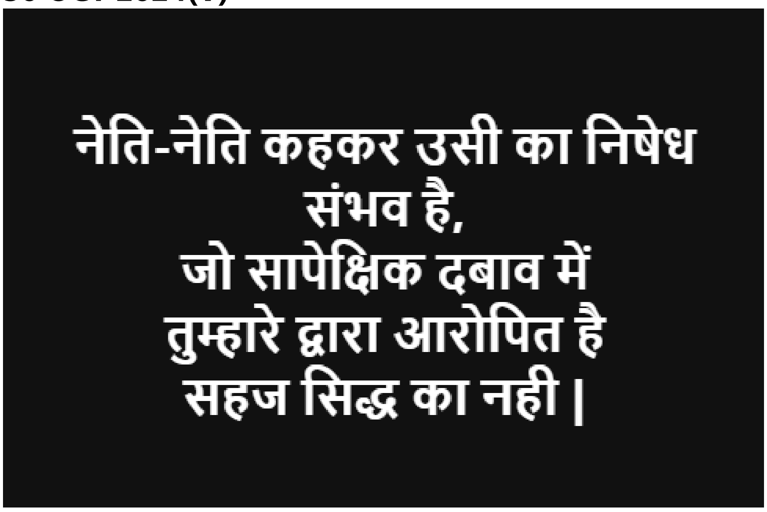

30 OCT 2024(VI)
जो जिस अर्थ में है<उसे उसी अर्थ में दर्शनमात्र के निमित्त रहना है,
अन्य अर्थ को अन्य अर्थ में आरोपित कर नही देखना है, मिलाकर नही देखना है सम्यग् मार्ग की यह शुद्धि है, यह पवित्रता है,
अगर तुममें यह शुद्धि है, यह पवित्रता है तो तुम सम्यग् मार्ग में हो अन्यथा सापेक्षिक मार्ग में हो,
बिना कुछ भी मिलाए जो जिस अर्थ में है<उसका उसी अर्थ में जब दिखना भर होता है तभी उस अर्थ की निभ्रान्त सत्यता स्पष्ट होती है,
निभ्रान्त सत्यता स्पष्ट होने पर ही पूर्ववत भव-बंधन से मुक्ति है....
_लोक प्रचलित नेति-नेति इति वेदानुशासनम् की पूर्णता में ही सम्यग् सद्धर्म का अनुशासन है, नेति-नेति यह वेदांत की पूर्णता का मार्ग-संकेत है<जहाँ द्वैत-अद्वैत आदि सभी सापेक्षिक मतों का अंत हो जाता है,
नेति-नेति, चरैवेति-चरैवेति अर्थात् न
यह-न यह कहते हुए चलते रहो-चलते रहो,
यह भी नही, यह भी नही बस चलते ही चलो-चलते ही चलो,
जो कुछ भी है<सब का निषेध करते हुए चलते ही रहना है कहीं भी रुकना नही है सतत् चलते ही रहना है,
जहाँ भी रुक जाओगे वहीं^वहाँ का दृष्टिकोण स्थापित हो जाएगा,
अपनी तरफ से दृष्टिकोण स्थापित न होने पाए,
इसके लिए ही संकेत अर्थ में नेति-नेति, चरैवेति-चरैवेति का मार्ग-संकेत है,
आत्मा-अनात्मा, ब्रह्म-शून्यता, द्वैत-अद्वैत आदि कोई भी अपेक्षित दृष्टिकोण स्थापित न हो<इसके लिए ही संकेत अर्थ में नेति-नेति<यह निषेधमुख निर्वचन है,
सामान्यतः प्रचलित वेदांती आत्मा-ब्रह्म को अर्थात् अपने अपेक्षित मत को सिद्ध करने के लिए (स्थापित करने के लिए) नेति-नेति कहते हैं,
पर आत्मा-ब्रह्म इस अपेक्षित मत के निषेध के लिए नेति-नेति नही कहते,
अगर तुम उन्हें कहो इतनी कंजूसी क्यों करते हो, और इससे आगे नेति-नेति कहकर आत्मा-ब्रह्म इस अपेक्षित मत का भी (अपेक्षित दृष्टिकोण का भी) निषेध कर दो,
पर इसके लिए वे तैयार नही हो सकते,
क्योंकि अपेक्षित दृष्टिकोण के पीछे का दबाव ही कुछ ऐसा है कि अपेक्षित दृष्टिकोण छूटता नही,
सामान्य जन अपेक्षित दृष्टिकोण में ही जीने के लिए विवश हैं,
प्रचलित वेदांतियों, उपनिषदकारों, गीता आदि स्मृतिकारों, सूत्रकारों, भाष्यकारों, पौराणिकों आदि ने अपना-अपना अपेक्षित दृष्टिकोण स्थापित किया है,
अपेक्षित दृष्टिकोण से सावधान होना आवश्यक है,
क्योंकि अपेक्षित दृष्टिकोण भंग हुए बिना निभ्रान्त स्पष्टता नही है,
सही अर्थ में 'नेति-नेति' यह निषेधमुख निर्वचन अपनी तरफ से कोई भी आरोप स्थापित न हो, कोई भी आरोपित दृष्टिकोण स्थापित न हो इसलिए है......
_ध्यान रहे निषेध उसी का हो सकता है जो सापेक्षिक दबाव में तुम्हारे द्वारा स्थापित है<सहज सिद्ध का निषेध नही हो सकता,
जन्मों-जन्मों से जो कुछ भी तुम आरोप करते हुए आ रहे हो<उसी का नेति-नेति कहकर अब निषेध करते जाओ,
(नेति-नेति कहकर उसी का निषेध संभव है,
जो सापेक्षिक दबाव में तुम्हारे द्वारा आरोपित है
सहज सिद्ध का नही),
अपनी तरफ से तुम भीतर से पूरी तरह खाली हो जाओ,
तुम्हारी तरफ से तुम्हें भीतर से पूरी तरह खाली होने की देर भर है सहज सिद्धता स्पष्ट है, जन्मों-जन्मों से अब तक जो कुछ भी तुमने अपनी तरफ से आरोप किया हुआ है<उस आरोप का जो संस्कार बना हुआ है<उससे खाली होना आवश्यक है तभी पूर्ण शुद्धि है, पूर्ण पवित्रता है,
पूर्ण शुद्धि, पूर्ण पवित्रता में ही तथ्यतः यथार्थ स्पष्ट हो सकता है सापेक्षिक अशुद्धि के रहते, अपवित्रता के रहते कदापि नही,
आत्म-अनात्म, द्वैत-अद्वैत आदि जो कुछ भी अपेक्षाकृत दबाव में सिद्ध है<उसके निषेध के लिए ही नेति-नेति इस निषेधमुख का निर्वचन है,
तथ्यतः यथार्थ स्पष्ट हो इसलिए ही नेति-नेति का निर्वचन है,
पर सूत्रकारों तथा भाष्यकारों ने नेति-नेति के अर्थ का अनर्थ ही किया है,

सूत्रकार हो, चाहे भाष्यकार सब के सब अपेक्षाकृत मत की धारणा के लिए विवश हैं,
उदाहरण के लिए जैसे 'जन्माद्यस्य यतः' कहकर अथवा 'प्रज्ञानं ब्रह्म' कहकर ब्रह्म की अपेक्षाकृत<अपेक्षित धारणा बनती है, अपेक्षित मान्यता बनती है, अपेक्षित मत बनता है,
जिसकी भी अपेक्षाकृत<अपेक्षित धारणा बनती है, अपेक्षित मान्यता बनती है, अपेक्षित मत बनता है<उसी का चित्त में संस्कार बनता है,
ज्ञानमात्र का चित्त में संस्कार नही बनता,
दर्शनमात्र का चित्त में संस्कार नही बनता,
उपस्थितिमात्र का चित्त में संस्कार नही बनता अपितु बना हुआ संस्कार भी अनिमित्ततः निरुद्ध हो जाता है,
(ब्रह्म को सत्य सिद्ध करने के लिए 'यह सत्य है' का अपेक्षित दृष्टिकोण ग्रहण करना पड़ता है,
पर मात्र सत्य के लिए 'यह सत्य है' कहने की आवश्यकता नही पड़ती<यह संदर्भ तुम्हारे विवेक को जाग्रत करने के लिए है),
जब तक द्वैत-अद्वैत आदि कोई भी सापेक्षिक मत स्थापित है<तब तक अशुद्धि है, अपवित्रता है, असहजता है, अशान्ति है, अस्थिरता है,
जब अपनी तरफ से कोई भी दृष्टिकोण नही रह जाता है<तभी पूरी शुद्धि है, पूरी पवित्रता है,
पूरी सहजता है, पूरी शान्ति है, पूरी स्थिरता है,
जब अपनी तरफ से कोई भी दृष्टिकोण नही रह जाता है<तभी तथ्यतः दर्शनमात्र स्पष्ट होता है उससे पहले नही,
जब अपनी तरफ से कहने के लिए कुछ भी नही बचता, कोई मत, कोई मान्यता, कोई धारणा नही बचती, कोई दृष्टि, कोई दृष्टिकोण नही बचता तभी समर्पण पूरा है,
जब तक कुछ भी बचा है<तब तक समर्पण पूरा नही है,
न ही अपनी ओर से, न ही किसी शास्त्र की ओर से, न ही किसी देवता की ओर से अपितु सीधे मात्र सत्य ओर से ही मात्र सत्य स्पष्ट हो इस निमित्त से जब मात्र सत्य ओर ही समर्पण पूर्ण होता है<तभी मात्र सत्य ओर से मात्र सत्य स्पष्ट होता है,
मात्र सत्य ही तुम्हारा इष्ट होना चाहिए, उपास्य होना चाहिए, आराध्य होना चाहिए,
अगर मात्र सत्य ओर ही तुम्हारी निष्ठा होगी, श्रद्धा होगी, भाव-भक्ति होगी, समर्पण होगा तो निश्चित ही मात्र सत्य ओर से अवश्य ही कृपा होगी....
न यज्ञ-हवन-कर्मकांड से, न तीर्थ-व्रत-उपवास से, न पूजा-पाठ-जप-तप से, न योग-ध्यान से बल्कि मात्र सत्यनिष्ठापूर्वक समर्पण पूर्ण होने पर ही मात्र सत्य स्पष्ट होगा,
समर्पण पूरा होने पर अहंकार नही बचता,
ममता नही बचती, आसक्ति नही बचती,
समर्पण पूरा होने पर बस उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका ही शेष रह जाती है,
मात्र सत्य की लोकदृष्टि में प्रतिष्ठित सत्य से कोई तुलना नही है,
मात्र सत्य की अपेक्षित दृष्टिकोण में स्थापित सत्य से कोई तुलना नही है,
उदाहरण के लिए जैसे 'ब्रह्म सत्य है' अथवा 'राम नाम सत्य है' इत्यादि कहना<'यह सत्य है' के अपेक्षित दृष्टिकोण में स्थापित किया गया सत्य है न कि मात्र सत्य.....
'यह सत्य है' के अपेक्षित दृष्टिकोण से सावधान रहो.....
क्रमशः

****

01 NOV 2024(i)
अभी गोपनीयता में ही सम्यग् भगवान् के सम्यग् सद्धर्म का उपदेश जारी है,
अभी सम्यग् भगवान् का गुप्तवास है,
ठीक समय पर ही सम्यग् भगवान् का प्रगट होना सुनिश्चित है,
सम्यग् भगवान् कौन है अभी यह बात सामान्य जनों के लिए गोपनीयता में ही है,
शिव, कृष्ण तथा बुद्ध की पूर्णता में जगदीश्वरम् के नाम से अभी उपदेश हो रहा है,
जब सम्यग् भगवान् के उपदेश का निमित्त पूरा होगा तभी सम्यग् भगवान् के अनुशासन में सम्यग् सद्धर्म-संघ घोषित होगा,
और उसी समय से पूरे विश्व में सम्यग् सद्धर्म-शासन लागू हो जाएगा,
सम्यग् भगवान् के सम्यग् सद्धर्म के अनुशासन में सबसे पहले ५ सिद्ध<साधक तैयार होंगे,
उसके बाद ही अन्य सिद्ध<साधक तैयार होंगे,
आगे सम्यग् सद्धर्म-संघ में एक लाख विवेकानंद तैयार होंगे,
उत्तरप्रदेश के बरेली-मंडल के बिसौली क्षेत्र में जहाँ सम्यग् सद्धर्म का ध्यान केंद्र<भवन बना हुआ है<उस क्षेत्र पर से सम्यग् सद्धर्म-शासन का प्रथम अनुशासन लागू होगा,
उस पवित्र-भवन के इष्ट सम्यग् भगवान् हैं,
उस पवित्र-भवन के द्वारपाल-पहरेदार पवनपुत्र हनुमान तथा रुद्र>शंकर नियुक्त हैं,
उस पवित्र-भवन परिसर में ब्रह्मचर्य की शुद्धि आवश्यक है, अशुद्ध व्यक्ति का वहाँ प्रवेश निषिद्ध है,
सूर्यवंश में उत्पन्न हुए वैवस्वत मनु ने, इक्ष्वाकु ने, ऋषभपुत्र भरत ने, पृथु ने, हरिश्चंद्र ने, शिवि ने, मान्धाता ने, रघु ने, राम ने जो स्वप्न-संकेत देखा था पूर्णता में वह अब पूरा होगा,
अबकी बार सम्यग् सद्धर्म का शासन<अनुशासन पूरे विश्व में होगा,
जो इससे पहले नही हुआ वह अब होगा,
जीसस ने नये नियम में (न्यू टेस्टामेंट में) मजदूर, किसान आदि के जो दृष्टांत-संकेत दिए हैं<उनके पूर्णतः चरितार्थ होने की दिशा यहाँ की तरफ ही है,
बुद्ध-विनय ५०० वर्ष तक ही चल पाया,
अब बुद्ध-विनय में शुद्धि नही रह गयी है,
२००० वर्ष से भी अधिक समय से बुद्ध का धम्म नाना संप्रदायों में बँटा हुआ है,
अब बुद्ध का विनय, बुद्ध का धम्म तथा संघ विकृत हो चुका है,
पर अब सम्यग् भगवान् के विनय में कम से कम १००० वर्ष तक की पूर्णतः शुद्धि की गारंटी तो है ही इससे आगे फिर सम्यग् सद्धर्म भी नाना धर्म<संप्रदायों में बँट जाएगा,
फिर भी नाना धर्म<संप्रदायों में बँटने पर भी सम्यग् सनातन सद्धर्म का प्रभाव अक्षुण्ण रहेगा,
मुहम्मद के जाने के तुरंत बाद ही दीन-ए-इस्लाम शिया-सुन्नी आदि फिरकों में बँट गया,
यह तो सम्यग् सनातन सद्धर्म की शुद्धि का प्रभाव है जो कम से कम १००० वर्ष तक नही बँटेगा....
(बाइबल के अनुसार तथा सूरदास, रविदास आदि साधुओं के अनुसार भी १००० वर्ष तक की पूर्णतः शुद्धि का संकेत है),
१००० वर्ष तक पूरे विश्व भर में १ ही धर्म रहेगा,
वह १ ही धर्म फिर नाना धर्म<संप्रदायों में बँट जाएगा.....
मनुष्यमात्र के सहज स्वभाव का धर्म एक ही है<वह है सम्यग् सनातन सद्धर्म<जो अपौरुषेय है, अकृत्रिम् है, सनातन है, ऋत् है......
पर आज विकृति में हिन्दू, मुहम्मदी, ईसाई, बौद्ध, जैन, सिक्ख, पारसी आदि सभी स्थापित धर्म<संप्रदायों का प्रचलन जोरों पर है फिर भी उनका मूल आधार अंततः सम्यग् सनातन ऋत् सद्धर्म ही है...
_अगर ईसाइयों तथा यहूदियों तथा मुहम्मदियों को अपना भविष्य देखना है तो यरुशलम को देखते रहना चाहिए<वहाँ से उनके भविष्य का संकेत है,
अगर बौद्धों को अपना भविष्य देखना है तो गृद्धकूट परिसर को देखते रहना चाहिए<वहाँ से उनके भविष्य का संकेत है,
अगर हिन्दुओं को अपना भविष्य देखना है तो उड़ीसा में पुरी के मंदिर<मंदिर-परिसर को देखते रहना चाहिए<वहाँ से उनके भविष्य का संकेत है,
पुरी के मंदिर में बलभद्र तथा सुभद्रा के साथ कृष्ण की पूर्णता में यहाँ का संकेत है,
जो उपदेश बुद्ध-विनय, विज्ञान भैरव-तंत्र तथा गीता में हुआ है उसकी पूर्णता में ही जगदीश्वरम् का उपदेश है,
जगदीश्वरम् के उपदेश के बिना बुद्ध का

विनय, शिव का विज्ञान भैरव-तंत्र तथा गीता का उपदेश अधूरा है,
बुद्ध के पटीच्च समुप्पाद के सिद्धांत की बात हो, चाहे अनुपश्यना, विपश्यना आदि की बात हो उन सबकी पूर्णता का संकेत जगदीश्वरम् के उपदेश में है, उसके बिना उक्त सिद्धांत अधूरा है,
शिव का पार्वती को दिया विज्ञान भैरव-तंत्र के उपदेश की पूर्णता का संकेत जगदीश्वरम् के उपदेश में है<उसके बिना विज्ञान भैरव-तंत्र की मूलतः १०८+४ धारणाएं अधूरी हैं,
गीता की नासिकाग्र की बात हो, चाहे निमित्तमात्र की बात हो, चाहे शरणागति की बात हो, चाहे सांख्य, कर्म>कर्मयोग, भक्ति आदि की बात हो सबकी पूर्णता का संकेत जगदीश्वरम् के उपदेश में है.....
_जगदीश्वरम् द्वारा मूलतः उपदेश तो वाणी के माध्यम से सम्यग् सत्संग परिसर में ही होता है<जहाँ हर प्रश्न का, समस्या का प्रत्यक्ष समाधान होता है,
जो उपदेश प्रत्यक्ष वाणी के माध्यम से होता है<वह इंटरनेट-फेसबुक आदि माध्यमों से संभव नही,
इंटरनेट में तो उन जीवंत उपदेशों की सूचना भर ही हो पाती है.....
_पूर्व कल्प के अनुसार ही इस कल्प में भी जगदीश्वरम् का उपदेश हो रहा है,
जो इन उपदेशों से चूकता है<वह अभागा है......
क्रमशः

01 NOV 2024(ii)
प्रतिदिन कम से कम पाँच बार में से दो बार ठीक निर्धारित समय पर ध्यान-अभ्यास में बैठो,
इस तरह प्रमादरहित हो सजग रहो कि एक बार का भी ध्यान-अभ्यास न छूटे,
यहाँ-वहाँ की व्यर्थता में समय को मत गँवाओ,
समय का सार्थक सदुपयोग करो,
जब तक अंतःदृष्टि नही खुलती तब तक सबकुछ व्यर्थ है, कितना भी धन कमा लो, नाम कमा लो सबकुछ व्यर्थ है.....
लक्ष्यपूर्वक ध्यान-अभ्यास में बैठो,
इंटरनेट आदि में ही मत उलझे रहो<इसमें काफी मानसिक तथा बौद्धिक ऊर्जा का ह्रास होता है,
इतनी मानसिक तथा बौद्धिक थकान हो जाएगी कि जब ध्यान में बैठोगे तो सो जाओगे,
पूरे होश में सजग नही हो पाओगे नींद की झपकी आनी शुरू हो जाएगी,
उपदेश भी तभी समझ में आएंगे जब ध्यान-अभ्यास में बुद्धि सूक्ष्म होगी,
इसलिए ध्यान-अभ्यास में बैठना सबसे अधिक महत्वपूर्ण है....
_जो भी है<उसका बल वही है यह स्वाभाविक नियम है,
सहजता ही सहजता का बल है, सजगता ही सजगता का बल है, होश ही होश का बल है, संभलना ही संभलने का बल है, स्फूर्ति ही स्फूर्ति का बल है, गति ही गति का बल है, संतुलन ही संतुलन का बल है, स्थिरता ही स्थिरता का बल है, शान्ति ही शान्ति का बल है, ध्यान ही ध्यान का बल है, प्रार्थना ही प्रार्थना का बल है,
जितना ही सहज होते जाओगे उतनी ही और सहजता बढ़ेगी,
जितना ही सजग होते जाओगे उतनी ही और सजगता बढ़ेगी,
जितना ही होश में आओगे उतना ही और होश बढ़ेगा,
जितना ही कम से कम समय पर संभलना हो पाएगा उतना ही और कम से कम समय पर संभलना हो पाएगा,
जितना ही कम से कम समय पर संभलकर उपस्थित होना हो पाएगा उस अनुपात में उतनी ही अधिक से अधिक स्फूर्ति बढ़ेगी, गति बढ़ेगी, संतुलन बढ़ेगा,
इस तरह उत्तरोत्तर कम से कम समय पर संभलकर उपस्थित होने में इतनी अधिक स्फूर्ति बढ़ सकती है कि तुम एक सेकेंड के हजारवें भाग से भी कम समय पर सही निर्णय ले सकते हो......
_सर्वप्रथम श्वास के आने-जाने के समय पर संभलना है,
कम से कम एक घंटे तक लगातार हर श्वास के ठीक समय पर उपस्थित होना है,
हर आती-जाती श्वास के मध्य<अंतराल में संभलकर हर आती-जाती श्वास के ठीक समय पर उपस्थित हो जाने का नैमित्तिक मापदंड पूरा करना अनिवार्यतः आवश्यक है तभी इससे भी सीधे हो संभलना हो पाएगा,
बार-बार हर श्वास के मध्य के अंतराल में संभलकर उपस्थित होने पर मूर्छा भंग होती है, तंद्रा भंग होती है, बेहोशी भंग होती है, तल्लीनता भंग होती है, तादात्म्यता भंग होती है,
उत्तरोत्तर जितनी ही कम से कम समय पर संभलकर उपस्थिति होती जाएगी उत्तरोत्तर उसी अनुपात में उतनी ही और अधिक से अधिक मूर्छा भंग होती जाएगी, तंद्रा भंग होती जाएगी, बेहोशी भंग होती जाएगी, तल्लीनता भंग होती जाएगी, तादात्म्यता भंग होती जाएगी,

चित्त के बीतने तथा उत्पन्न होने की गति प्रकाश की गति से भी अधिक है,
यहाँ तक कि ब्रह्मांड के फैलने की गति से भी अधिक है,
जितना समय चित्त के बीतने तथा उत्पन्न होने के मध्य लगता है अगर उतने समय में संभलना हो पाया तो निश्चित ही प्रकाश की गति ही क्या ब्रह्मांड की गति का भी अतिक्रमण हो जाता है,
जितना समय चित्त के बीतने तथा उत्पन्न होने के मध्य लगता है अगर उससे भी कम समय पर संभलना पूरा हो गया तब तो चित्त का ही अतिक्रमण हो जाता है,
चित्त का अतिक्रमण होने पर ही सहज स्वभाव अर्थात् उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका स्पष्ट होती है,
जिसने प्रकाश की गति का अतिक्रमण कर दिया, इससे भी आगे ब्रह्मांड की गति का भी अतिक्रमण कर दिया, और इससे भी आगे चित्त की गति का भी अतिक्रमण कर दिया<उसकी सक्षमता का, उसकी समर्थता का वैज्ञानिक कभी कल्पना भी नही कर सकते,
भौतिक चकाचौंध में आकर्षित हुए साधारण जनों की कल्पना का सुपरमैन, सुपरगाॅड भी उसके समक्ष नगण्य है....

03 NOV 2024
ध्यान में तुम्हें अपनी तरफ से कुछ भी नया आरंभ नही करना है,
तुम्हें अलग से उपस्थित भी नही होना है,
क्योंकि तुम पहले से ही उपस्थित हो,
जहाँ भी तुम अभी उपस्थित हो बस वहीं से तुम्हें सीधे हो स्थिरतापूर्वक संभले हुए रहना है,
उत्तरोत्तर सीधे से सीधे हो स्थिरतापूर्वक संभलने का निमित्त पूरा होने पर ही तब सहज-शान्त-स्थिर स्थिति का लाभ हो पाता है,
तुम्हें अपनी तरफ से कोई भी क्रिया-प्रतिक्रिया नही करनी है,
तुम्हें अपनी तरफ से कोई भी आरोप-प्रत्यारोप नही करना है,
तुम्हें अपनी तरफ से कोई भी मत-मान्यता-धारणा नही रखनी है,
ध्यान के समय कोई भी जप-स्मरण आदि करने की आवश्यकता नही है,
ऐसा नही कि जप-स्मरण आदि की उपयोगिता नही है,
अनेक नाम-रूप से एक नाम-रूप में आने पर एक सीमा तक मन एकाग्र होता ही है,
जप-स्मरण से एक सीमा तक मन एकाग्र तो हो जाता है पर समाधिस्थ नही हो पाता,
मन को समाधिस्थ करने के लिए ही ध्यान>समाधि का आश्रय है,
(यहाँ भी तुम्हें शरणागति के परिप्रेक्ष्य में
माध्यम-मंत्र दिया गया है<उसका तुम्हें नमस्कारपूर्वक जप करना है, माध्यम-मंत्र से समर्पित होने पर ही ध्यान की सफलता है,
समर्पित होने पर फिर ध्यान के समय बस केवल ध्यान ही रहता है दूसरा कुछ नही),
जब भी ध्यान में बैठो<तब ध्यान के समय सीधे सहज स्वाभाविक सीध में स्थिरतापूर्वक तुम्हारा बस उपस्थित भर होना पर्याप्त है,
तुम्हारे कर्ता बनने से ही<तुम्हारे कुछ करने से ही ऊर्जा का ह्रास होता है,

जब तुम्हारा निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होना होता है<तब तुम्हारी ऊर्जा का जरा भी ह्रास नही होता.....
जहाँ भी अभी तुम्हारा ध्यान है उसी ध्यान में सीधे हो उत्तरोत्तर सीधे से सीधे संभले हुए रहना है,
तुम्हें तुम्हारा धर्म, तुम्हारी भूमिका स्पष्ट होनी आवश्यक है,
तुम्हारा धर्म हिन्दू, इस्लाम आदि नही है,
तुम्हारा धर्म है ज्ञानमात्र के निमित्त<(दर्शनमात्र के निमित्त)<<निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होना....
इससे इतर होने पर ही तुम सापेक्षिक दबाव में आकर कर्ता-भाव में गिरे हुए हो,
मूर्ख जन ही अज्ञानी मनुष्यों द्वारा अपेक्षित दृष्टिकोण में स्थापित हुए कृत्रिम् धर्मों में उलझे रहते हैं.....
क्रमशः

05 NOV 2024(i)

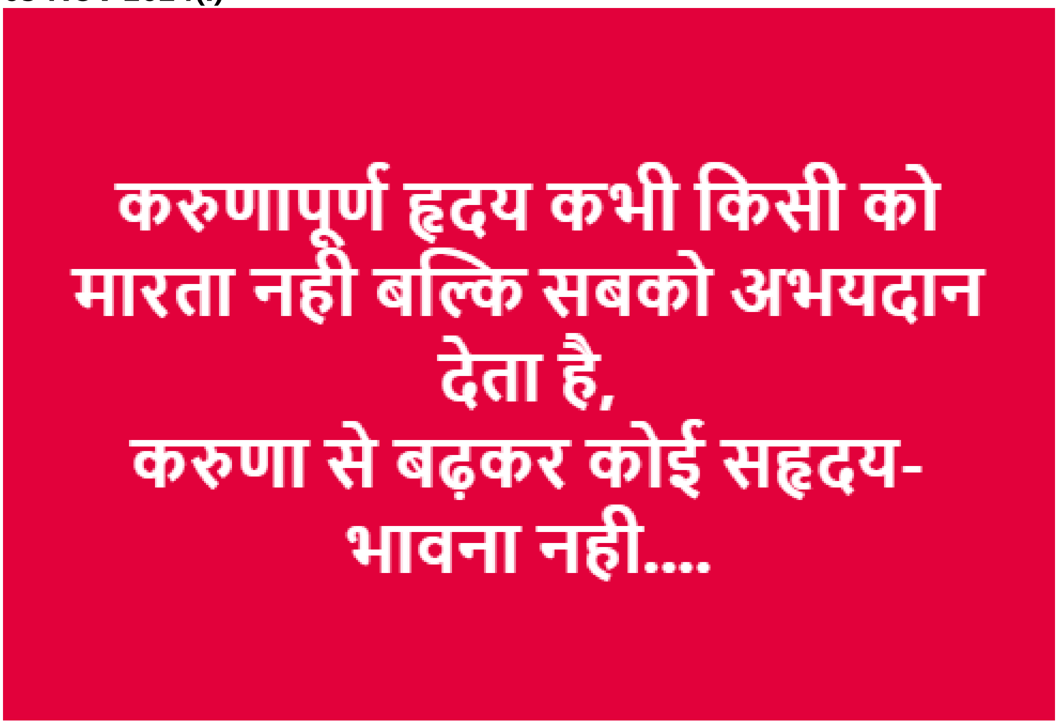

05 NOV 2024(ii)

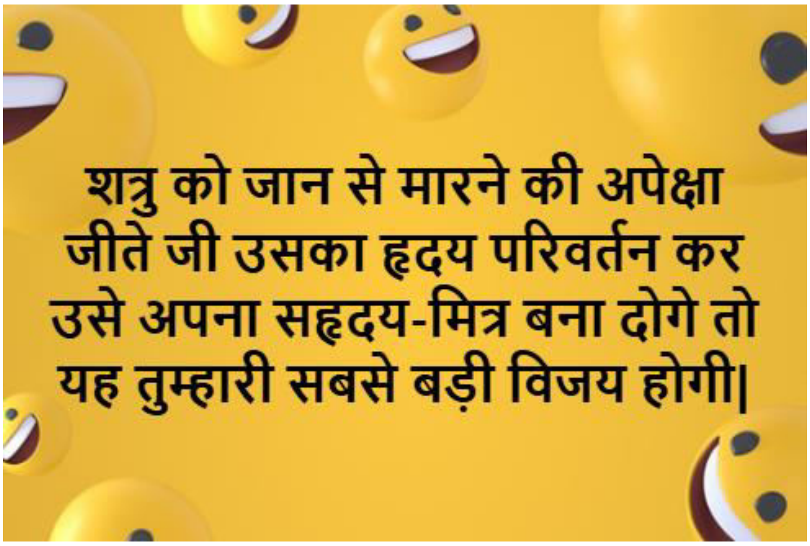

05 NOV 2024(iii)

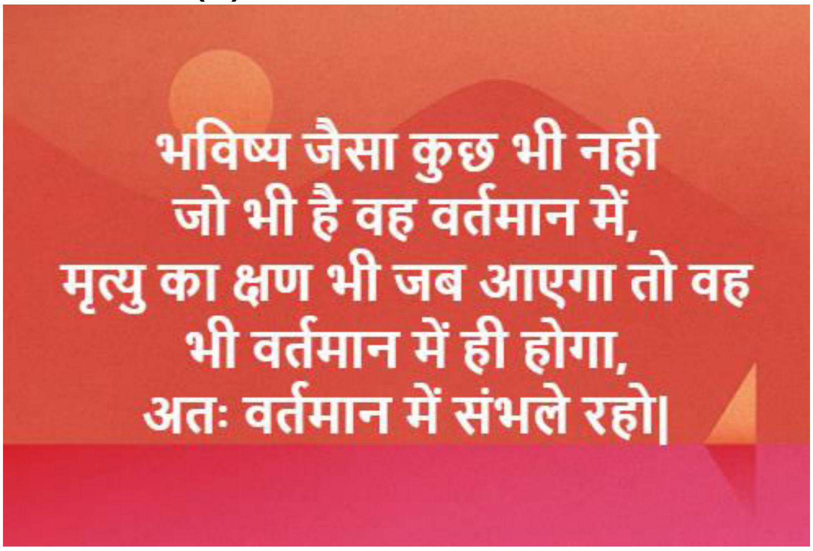

05 NOV 2024(iv)

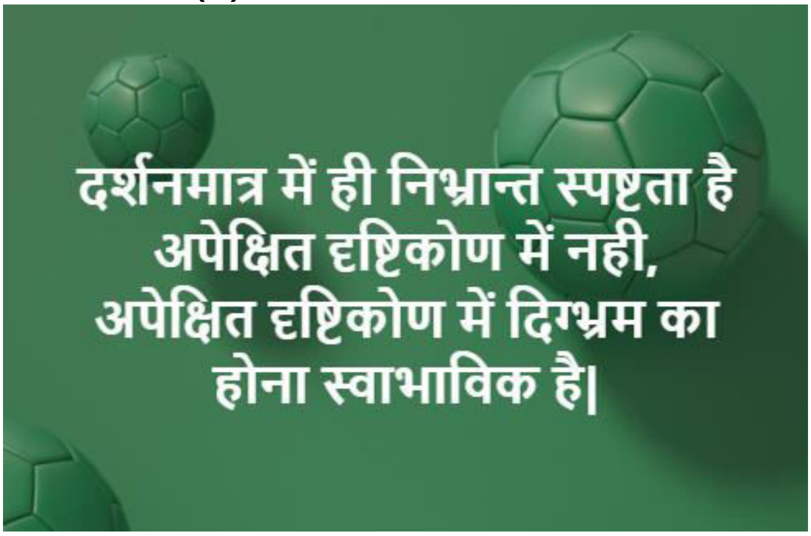

05 NOV 2024(v)

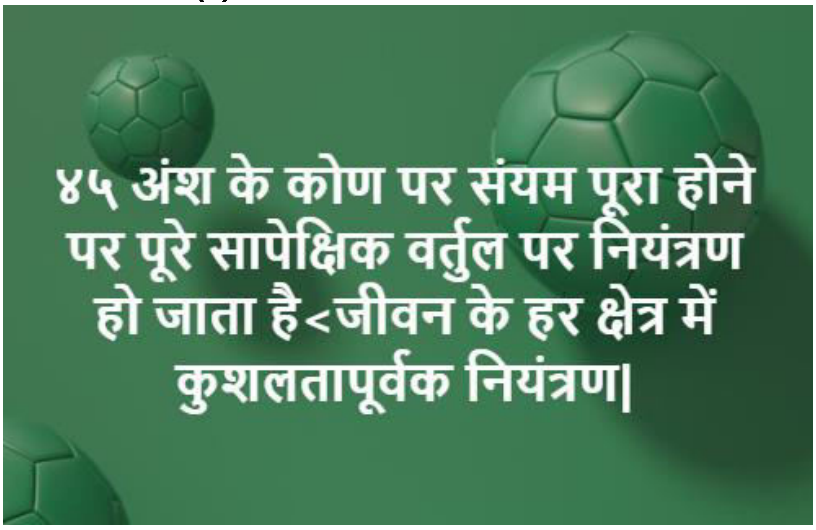

05 NOV 2024(vi)

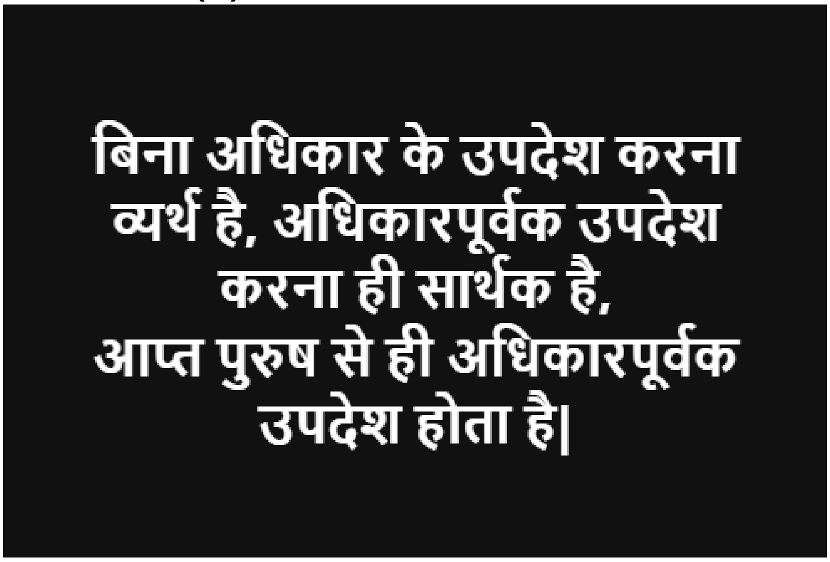

05 NOV 2024(vii)

_इतना होश बढ़ जाए, इतनी सजगता बढ़ जाए, इतनी सहजता बढ़ जाए, इतनी सरलता बढ़ जाए कि काम-क्रोध-लोभ-मोह आदि नकारात्मक आवेगों में गिरना न हो,
होश को, सजगता को, सहजता को, सरलता को बढ़ाने का माध्यम ध्यान ही है.....
नियमित ध्यान-अभ्यास से होश बढ़ता है, सावधानी बढ़ती है, सजगता बढ़ती है, सहजता बढ़ती है, सरलता बढ़ती है, शान्ति बढ़ती है, स्थिरता बढ़ती है, संतुलन बढ़ता है, स्पष्टता बढ़ती है, बल बढ़ता है, स्फूर्ति बढ़ती है, तेज बढ़ता है, ताजगी बढ़ती है,
आरोग्यता बढ़ती है, सक्षमता बढ़ती है, समर्थता बढ़ती है,
ध्यान से दृष्टि की सूक्ष्मता खुलती है, बुद्धि की सूक्ष्मता खुलती है,
ध्यान से ही समझ की बारीकी खुलती है, विवेक की सूक्ष्मता खुलती है,
ध्यान से ही जीवन की सार-सच्चाई खुलती है,
ध्यान के बिना पूरा जीवन ही व्यर्थ है.....
ध्यान रहे यहाँ 'ध्यान' का तात्पर्य लोकदृष्टि में प्रचलित कृत्रिम् ध्यान-विधियों से नही है,
नाक के आगे की आधारीय सीध से सीधे हो सीधे से सीधे वर्तमान के तथ्य का बस ज्ञानमात्र रह जाए अर्थात् बस केवल ज्ञात होना भर रह जाए<(बस दर्शनमात्र रह जाए अर्थात् बस केवल दिखना भर रह जाए)<<तभी ध्यान की सार्थकता पूर्ण है....

लगातार बस सिर्फ मालूम भर होता रहे पर किसे मालूम हो रहा है-क्या मालूम हो रहा है<इस तरफ जरा भी ख़्याल न जाए,
लगातार बस सिर्फ पता भर चलता रहे पर किसे पता चल रहा है-क्या पता चल रहा है<इस तरफ जरा भी ख़्याल न जाए<यह परहेजगारी बहुत ही जरूरी है,
जैसे हकीम किसी मरीज का इलाज करता है तो मरीज को दवा भी देता है, और परहेज भी बताता है,
तो यहाँ 'पता भर चलना'<यह दवा है,
और 'किसे पता चल रहा है-क्या पता चल रहा है'<यह परहेज है,
कुसंग,नशा,झूठ,हत्या,व्यभिचार,चोरी,छल,
विश्वासघात इत्यादि बुराइयों का परहेज होना भी बहुत ही आवश्यक है,
जब तक ज्ञाता-ज्ञेय के सापेक्षिक जाल में उलझे हो तभी तक दुःखद बंधन है,
ज्ञाता-ज्ञेय से अनिमित्त हो ज्ञानमात्र के निमित्त होते ही दु:खद बंधन से मुक्ति है.......
_सदाचार का आधारीय बल होना बहुत ही आवश्यक है,
सदाचरण-संयम-सावधानी के बल पर ही तुम्हारी ध्यान में पूर्णतः स्थिरता संभव है....

07 NOV 2024(i)

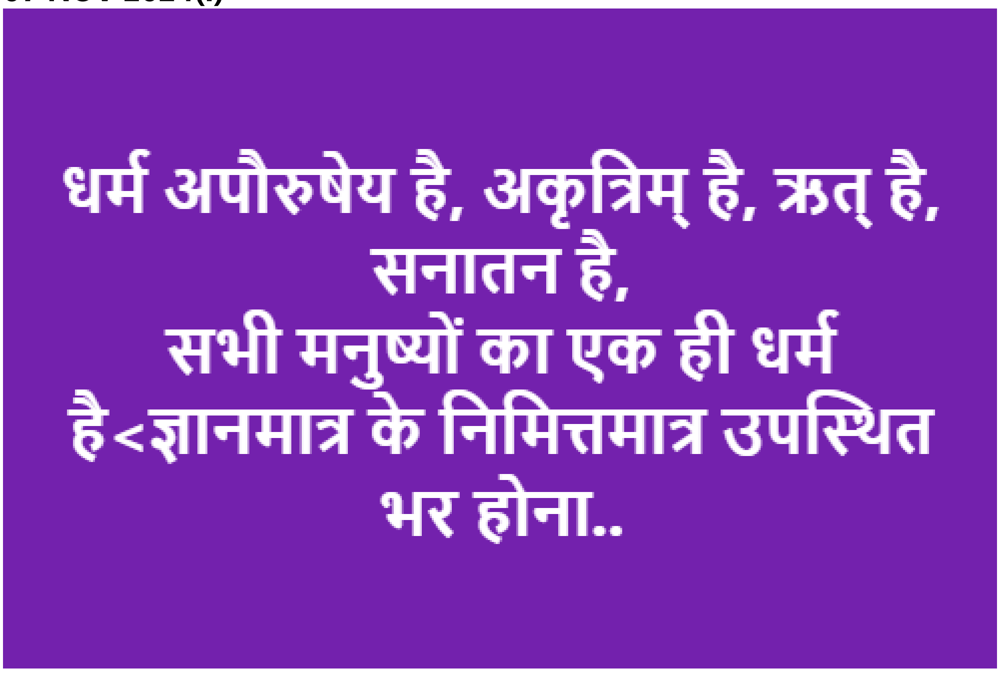

07 NOV 2024(ii)

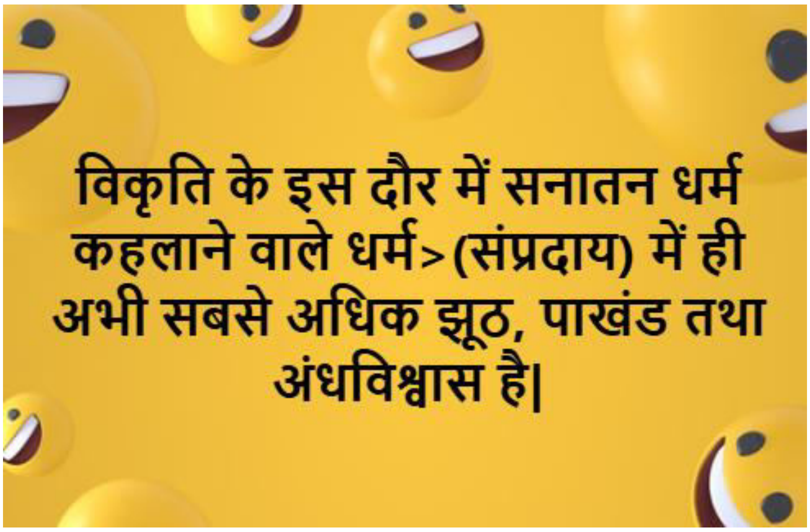

07 NOV 2024(iii)

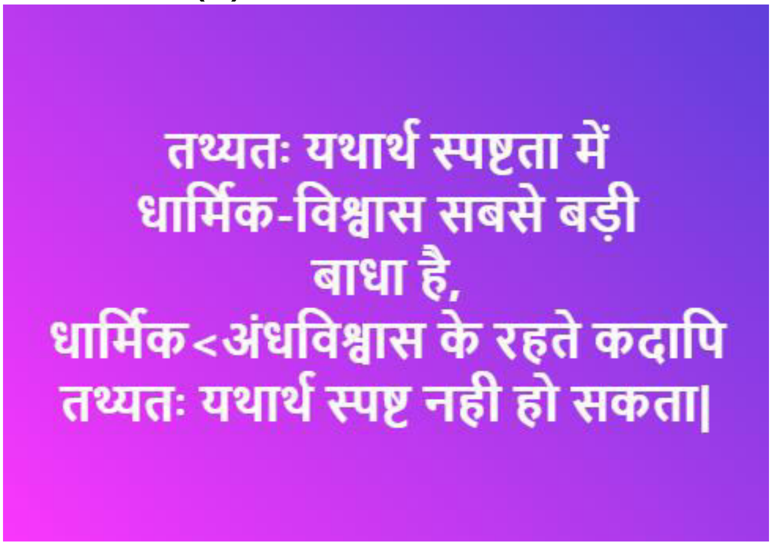

07 NOV 2024(iv)

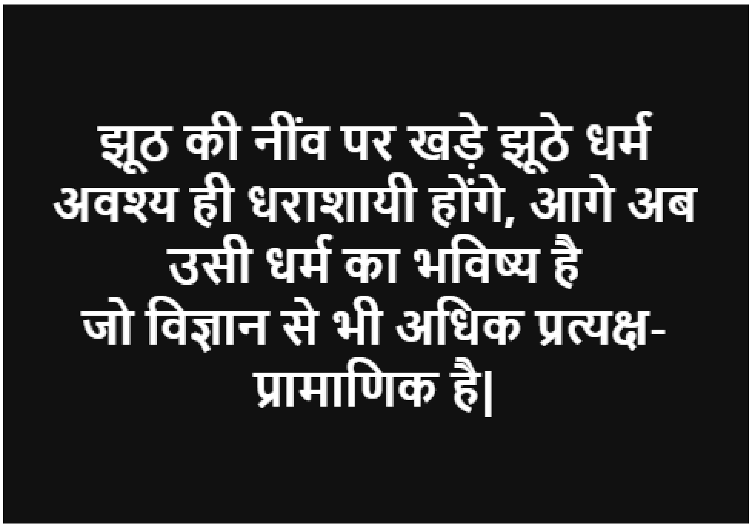

07 NOV 2024(v)
न ही सत्य और असत्य कभी साथ-साथ हो सकते हैं,
और न ही सत्य और असत्य की साथ-साथ उपासना हो सकती है,
सत्य की उपासना में भ्रम,संशय,अज्ञानता,दुःख से मुक्ति है,
असत्य की उपासना में दुःखद अज्ञान अंधकार में ही भटकना पड़ता है.....
_जो भी आरोप<(सृष्टि) की उपासना करता है, आरोपकर्ता<(सृष्टिकर्ता) की उपासना करता है वह असत्य की ही उपासना करता है,
जो भी विकृति की, कृति की, प्रकृति की उपासना करता है वह असत्य की ही उपासना करता है,
जो भी आरोपित किए हुए की, स्थापित हुए की उपासना करता है वह असत्य की ही उपासना करता है,
जो भी दृष्टा-दृश्य-संबंधित दर्शन की, ज्ञाता-ज्ञेय-संबंधित ज्ञान की उपासना करता है वह असत्य की ही उपासना करता है,
जो भी मिथ्यादृष्टि की, मिथकीय दृष्टिकोण की उपासना करता है वह असत्य की ही उपासना करता है,
जो भी स्थापित हुए नाम-रूप आदि कृत्रिमता की उपासना करता है वह असत्य की ही उपासना करता है,
जो भी सापेक्षिक दबाव में उत्पन्न हुए आत्म-अनात्म, द्वैत-अद्वैत आदि (स्थापित मतों) की उपासना करता है वह असत्य की ही उपासना करता है,
जो भी स्थापित हुए देवी-देवता-भूत-प्रेत-जिन्न-पीर-मलंग-थान-दरगाह आदि की उपासना करता है वह असत्य की ही उपासना करता है,
जो भी अज्ञानी मनुष्यों द्वारा स्थापित हुए कृत्रिम् ईश्वर आदि की उपासना करता है वह असत्य की ही उपासना करता है,
जो भी अपेक्षित दृष्टिकोण में घोषित हुए मिथ्या ईश्वर अथवा मिथ्या अवतार आदि की उपासना करता है वह असत्य की ही उपासना करता है,
जो भी अध्यारोपित धर्मग्रंथों में अध्यारोपित<ईश्वर, परमेश्वर, परमात्मा, ब्रह्म, भगवान आदि अध्यारोप की उपासना करता है वह असत्य की ही उपासना करता है,
जो भी अपेक्षाकृत दार्शनिक सिद्धांतों की उपासना करता है वह असत्य की ही उपासना करता है,
जो भी अध्यारोप की उपासना करता है,
जो भी प्रतीक-उपासना करता है वह असत्य की ही उपासना करता है,
जो भी स्थापित किए गए सत्य की उपासना करता है वह भी असत्य की ही उपासना करता है,
जो भी सांप्रदायिक सत्य की उपासना करता है वह भी असत्य की ही उपासना करता है,
जो भी किसी मतविशेष के, किसी पक्षविशेष के सत्य की उपासना करता है वह भी असत्य की ही उपासना करता है,
जो भी घोषित सत्य की उपासना करता है वह भी असत्य की ही उपासना करता है,
जो भी अपेक्षित सत्य की उपासना करता है वह भी असत्य की ही उपासना करता है,
जो भी अपेक्षाकृत दबाव में सिद्ध किए गए सत्य की उपासना करता है वह भी असत्य की ही उपासना करता है,
जो भी सापेक्षिक सत्य की उपासना करता है वह भी असत्य की ही उपासना करता है,
जो भी आरोपित सत्य की उपासना करता है वह भी असत्य की ही उपासना करता है,
अपेक्षित दृष्टिकोण से अनिमित्त मात्र सत्य ओर ही मात्र उपासना में होने पर ही दिग्भ्रम से मुक्ति है, अज्ञानता से मुक्ति है, दुःखद बंधन से मुक्ति है...

07 NOV 2024(vi)
छंद से<लयबद्धता से राग उत्पन्न होता है और राग से तल्लीनता,
श्वास के साथ लयबद्ध होने से सावधान रहो,
श्वास प्रति श्वास>हर श्वास में होशपूर्वक सीधे हो संभलते रहने से लयबद्धता नही बनती,
लयबद्धता नही बनने से तल्लीनता नही बनती,
कई उपासक यह पूछते हैं कि क्या श्वास के साथ मंत्र-जप किया जा सकता है,
उनसे यही कहना है कि मंत्र-जप व्यर्थ नही है,
किसी अर्थ में एक सीमा तक मन की एकाग्रता के लिए मंत्र-जप की उपयोगिता है,
परंतु समाधि की दिशा में मन के उन्मुख होने पर मंत्र-जप की उपयोगिता पूरी हो जाती है, प्राकृतिक-श्वास के साथ मंत्र-जप आदि का औचित्य नही है,

चाहे तो मंत्र-जप अलग से कर सकते हो पर ध्यान के समय श्वास के साथ मंत्र-जप करना आवश्यक नही हैअ अगर कोई एकाग्रता के दृष्टिकोण से श्वास के साथ मंत्र-जप करने का आग्रह रखता है तो तब भी कोई आपत्ति नही है,
पर ध्यान रहे श्वास की प्रकृति लचीली है इसलिए वह कहीं भी ढल सकती है,
अगर श्वास के साथ मंत्र-जप करोगे तो श्वास मंत्र-जप की लयबद्धता में ढलकर उसी के साथ आबद्ध हो जाएगी,
और आबद्ध हुई श्वास फिर सहज नही हो पाएगी,
श्वास प्राकृतिक है, और मंत्र-जप कृत्रिम् है,
ध्यान रहे कोई भी मंत्र प्राकृतिक नही होता,
कोई भी मंत्र हो<उसके अक्षर उसके स्थान-समय-अनुपात में पहले से ही तय रहते हैं fixed रहते हैं,
जो भी पहले से तय है fixed है वह कभी लचीला नही हो सकता लचीला नही होने से वह कभी सहज भी नही हो सकता,
श्वास प्राकृतिक होने से पहले से तय नही है fixed नही है इसलिए श्वास की प्रकृति उसके लचीले होने में है<उसके सहज होने में है,
श्वास के साथ मंत्र-जप अप्राकृतिक है, सहजता के विरुद्ध है,
जो लोग श्वास के साथ जप इत्यादि करते हैं<उन्हें सीधा-सहज मार्ग स्पष्ट नही है, सीधा-सहज मार्ग स्पष्ट नही होने से वे दिग्भ्रमित हैं,
(ध्यान रहे जप इत्यादि क्रिया है ध्यान नही....
ध्यान में अपनी तरफ से जप-प्राणायाम आदि कोई क्रिया नही होती बस निमित्तमात्र उपस्थित भर होना ही होता है,
अपनी तरफ से कोई भी क्रिया होने पर प्रतिक्रियात्मक दबाव में ऊर्जा का ह्रास होता है,
निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होने में जरा भी ऊर्जा का ह्रास नही होता पूरी ऊर्जा बची रहती है),
मंत्र-जप इत्यादि की लयबद्धता में आबद्ध हुई श्वास फिर सहज नही हो पाती,
मंत्र-जप, प्राणायाम, तंत्र (विधि-व्यवस्था)<धारणा आदि कृत्रिमता श्वास की यथा सहज प्रकृति के विरुद्ध है,
श्वास को बस श्वास ही रहने दो उसी में उसकी शुद्धि है, पवित्रता है<उसमें अपनी तरफ से कुछ भी मत जोड़ो,
जब श्वास बस श्वास भर ही रहती है<उसमें अपनी तरफ से कोई आरोपित प्रतिक्रिया नही होती तब उसका सहज ही ज्ञानमात्र रहता है, सहज ही दर्शनमात्र रहता है,
श्वास को मंत्र-जप आदि किसी भी कृत्रिमता में मत बाँधो श्वास को उसकी स्वतंत्रता में रहने दो,
श्वास को उसकी यथा सहजता में चलने दो,
अगर तुम श्वास को उसकी यथा सहजता में, उसकी यथा सरलता में, उसकी यथा शान्ति में चलने दोगे तो तुम भी उसी के साथ-साथ सहज होते जाओगे, सरल होते जाओगे, शान्त होते जाओगे,
जैसे ही श्वास अपनी पूर्ण सहजता में हो जाएगी
उसी समय तुम बाहर से पूर्णतः सहज हो जाओगे,
और जैसे ही जब चित्त भी पूर्णतः सहजता में हो जाएगा तब उसी समय तुम अंदर से भी पूर्णतः सहज हो जाओगे,
तुम्हारा शरीर, इंद्रियाँ, श्वास, मन, बुद्धि, चित्त आदि प्राकृतिक होने से लचीलेपन flexibility में हैं,
मत-संप्रदाय आदि सब कृत्रिमता में हैं इसलिए तुम्हारे लिए धर्म<साधना के लिए शरीर से बाहर जाने की आवश्यकता नही है.....

09 NOV 2024(i)
_जो जिस दृष्टिकोण से जिस अर्थ में है वह उसी दृष्टिकोण से उसी अर्थ में स्पष्ट होना आवश्यक है,
भ्रान्ति तभी होती है जब कोई दूसरे के दृष्टिकोण को अपने दृष्टिकोण के अनुसार देखता है,
इसी कारण आज मुसलमान कहे जाने वाले तथा हिन्दू कहे जाने वाले एक दूसरे के प्रति भ्रान्ति में हैं,
मुसलमान कहे जाने वाले हिन्दू कहे जाने वाले के प्रति अधिक भ्रान्ति में हैं,
क्योंकि वे अपने पूर्व निर्धारित दृष्टिकोण के अनुसार सामान्यतः हिन्दू को बुतपरस्त, शिर्कपरस्त काफिर के रूप में ही देखते हैं,
उन्हें यह स्पष्ट नही कि हिन्दू होना कोई मुसलमान होने की तरह किसी एक संप्रदायविशेष का एकनिष्ठ-अनुयायी होना भर नही है,
हिन्दू होना कई तरह से है<
संप्रदायवादी हिन्दू, संतमतिया हिन्दू,
स्मार्त हिन्दू, पंचायती हिन्दू, राष्ट्रवादी हिन्दू इत्यादि.....
हिन्दुओं में एक तरफ शुद्ध शाकाहारी वैष्णव हैं,
तो दूसरी तरफ मनुष्य का मूर्दा-मांस तक भक्षण करने वाले अघोरी भी हैं.......
फिर हिन्दुओं के मध्य पहले से ही इतना अधिक मतभेद तथा विरोधाभास है कि एक सत्यनिष्ठ<ईमानदार हिन्दू अंततः पूर्वाग्रह से मुक्त हो, सभी मतों से निष्पक्ष हो यथार्थतः सत्य की खोज में निकल ही पड़ता है,
पर सामान्यतः एक मुसलमान कहे जाने वाला कभी भी पूर्वाग्रह से मुक्त हो निष्पक्षतः सत्य की खोज में नही निकल सकता क्योंकि तब वह अन्य मुसलमान कहे जाने वालों की नजर में पहले की तरह मुसलमान नही रह जाएगा काफिर हो जाएगा....
जैसे जो मूसा का खुदा<वह हर मुसलमान का भी खुदा, जो मूसा का खुदा<वह हर ईसाई का भी खुदा यह भी एक तरह की अच्छाई है<इससे एकनिष्ठ होने में बल प्राप्त होता है,
पर रामानुज ने तो श्री-भाष्य में शांकर-भाष्य के अद्वैत ब्रह्म को ही काल्पनिक कह दिया,
और रामानुज के विशिष्टाद्वैत सिद्धांत को उसके प्रतिपक्षी ने काल्पनिक सिद्ध किया है,
(हिन्दुओं के भीतर ही परस्पर
द्वैत-अद्वैत-द्वैताद्वैत-शुद्धाद्वैत-विशिष्टाद्वैत-द्वैत-त्रैत आदि हर सिद्धांत का खंडन हुआ है)<इससे अधिक मतभेद तथा विरोधाभास हिन्दुओं के बीच और क्या हो सकता है,
एक अर्थ में यह हिन्दू जीवन-शैली की अच्छाई भी है जिससे मतों के प्रति कम से कम मोह तो भंग हो ही जाता है,
पर इस अच्छाई के पीछे बहुत ही अधिक संघर्ष है कोई-कोई ही इसमें सफल हो पाता है,
एक अर्थ में इसके कारण हिन्दू समुदाय कमजोर है मुसलमानों, ईसाइयों, यहूदियों आदि की तरह हिन्दू एकनिष्ठ, एकजुट नही हैं,
हर अच्छाई का साइड इफेक्ट भी है,
आज जो तथाकथित समाज-सुधारक हैं वे दृष्टिकोणों के मध्य समन्वय स्थापित कर भ्रान्ति ही खड़ी करते हैं,
तुम ईश्वर-अल्लाह एक है कहोगे तो न 'अल्लाह' अल्लाह के दृष्टिकोण से अल्लाह रह जाएगा,
और न 'ईश्वर' ईश्वर के दृष्टिकोण से ईश्वर ही रह जाएगा भ्रान्ति में एक और नया दृष्टिकोण स्थापित हो जाएगा,
जो जिस दृष्टिकोण से जिस अर्थ में है उसे उसी दृष्टिकोण से उसी अर्थ में रहने दो,
किसी अन्य दृष्टिकोण की अपेक्षा में<तुलना में उसे मत देखो उसी में उसकी यथा-शुद्धि है, यथा-पवित्रता है.....
पर अगर दृष्टिकोण ही भंग हो जाए तो इससे उत्तम कुछ भी नही......
क्रमशः

09 NOV 2024(ii)
यद्यपि ध्यान की कोई पूर्व निर्धारित विधि नही है,
पर पूर्व निर्धारित विधि से ध्यान का आरंभ अवश्य होता है,
जैसे कोई वाहन चलाना आरंभ करता है
तो उसकी एक पूर्व निर्धारित विधि होती है,
पर जैसे ही वाहन चलने लगता है तब स्टीयरिंग को किस दिशा में घुमाना है, ब्रेक कब लगाना है<यह सब पूर्व निर्धारित न होकर उस समय की परिस्थिति पर निर्भर रहता है,
इसी तरह ध्यान का आरंभ नासिकाग्र की आधारीय सीध से सीधे हो उपस्थित होने से होता है,
ध्यान में संतुलन की मांग के अनुसार ही रहना होता है,
संतुलन की मांग के अनुसार रहने से गिरना नही हो पाता,

दो अंतों के माध्यमिक संतुलन पर ही स्थिर स्थिति संभव है,
ज्ञाता तथा ज्ञेय के माध्यमिक संतुलन पर ही ज्ञानमात्र के निमित्त ध्यान की स्थिर स्थिति संभव हो पाती है,
इससे इतर होने पर फिर सापेक्षिक दबाव में गिरना स्वाभाविक है,
आरंभिक ध्यान में नासिकाग्र की आधारीय सीध पर दृष्टि को भली-भाँति संतुलनपूर्वक स्थिर रखना आवश्यक है,
नासिकाग्र की आधारीय सीध से श्वास के ज्ञात होने की सीध का मिलान करने पर जो सीध बनती है
<ठीक उसी सीध में सीधे हो भली-भाँति संतुलनपूर्वक संभले रहना है,
ऐसी स्थिति में लंबे समय तक लगातार बिना चूके ठीक समय पर हर श्वास ज्ञात होती रहती है,
अगर एक घंटे तक भी लगातार बिना चूके ठीक समय पर हर श्वास ज्ञात होती रहे तो इतने में ही नये-ताजे होश का एक ऐसा करंट बन जाता है कि जिससे अंतर्दृष्टि खुल जाती है....

11 NOV 2024(i)

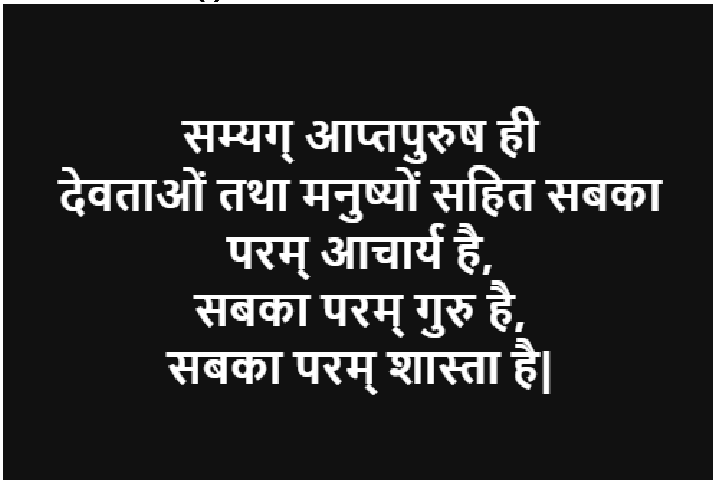

11 NOV 2024(ii)
_दृष्टि खुलने का तात्पर्य बुद्धि की सूक्ष्मता खुलने से है,
सामान्य जनों की बुद्धि अधिकतम ५ प्रतिशत से अधिक खुली हुई नही रहती,
अगर किसी की १०० प्रतिशत बुद्धि खुल जाती है तो उसकी बुद्धि के सारे कोण, सारे दृष्टिकोण खुल जाते हैं यही नही उसका हर कोण पर, हर दृष्टि<हर दृष्टिकोण पर नियंत्रण भी हो जाता है,
उसकी अपरिमित-अपार बुद्धिमत्ता की सामान्य जन कल्पना भी नही कर सकते,
सम्यग् ध्यान-अभ्यास के माध्यम से शत प्रतिशत बुद्धि खुल सकती है,

जितना ही कम से कम समय पर संभलकर सीधे से सीधे<निकट से निकट वर्तमान में उपस्थित होना हो पाएगा उस अनुपात में उतनी ही बुद्धि की सूक्ष्मता भी खुलेगी.....
_सर्वप्रथम श्वास प्रति श्वास<हर श्वास के ठीक समय पर सीधे हो उपस्थित होने का नैमित्तिक मापदंड पूरा करना आवश्यक है,
फिर इससे भी आगे उत्तरोत्तर एक सेकेंड के १०वें, १००वें, १०००वें, १००००वें, १००००००वें, १०००००००००वें---असंख्यवें भाग में सीधे हो संभलकर उपस्थित होने का नैमित्तिक मापदंड भी पूरा करना है,
श्रम का निमित्त पूरा करना बहुत ही आवश्यक है,
आमतौर पर यही भ्रान्ति होती है कि अपने करने से हो रहा है,
इसी भ्रान्ति में कर्ता-मूलक अहंकार खड़ा होता है,
यह कर्ता-मूलक अहंकार ही यथार्थ सत्य स्पष्टता में बाधक है,
ध्यान रहे जो कुछ हो रहा है वह गुणों का कार्य है<उसमें तुम्हारी भूमिका बस निमित्तमात्र उपस्थिति भर की है,
भ्रान्ति में तुमने गुणों के कार्य-धर्म को अपना धर्म मान लिया है, अपनी भूमिका मान ली है,
और इसी भ्रान्ति में यहीं से कर्ता-मूलक अहंकार उत्पन्न हुआ है,
तुम्हें तुम्हारा धर्म, तुम्हारी भूमिका स्पष्ट होनी बहुत ही आवश्यक है,
फिर से याद कर लो तुम्हारा 'धर्म' गुण<धर्म नही है<अर्थात् गुणों का कार्य नही है अपितु तुम्हारा धर्म, तुम्हारी भूमिका ज्ञानमात्र के निमित्त<निमित्तमात्र बस उपस्थिति भर की है,
अगर तुम अपने सहज धर्म, सहज भूमिका में हो जाओ तो सम्पूर्ण भ्रान्ति, सम्पूर्ण अज्ञान, सम्पूर्ण दुःख ही भंग हो जाएगा,
यद्यपि बीज-स्वभाव में तुम ज्ञानमात्र के निमित्त<निमित्तमात्र उपस्थित भर ही हो, बीज-स्वभाव स्पष्ट नही होने से गुण<धर्म के सापेक्षिक दबाव में गिरकर तुम भ्रान्तिवश कर्ता-भाव में आबद्ध हुए हो,
और तुम्हारे कर्ता-भाव में आबद्ध होने से ही तुम कर्ता-भाव के दबाव में कर्म तथा फल के बंधन में पड़े हुए हो,
(ध्यान रहे यहाँ गुणों का तात्पर्य सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण की परंपरागत अपेक्षित-धारणा से नही है),
जब तक तुम्हें अनुत्तर सम्यग् मार्ग स्पष्ट नही हो जाता<तब तक तुम्हारे लिए अपेक्षित दृष्टिकोण में ही समझने की विवशता है,
यद्यपि कोई भी दृष्टिकोण अपेक्षाकृत होने से पूर्ण नही है,
यहाँ तक कि सांख्य का दृष्टिकोण भी अपेक्षाकृत दबाव में होने से पूर्ण नही है,
जब तक तुम्हारी सूक्ष्मता में दृष्टि नही खुल जाती, बुद्धि नही खुल जाती<तब तक तुम अल्पबुद्धि में ही आबद्ध हो,
सापेक्षिक दबाव के वशीभूत तुम्हारी विवशता के कारण तुम्हारी अल्पबुद्धि को उक्त संदर्भ में कुछ-बहुत समझाने के लिए अभी सांख्य का दृष्टिकोण पर्याप्त है,
सांख्य के दृष्टिकोण के अनुसार प्रकृति जड़ है, और 'निमित्त' सहज स्वभाव से चेतन है,
कोई भी क्रिया, कोई भी कर्म न अकेले जड़ से उत्पन्न हो सकता है, और न अकेले चेतन से ही,
चेतन>(निमित्त) के जड़>(प्रकृति) के सानिध्य में होने पर जब प्रकृति चेतनमय<प्रकाशित हो जाती है तभी चेतनमय<प्रकाश में चित्त दशा उत्पन्न होती है,
चेतनमय<प्रकाश में चित्त के उत्पन्न होते ही दृष्टा-भाव का दबाव बन जाता है,
और जड़ चित्त के चेतनमय<प्रकाश में प्रकाशित होने से भ्रान्ति में<धोखे में चित्त को दृष्टा अपने स्वरूप में देखता है,
और यहीं से कर्ता-भाव में आरोप करने वाले आरोप-कर्ता का जन्म होता है,
यहीं से कर्ता-भाव के दबाव-स्वरूप कर्म की स्थापना होती है,
और कर्ता-भाव के प्रतिक्रियात्मक दबाव-स्वरूप भोक्ता-भाव के दबाव में फल की स्थापना होती है....
_ध्यान रहे प्रकृति को जड़ कहना, पुरुष (निमित्त) को चेतन कहना सांख्य-दर्शन के अपेक्षित दृष्टिकोण से है न कि दर्शनमात्र से.....
अगर तुम्हें यह बात भी समझ में नही आ रही है
तब तुम्हें भक्ति>समर्पण के दृष्टिकोण से समझना होगा,
तुम अपनी निष्ठा को सम्यग् आप्तपुरुष की निष्ठा में समर्पित कर सम्यग् आप्तपुरुष के अभिमुख हो जाओ<अर्थात् आप्तपुरुष के सम्यग् गुरुत्व में गुरुमुख हो जाओ,
ध्यान रहे जो भी आत्म-अनात्म,
द्वैत-अद्वैत-द्वैताद्वैत-विशिष्टाद्वैत-शुद्धाद्वैत-त्रैत आदि किसी भी सापेक्षिक मत का संस्थापक है, अनुयायी है<वह कदापि सम्यग् आप्तपुरुष नही है,
जिसे सम्यग् मार्ग स्पष्ट नही,
जो जरा सा भी

राग-द्वेष-मोह-काम-क्रोध-लोभ-मद-मत्सर-छल-कपट-धूर्तता-वासना में है<वह कदापि सम्यग् आप्तपुरुष नही है,
जिसका ज्ञान-दर्शन-आचरण पूर्णतः परिस्पष्ट पारदर्शी है,
जिसमें जरा सी भी वासना नही,
जो पूर्णतः निष्पाप, पूर्णतः निर्दोष, पूर्णतः शुद्ध, पूर्णतः पवित्र, पूर्णतः निर्मल है<वही बस सम्यग् आप्तपुरुष है,
जो ९६ तरह की मिथ्यादृष्टि से अभिमुक्त है,
जो अपेक्षित दृष्टिकोण से अनिमित्त दर्शनमात्र में उपस्थित भर है<वही बस सम्यग् आप्तपुरुष है,
जो हर तरह के दिग्भ्रम से, हर तरह के सापेक्षिक दबाव से अभिमुक्त है<वही बस सम्यग् आप्तपुरुष है,
सम्यग् आप्तपुरुष अनुत्तर सम्यग् मार्गदर्शक होता है,
सम्यग् आप्तपुरुष से इतर जिसे भी लोकदृष्टि<लोकाचार में तुम गुरु कहते हो वह कदापि सम्यग् गुरु नही है,
(हिन्दू-बौद्ध-जैन-सिक्ख आदि किसी भी स्थापित धर्म<संप्रदाय<पंथ का आचार्य कदापि सम्यग् गुरु नही है),
सम्यग् आप्तपुरुष अंततः सबका परम् आचार्य है,
सबका परम् गुरु है, सबका परम् शास्ता है|

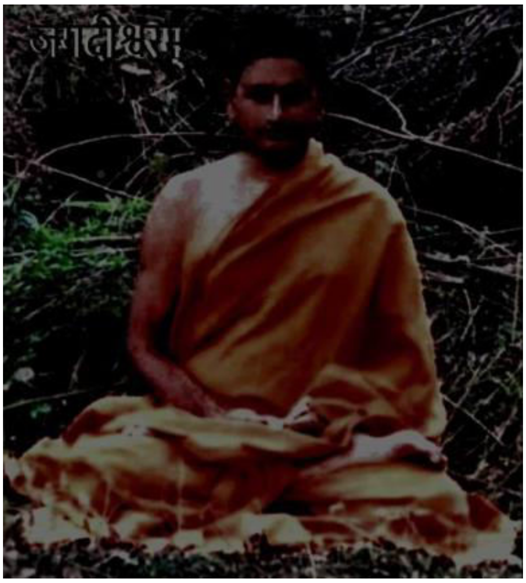

13 NOV 2024(i)

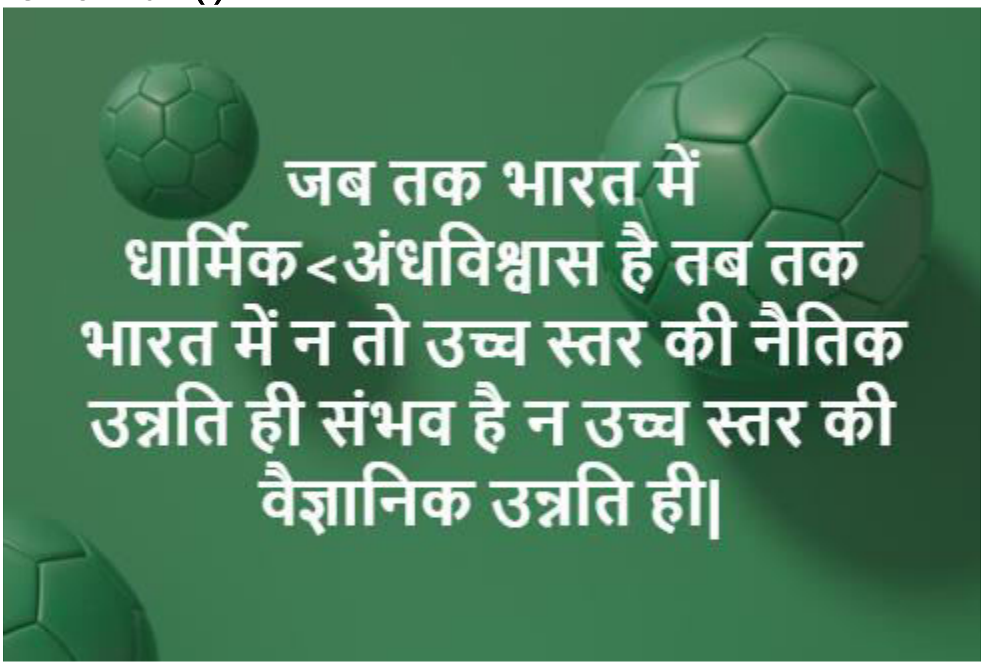

13 NOV 2024(ii)
_समय तुम्हारी प्रतीक्षा नही करता,
समय तुम्हारे लिए नही रुकता,
समय बहुत निर्दयी व क्रूर है,
समय को तुम्हारी परवाह नही,
समय बिना तुम्हारी प्रतीक्षा किए आगे बढ़ता ही जा रहा है,
(समय बिना रुके अपनी निर्बाध गति से आगे बीतता ही जा रहा है),
तुम्हें ही समय को महत्व देना होगा,
तुम्हें ही समय की परवाह करनी होगी,
तुम्हें ही समय की>(ठीक समय की) प्रतीक्षा करनी होगी,
सावधान! समय चूकने पर वही समय तुम्हारे लिए फिर से दोबारा नही लौटेगा,
इसलिए तुम्हें ही बिना चूके ठीक समय पर उपस्थित होकर समय का सार्थक सदुपयोग करना होगा,
समय का सबसे सार्थक सदुपयोग सम्यग् ध्यान-अभ्यास में समय को बिताने से है.....
_ध्यान रहे समय बिना रुके निर्बाध गति से बीतता ही जा रहा है,
जीवन-आयु बीतती ही जा रही है,
समय के चिरंतन बीतते प्रवाह में तुम कब बूढ़े हो गए तुम्हें इसका पता भी नही चल पाएगा...
इसलिए यहाँ-वहाँ की व्यर्थता में अपने अमूल्य समय को नष्ट मत करो,
यहाँ-वहाँ की व्यर्थता में मत उलझे रहो,
वैसे भी जीवन-आयु बहुत ही अल्प है,
जीते जी अगर अपेक्षित दृष्टिकोण भंग नही हुआ तो निश्चित ही महाहानि है,
जीवन रहते अगर भ्रम,संशय,अज्ञान,दुःख शेष रह गया तो यह जीवन व्यर्थ ही गया....
_आरंभिक साधक को श्वास के प्रति यथा सहज रहते हुए यथा सहज हुई श्वास की प्रकृति के अनुसार चलना चाहिए,
आरंभिक साधक को श्वास के आने-जाने के समय पर उपस्थित होना बहुत ही आवश्यक है,
प्रतिदिन कम से कम दो बार<कम से कम एक-एक घंटे तक श्वास के साथ उपस्थित रहना आवश्यक है,
श्वास के ठीक समय पर उपस्थित रहना आवश्यक है,
चौबीस घंटे में कम से कम दो बार वह भी कम से कम एक-एक घंटे तक बिना हिले-डुले लगातार हर श्वास-प्रश्वास के ठीक समय पर उपस्थित होने के आंतरिक श्रम का निमित्त पूरा करो,
आरंभिक साधक के लिए होश को, जागृति को, आरोग्यता को, तरोताजगी को, स्फूर्ति को, बल को, सक्षमता को बढ़ाने का श्वास से दूसरा कोई सहज प्राकृतिक माध्यम नही है,
सामान्यतः तुम्हारा ध्यान सापेक्षिक हो बँटता ही रहता है,
किसी एक सीध में दीर्घ समय तक तुम्हारा ध्यान स्थिर नही रह पाता,
ध्यान रहे जब तक किसी एक सीध में लगातार लंबे समय तक तुम्हारा ध्यान स्थिर नही होगा,
तब तक उस सीध की निभ्रान्त स्पष्टता नही हो सकती,
श्वास का चलना (श्वास का आना-जाना) एक ही सीध में लगातार हो रहा है,
वह भी ठीक सीधे सामने दृष्टि की सहज स्वाभाविक सीध में, तुम्हें दाएं-बाएं होना भी नही है,
इसलिए अगर सीधे सामने एक ही सीध में दीर्घ समय तक ध्यान स्थिर रखना है तो आरंभिक साधक के लिए इससे उपयुक्त सहज स्वाभाविक सीधा दूसरा अवलंबन नही है,
श्वास के हर आने-जाने के मध्य का अंतराल तुम्हारी क्षमता के अनुसार तुम्हारे संभलने के लिए तुम्हारे लिए एक प्राकृतिक वरदान है,
ताकि हर मध्य के अंतराल में संभलकर श्वास के हर आने-जाने के ठीक समय पर उपस्थित हो सको,
बिना चूके हर श्वास के आते-जाते समय पर उपस्थित होते जाना है,
बिना चूके बस लगातार श्वास का
आना-जाना ज्ञात होता रहे,
किसे ज्ञात हो रहा है, क्या ज्ञात हो रहा है इस तरफ ध्यान नही बँटाना है बस केवल ज्ञात भर होने में ही पूरा का पूरा अखंड ध्यान रहे,
इस तरह से संयमपूर्वक ध्यान रहे कि ध्यान में श्वास का बस केवल ज्ञात होना भर ही रह जाए किसे ज्ञात हो रहा है, क्या ज्ञात हो रहा है यह नही रह जाए,
बिना चूके निरंतर<लगातार ज्ञात होते रहने से बस ज्ञात होना ही उत्तरोत्तर स्पष्ट होता जाता है,
इस तरह अंततः जब बस ज्ञात होना भलीभाँति पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है,

तब पूर्णतः पूर्ण निभ्रान्त यथा सत्यता स्पष्ट हो जाती है.......
जब विशुद्धतः परिस्पष्टतः ज्ञात होना भर ही रह जाता है तब सहज ही चेतनता पूर्ण होती है, होश पूर्ण होता है, जागृति पूर्ण होती है, तरोताजगी पूर्ण होती है, आरोग्यता पूर्ण होती है, स्फूर्ति पूर्ण होती है, बल पूर्ण होता है, सक्षमता पूर्ण होती है.......
विशुद्धतः ज्ञात भर होने की पूर्ण स्पष्ट पारदर्शिता में जरा भी भ्रम,संशय,अज्ञान नही रह जाता है....

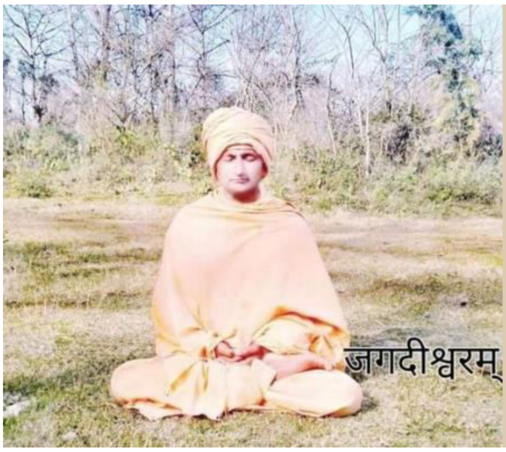

13 NOV 2024(iii)
चेतना की>(विज्ञान की) बीतने और उत्पन्न होने की गति इतनी अत्यधिक है,
चेतना का बीतना तथा उत्पन्न होना इतने अत्यधिक कम समय में है कि सामान्यतः चेतना पूर्णतः अविचल<स्थिर प्रतीत होती है,
चेतना से तादात्म्यता इतनी अत्यधिक गहरी है कि सामान्यतया चेतना में आत्मभाव स्थापित हो ही जाता है,
तादात्म्यतावश इसी भ्रान्ति के कारण आत्मवादियों के दृष्टिकोण में नित्य-स्थिर आत्मा की धारणा उत्पन्न हुई है, ब्रह्म की धारणा उत्पन्न हुई है,
तथ्यतः ऐसा कोई आत्मा अथवा ब्रह्म नही है जैसा कि आत्मवादियों के अपेक्षित दृष्टिकोण में है,
जब तक तादात्म्यता है, लीनता है तब तक कदापि निभ्रान्त तथ्यतः यथार्थ स्पष्ट नही हो सकता,
जब तक तादात्म्यता है, लीनता है तब तक भ्रान्ति का होना स्वाभाविक है,
तादात्म्यता तभी भंग होगी, लीनता तभी भंग होगी, भ्रान्ति तभी भंग होगी जब पूरी तरह से पूरे नये होश में उपस्थिति होगी,
आरोपित लोकदृष्टि में प्रतिष्ठित-स्थापित गीता-उपनिषद-वेदांत-शास्त्र-पुराण-आगम आदि की आरोपित-दृष्टि से सावधान रहना आवश्यक है,
बार-बार गीता-उपनिषद-वेदांत-शास्त्र-पुराण-आगम आदि से इसलिए सावधान किया है क्योंकि यह सभी "ऐसा है-वैसा है" के अपेक्षाकृत अध्यारोपित दृष्टिकोण में हैं,
ध्यान रहे सारा मोह, सारा सम्मोहन ही अपेक्षाकृत अध्यारोपित दृष्टिकोण का बनता है न कि ज्ञानमात्र का, न कि दर्शनमात्र का, न कि तथ्ययः यथार्थ का......
तुम्हारा सम्मोहन भंग हो इस उद्देश्य से तुम्हें उदाहरण देकर सावधान करना पड़ता है,
आरोपित-दृष्टि के सम्मोहन में दिग्भ्रमित हुए मूर्खजन ही आरोपित-दृष्टि में स्थापित धर्मग्रंथों को महत्व देते हैं और जीवन भर आरोपित-दृष्टि में ही उलझे रहते हैं,
लोक में भाँति-भाँति की दृष्टियों का जाल (मतों का जाल) है<जिसमें मूर्खजन फँसे रहते हैं,
ध्यान रहे ऐसा है-वैसा है<यह आरोपित-दृष्टि है,
और जैसा है वैसा<यह सम्यग् दर्शन है,
अपेक्षित दृष्टिकोण से सावधान रहते हुए यथार्थ स्पष्टता के निमित्त सहज संवेदनशील रहना है,
चेतना की गति की प्रकाश की गति से कोई तुलना नही,
प्रकाश की गति से चेतना की गति इतनी अधिक है कि खरबों-खरबों प्रकाश-वर्ष की दूरी चेतना के एक सेकेंड से भी कम समय में पार है,
इतनी अधिक गति पर संतुलनपूर्वक सकुशल नियंत्रण होना बहुत ही सौभाग्य की बात है<जो सम्यग् सद्धर्म के अनुशासन में ही संभव है....

15 NOV 2024(i)

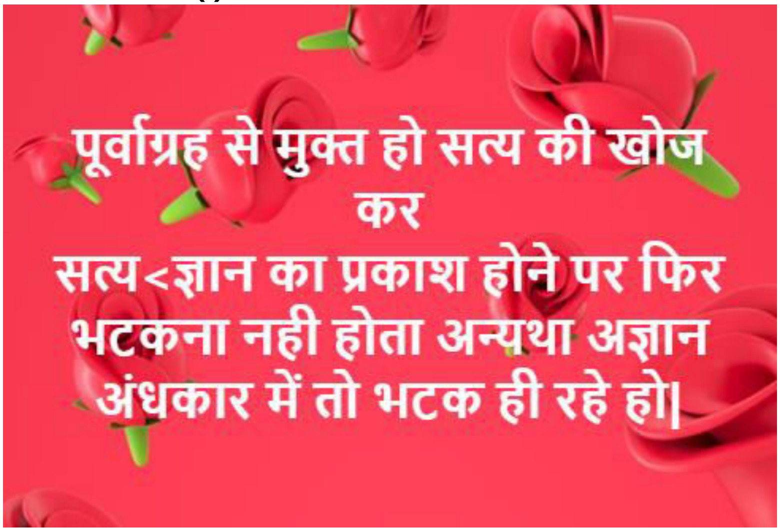

15 NOV 2024(ii)

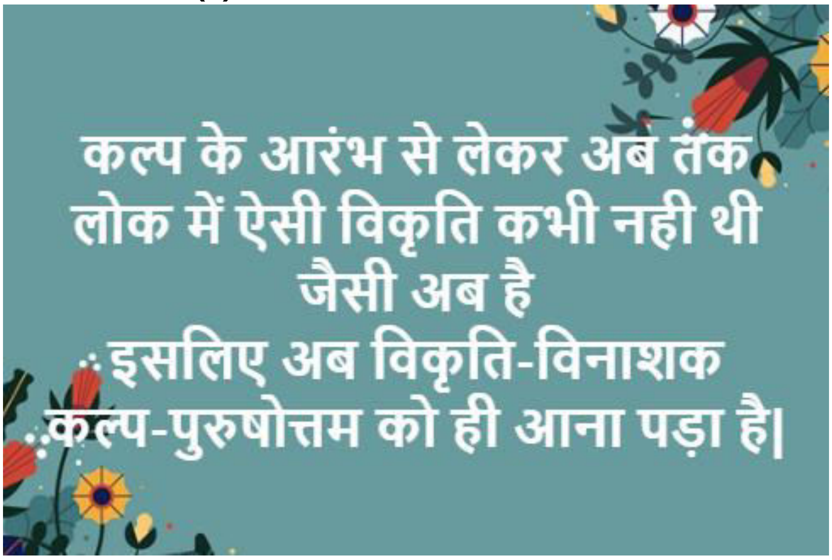

15 NOV 2024(iii)

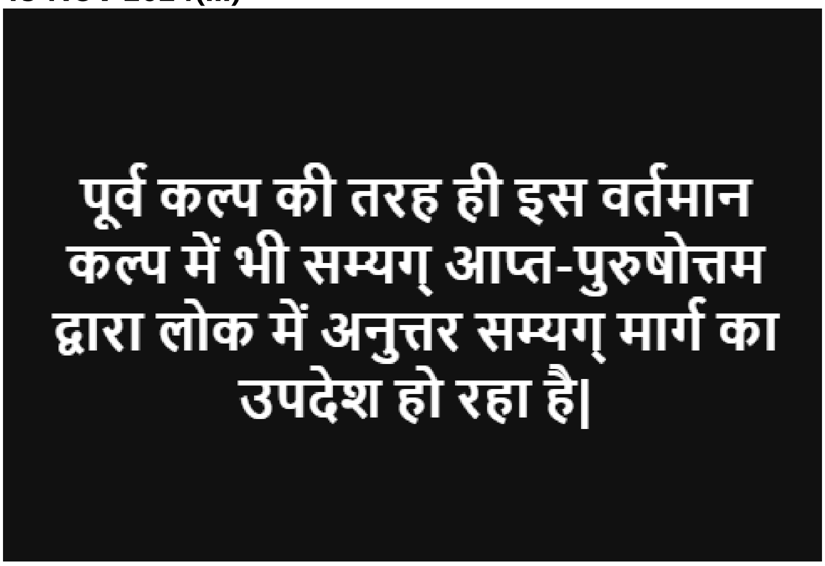

15 NOV 2024(iv)

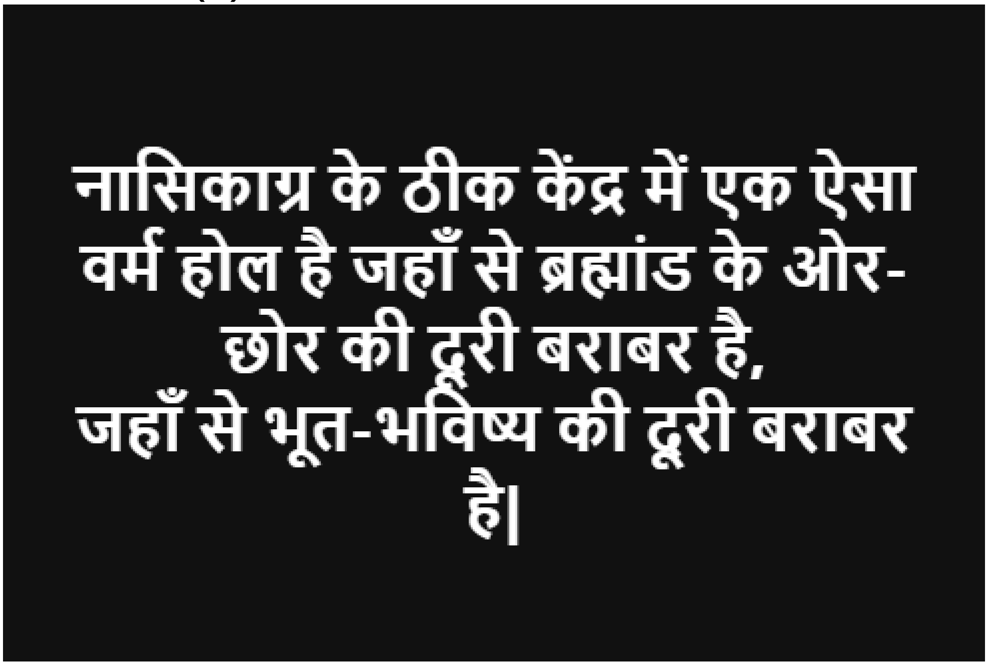

15 NOV 2024(v)

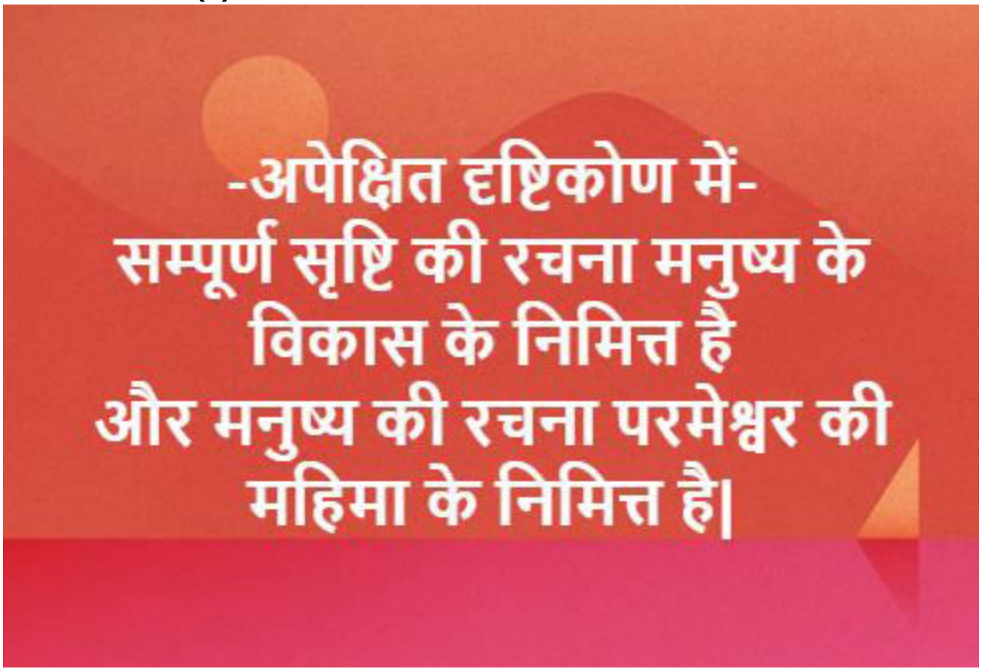

15 NOV 2024(vi)

रसास्वादन के प्रति तल्लीन होने से सावधान रहो, सजग रहो,
भोजन करते समय भोजन की प्रक्रिया, भोजन के रसास्वादन के प्रति यथा सहजता-पूर्वक सजग रहना आवश्यक है,
होश-पूर्वक जागरूक रहना आवश्यक है,
ताकि भोजन की प्रक्रिया, भोजन के रसास्वादन का भली-भाँति स्पष्टतः पूरा यथावत् ज्ञान बना रहे,
निम्न स्तर के साधारण लोग प्रायः मूर्छित ही रहते हैं, अगर उसे लड्डू खाते हुए देखो,
तो उससे पूछो तुम कितने लड्डू खा गए, और लड्डू का स्वाद कैसा था,
भले ही लड्डू से उसका पेट भर गया,
पर उसे इस बात का भान नही है कि वह कितने लड्डू खा गया उन लड्डुओं का स्वाद कैसा था,
उससे उच्च स्तर के जो लोग हैं,

वे तल्लीनतावश भोगों के रसास्वादन में डूबे रहते हैं,
उससे भी उच्च स्तर के लोग होश-पूर्वक भोगों के रस को ग्रहण करते हैं,
और उससे भी उच्च स्तर के लोग तल्लीनता से सजग हो भोगों का पवित्रता-पूर्वक विशुद्धतः बस ज्ञान भर ही ग्रहण करते हैं,
जिसकी भी सहज ज्ञानमात्र<<निमित्तमात्र स्थिति है<चाहे वह कोई भी क्यों न हो वही
सही अर्थ में आर्य है,
जन्म से अथवा सामाजिक मान्यता से कोई आर्य नही हो जाता है,
निरंतर ही यथावत् स्पष्टता में बने रहना है,
हर समय सतत् जागरूक बने रहना है,
किसी भी समय खोना नही है,
जब तक परिस्पष्टतः सहज ज्ञानमात्र न रह जाए तब तक नाक के आगे की ठीक सीध से सीधे से सीधे क्रमशः उपस्थित श्वास आदि अवलंबन की यथा स्पष्टता के निमित्त सतत् जागरूक बने रहना है,
हर समय जिस समय जो हो रहा है<उसका भली-भाँति स्पष्टतः यथावत् ज्ञान बना रहे,
यथावत् स्पष्टता से जरा भी चूकना नही,
यथावत् स्पष्टता से जरा भी इतर नही होना यथावत् स्पष्टता से इतर होते ही सापेक्षिक प्रपंच में फँस जाओगे,
फिर जन्म-जन्मांतर तक सापेक्षिक प्रपंच के इस दुःखद बंधन में कब तक फँसे रहोगे कुछ कहा नही जा सकता,
साधारण जन इंद्रिय जनित भोगों के प्रति
यथा सहज हो होश-पूर्वक संभले हुए नही रहते,
यथा सहजता में सजग हो भली-भाँति संतुलन-पूर्वक स्थिरता-पूर्वक संभले हुए नही रहते,
मूर्छावश तल्लीनता में खो जाते हैं,
श्रेष्ठ आर्य जन ही जल-कमलवत् पवित्रता-पूर्वक भली-भाँति संतुलन में संभले रहते हैं,
जहाँ यथावत् ज्ञान है<वहीं निभ्रान्त सत्यता है,
इतनी कुशलता हो जाए कि दैनिक व्यवहार में जो कुछ भी हो रहा है,
उसका बस केवल ज्ञात होना भर ही रह जाए,
क्या ज्ञात हो रहा है, किसे ज्ञात हो रहा है यह नही,
उसका बस सिर्फ पता भर चलना ही रह जाए,
क्या पता चल रहा है, किसे पता चल रहा है यह नही,
ज्ञाता-ज्ञेय अर्थात् किसे ज्ञात हो रहा है, क्या ज्ञात हो रहा है यही सापेक्षिक जाल है,
चाहे द्वैत मत वाले हों, चाहे अद्वैत मत वाले हों, चाहे अन्य किसी भी मत वाले हों<सब के सब ज्ञाता-ज्ञेय के सापेक्षिक जाल में उलझे हुए हैं,
धन्यभागी है वह जिसकी ज्ञाता-ज्ञेय से अनिमित्त ज्ञानमात्र के निमित्त<(उपस्थिति भर में निमित्तमात्र) स्थिति है,
जब भी तुम चलते हो, तब तुम्हारी दृष्टि दोनों आँखों के मध्य के आधार से ४५ अंश के कोण में नाक के आगे की सीध में झुककर होती है,
तुम्हारी ध्यान<दृष्टि नाक के आगे की सीध में होकर ही चलने की प्रक्रिया के ज्ञात होने में होती है,
अगर ऐसा प्राकृतिक योग न होता,
तो तुम्हारे चलने में संतुलन ही नही बन पाता,
जब भी ध्यान में बैठो, तो प्राकृतिक ज्यामिति के संकेत अर्थ इस प्राकृतिक योग से अभिप्रेरित हो संतुलन-पूर्वक संभले हुए रहो,
तभी फिर हर कोण के स्थान & समय space & time<(line, length, timing) पर भली-भाँति नियंत्रण है...
_मूलतः सहज स्वभाव के आधार पर किसी के साथ कोई भेद-भाव नही है, कोई पक्षपात नही है, कोई भी वंचित नही है, बीज रूप में किसी के पास भी कम अथवा अधिक नही है,
पूर्णतः विकसित होने में बीज रूप में सब में पूर्ण संभावना है,
मूर्खों की बनायी हुयी अप्राकृतिक, अन्यायपूर्ण-शोषणपूर्ण जातिगत कुव्यवस्था के मनोवैज्ञानिक दबाव में मत पड़ो,
जन्म के आधार पर न उच्चता का अभिमान हो और न निम्न होने का हीनभाव,
क्योंकि दोनों ही अतियां गिराने वाली हैं,
संतुलित मध्यम गति में स्थिरता-पूर्वक संभले हुए रहो,
अब तो सम्यग् संकेतार्थ सीधा मार्ग प्रशस्त कर दिया गया है,
फिर किस बात की देरी है!
अभी से ही सीधे सम्यग् यथार्थ निष्ठ तत्पर हो जाओ...

15 NOV 2024(vii)
_जब तक सम्यग् यथार्थतः सत्य स्पष्ट नही हो जाता तब तक बस सम्यग् यथार्थतः सत्य ओर ही अनवरत् शोधरत् रहो.....
तुम्हारा कहीं भी जन्म हुआ है पर तुम्हारा अंततः उद्देश्य सम्यग् यथार्थतः सत्य स्पष्टता के निमित्त ही है,
जहाँ भी तुम्हारा जन्म हुआ अगर वहीं के परम्परागत दृष्टिकोण में आबद्ध होकर रह गए
और जीवन रहते सम्यग् यथार्थतः सत्य स्पष्ट नही हुआ तब तो निश्चित ही यह जीवन की सबसे बड़ी हानि है,
ध्यान रहे तुम्हारा हिन्दू-मुस्लिम इत्यादि होना यह सब घटना भर है इसमें कोई तथ्यगत् सच्चाई नही,
अगर तुम वाकई ईमानदार हो तो सबसे पहले सच की खोज करोगे कि आख़िर सच क्या है,
सच की खोज होने पर ही तुम फिर अंधेरे में नही हो, तुम फिर किसी गुमराही में, किसी भ्रम में, किसी धोखे में नही हो,
जन्म लेते ही सबसे पहली ईमानदारी है सत्य की खोज करना बाकी धरम-करम सबकुछ बाद में है,
सच जान लेने पर ही क्या होना चाहिए-क्या नही होना चाहिए, क्या करना चाहिए-क्या नही करना चाहिए इस संबंध में भली-भाँति ठीक-ठीक न्यायपूर्ण निर्णय होता है अन्यथा तो धोखा ही है, दिग्भ्रम ही है, अंधेरे में ठोकरें खाते हुए भटकते ही रहना है,
हाँ सत्य का प्रकाश हो जाने पर सत्य के प्रकाश में भटकने का कोई मतलब ही नही फिर तो कोई धोखा, कोई दिग्भ्रम है ही नही,
ध्यान रहे सम्यग् यथार्थतः सत्य स्पष्टता में अपेक्षित दृष्टिकोण का पूर्व निर्धारित सत्य सबसे बड़ी बाधा है,
सामान्यतः हर कोई अपने-अपने अपेक्षित दृष्टिकोण के सत्य से दिग्भ्रमित है,
हिन्दुओं में ही द्वैत-अद्वैत-विशिष्टाद्वैत-शुद्धाद्वैत-द्वैताद्वैत-त्रैत आदि अपेक्षित दृष्टिकोण हैं,
इसी तरह बौद्ध-जैन आदि में भी नाना तरह के अपेक्षित दृष्टिकोण हैं,
अपेक्षित दृष्टिकोण में 'यह सत्य है' की भ्रान्ति होना स्वाभाविक है<यही सम्यग् यथार्थतः सत्य की खोज में बाधा है,
ध्यान रहे जब तक कोई भी अपेक्षित दृष्टिकोण बना हुआ है तब तक कदापि निभ्रान्ततः सम्यग् यथार्थतः सत्य स्पष्ट नही हो सकता,
अपेक्षित दृष्टिकोण का भ्रमजाल ही कुछ ऐसा है कि सामान्यतः यह भंग नही हो पाता,
जब अपनी तरफ से कोई आरोप नही रह जाता, कोई अपेक्षा नही रह जाती,
जब अपनी तरफ से कोई शर्त, कोई पूर्वाग्रह, कोई मताग्रह नही रह जाता तब सहज ही दृष्टिकोण भंग हो जाता है,
सहज ही यथार्थ सत्यता स्पष्ट हो जाती है,
सामान्यतः जिसे भी देख लो चाहे वह वेदांती हो, चाहे कोई भी हो हर किसी का अपना पूर्वाग्रह, अपना मताग्रह बना हुआ है,

खैर उन बेचारों को भी क्या दोष देना उनकी पूर्वाग्रह में, मताग्रह में बँधने की विवशता जो है,
या तो पूर्वाग्रह-मताग्रह ही हो सकता है, या सत्य की खोज ही हो सकती है इसके अलावा तीसरा विकल्प भी तो नही है,
पूर्वाग्रह से मुक्त हो, मताग्रह से निष्पक्ष हो तथ्यतः सत्य की खोज में रहना सामान्य जनों के बस की बात नही,
पूर्वाग्रह से मुक्त हो, मताग्रह से निष्पक्ष हो यथार्थतः सत्य की खोज में कोई विरला ही रहता है,
दृष्टिकोण के प्रति भली-भाँति सजग हो सावधान रहना आवश्यक है,
दृष्टिकोण के प्रति भली-भाँति सजग हो सावधान होते रहने से दृष्टि की उत्तरोत्तर शुद्धि होती है, उत्तरोत्तर सम्यग् दृष्टि स्पष्ट होती है,
इस कल्प में इससे पहले किसी ने भी अपेक्षित दृष्टिकोण से सावधान नही कराया जो अब कराया जा रहा है,
सम्यग् आप्त-पुरुषोत्तम द्वारा पूर्व कल्प में भी अपेक्षित दृष्टिकोण से सावधान कराया गया था,
पूर्व कल्प की तरह ही इस वर्तमान कल्प में भी सम्यग् आप्त-पुरुषोत्तम द्वारा अपेक्षित दृष्टिकोण से सावधान कराया जा रहा है....

17 NOV 2024(i)

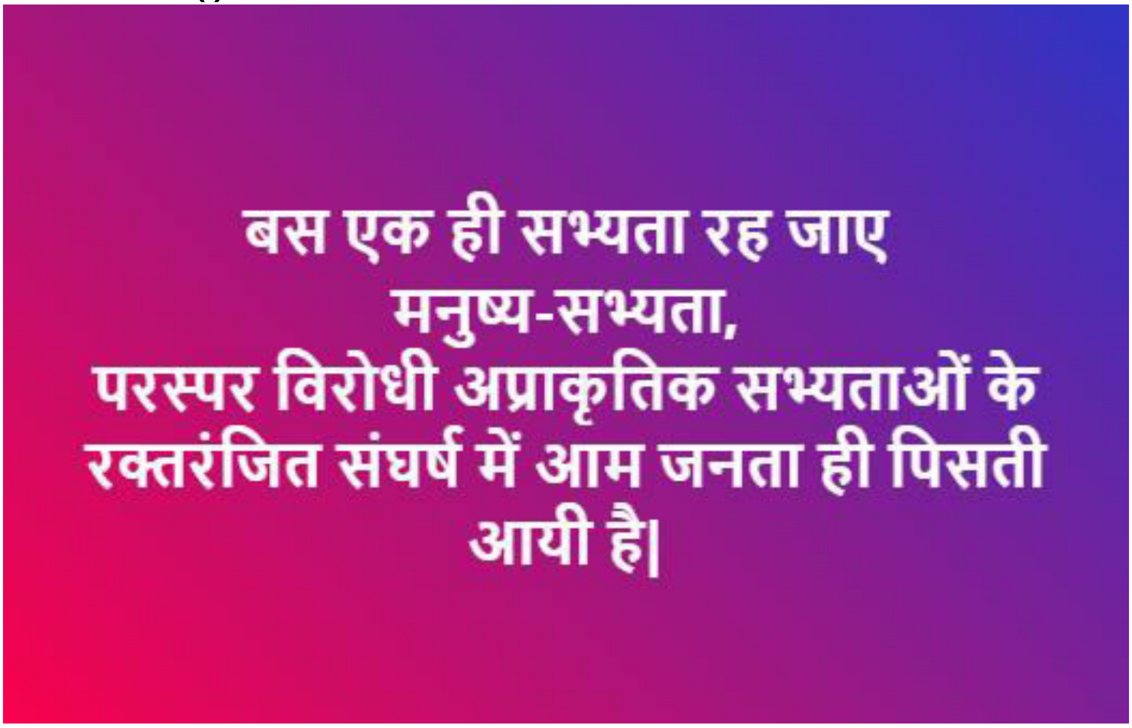

17 NOV 2024(ii)

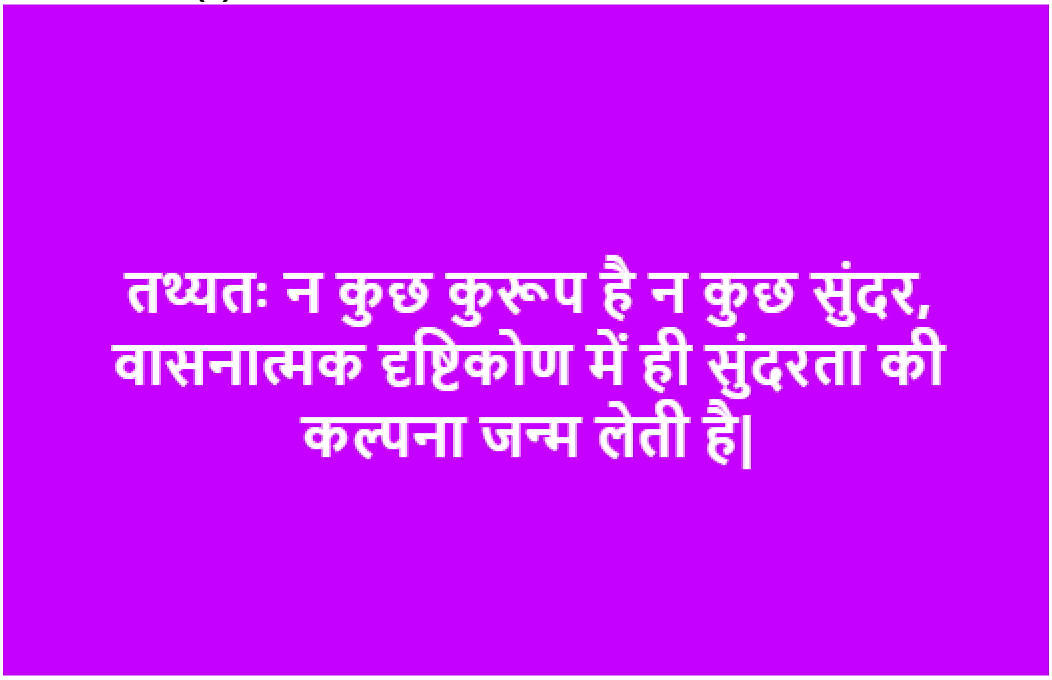

17 NOV 2024(iii)
सम्यग् भगवान् होने के मापदंड में जो भी पूरा खरा उतरता है<वही सम्यग् भगवान् है,
जिसकी दृष्टा-दृश्य से अनिमित्त दर्शनमात्र में स्थिति है,
जिसकी ज्ञाता-ज्ञेय से अनिमित्त ज्ञानमात्र में स्थिति है,
जिसमें जरा भी राग-द्वेष-मोह नही है,
जिसमें जरा भी काम-क्रोध-लोभ नही है,
जिसमें जरा भी छल-धोखाधड़ी नही है,
जिसमें जरा भी अपेक्षा नही, जरा भी कामना नही, जरा भी इच्छा नही, जरा भी वासना नही, जरा भी मलिनता नही, जरा भी आसक्ति नही,
जो पूर्णतः निर्दोष-पूर्णतः निष्पाप है,
जिसमें जरा भी अहंकार नही, जरा भी कर्ता-भाव नही, जरा भी साक्षी-भाव नही, जरा भी भोक्ता-भाव नही, जरा भी दृष्टा-भाव नही, जरा भी ज्ञाता-भाव नही,
जो पूर्णतः पूर्ण सरल-सहज-शान्त-स्थिर है,
जो पूर्णतः विशुद्ध, पूर्णतः पवित्र, पूर्णतः निर्मल है,
जिसमें जरा भी मिथ्यादृष्टि नही है,
जो हर तरह की मिथ्यादृष्टि से सर्वथा रहित है,
जो जरा भी अपेक्षित दृष्टिकोण में आबद्ध नही है,
जिसका कोई पुरोहित नही, जिसका कोई उपाध्याय नही, जिसका कोई आचार्य नही, जिसका कोई गुरु नही बल्कि जो अंततः सबका परम् आचार्य है, अंततः सबका परम् गुरु है,
जिसका कोई नाथ नही बल्कि जो सबका नाथ है,
जिसका कोई स्वामी नही बल्कि जो सबका स्वामी है,
जिसका कोई ईश्वर नही बल्कि जो सबका ईश्वर है, जो न किसी का अंश है न ही जिसका कोई अंश है,
जो न किसी का अवतार है न ही जिसका कोई अवतार है,
जो न किसी का स्वरूप है न ही कोई जिसके स्वरूप में है,
जिसकी समानता में कोई भी नही, जिससे बढ़कर कोई भी नही बल्कि जो सबसे बढ़कर है, सबसे महान है, सबसे श्रेष्ठ है, सबसे उत्तम है,
जो पूर्णतः सर्व-समर्थ-पूर्णतः सर्व-शक्तिमान है,
जिसकी महिमा-गरिमा में कोई भी नही,
जिसकी महिमा-गरिमा अपरिमित है,
जिसकी तुलना-उपमा में कोई भी नही,

जो पूर्णतः अतुलनीय-पूर्णतः अनुपम है,
जिसकी कोई मिशाल नही, जिसका कोई शरीक नही, जिसका कोई साझेदार नही,
जो किसी में शामिल नही, जिसमें कोई शामिल नही,
जो जरा भी आरोपित नही, जरा भी स्थापित नही, जरा भी कृत्रिम नही,
जो किसी से भी एक नही, जो किसी की भी एकता में नही,
जिसका ज्ञान-दर्शन-आचरण पूर्णतः पूर्ण स्पष्ट है, पूर्णतः पूर्ण पारदर्शी है,
जो पूर्णतः निर्भय है, पूर्णतः निर्वैर है,
जो पूर्णतः करुणापूर्ण है,
जो किसी को भी नही मारता बल्कि सबको अभयदान देता है, सबको क्षमादान देता है,
जिसमें जरा भी झूठ नही,
जिसमें जरा सा भी मिथ्यात्व नही, जो सत्यतापूर्ण है,
जो सम्यग् आप्त-प्रमाणित है,
जो जिस अर्थ में जैसा है वैसा ही है जरा भी अन्य अर्थ में नही,
जो पूर्णतः सद्धर्मी है,
जो पूर्णतः निष्पक्ष न्यायपूर्ण है,
जो जरा भी मायावी नही,
जो पूर्णतः निभ्रान्त स्पष्ट है,
जो अपने शुद्धतम् स्वरूप से जरा सा भी इतर नही होता<वही सम्यग् भगवान् कहे जाने के योग्य है,
लोकदृष्टि<लोकाचार में प्रचलित राम,कृष्ण,
ब्रह्मा,विष्णु,शिव,दुर्गा आदि कोई भी सम्यग् भगवान् के मापदंड में खरा नही उतरते,
इसलिए लोकाचार के घोषित तथाकथित भगवान कदापि सम्यग् भगवान् नही हैं,
जो कोई भी निर्धारित मापदंड में पूर्णतः खरा उतरता है<वही सम्यग् भगवान् कहलाने योग्य है...

17 NOV 2024(iv)
_नासिकाग्र के ठीक केंद्र में एक ऐसा रहस्यमय तथा गोपनीय अतिसूक्ष्म छिद्र wormhole है<जहाँ से ब्रह्मांड के ओर-छोर की दूरी बराबर है,
(जहाँ से ब्रह्मांड के हर कोने की दूरी शून्य है),
जहाँ से भूत-भविष्य की दूरी बराबर है,
अगर सापेक्षिक आयाम में बिखरी हुई दृष्टि का वहाँ पूर्णतः सिमटाव हो जाता है तो अंतर्दृष्टि खुल जाएगी,
अगर तुम दृष्टि के सिमटाव में असफल हो जाते हो तो कम से कम उस अतिसूक्ष्म छिद्र wormhole से अपनी दृष्टि की सीध का मिलान कर लो,
अगर मिलान सफल हो गया तो तुम्हें अंतःजगत से संकेत signal आने आरंभ हो जाएंगे,
फिर वहाँ की त्रिज्यामितीय तरंगों से सेटअप setup पूरा होने पर तुम्हारा लोक-लोकांतर में कहीं से भी संपर्क connection स्थापित हो सकता है,
ध्यान रहे जो भौतिक-वैज्ञानिक के लिए संभव नही वह सम्यग् मार्ग के नैमित्तिक-योगी के लिए संभव है,
अंतर्दृष्टि खुलने पर ब्रह्मांडीय-ऊर्जा पर भी नियंत्रण हो जाता है,
ब्रह्मांड की हर गति पर नियंत्रण हो जाता है,
ऐसी स्थिति में खरबों प्रकाश-वर्ष की दूरी एक सेकेंड से भी कम समय में नियंत्रित हो जाती है,
ध्यान रहे यहाँ "अंतर्दृष्टि" कहने का तात्पर्य अंतर्दृष्टि की लोकप्रचलित मान्यता से नही है,
जब बाहरी दृष्टि का बाहर से भीतर की ओर<नासिकाग्र के ठीक केंद्र की ओर पूरा सिमटाव हो जाता है तभी सही अर्थ में अंतर्दृष्टि खुलती है.....
अगर कहीं भी भटक गए हो तो नासिकाग्र की सीध में आ जाओ,
भले ही सब-कुछ भूल जाओ पर अपनी नाक को>(नाक के आगे की सीध को), अपनी श्वास को कभी मत भूलना<सीधा मार्ग स्पष्ट हो जाएगा,
नासिकाग्र (नाक के आगे) की आधारीय केंद्रीय सीध स्पष्ट होने पर उत्तरोत्तर सीधे से सीधे सीध के लिए निभ्रान्त सीधा मार्ग स्पष्ट हो जाता है,
नाक के आगे की सीध का श्वास के ज्ञात होने की सीध से मिलान करने पर जो सीध सुनिश्चित होती है<उस सीध में भली-भाँति संतुलनपूर्वक स्थिर हो संभले हुए रहो<यहीं से उत्तरोत्तर सीधे से सीधे होने का सीधा-स्पष्ट मार्ग है<जहाँ से

कदापि भटकना नही पड़ता<जहाँ से कदापि गिरना नही पड़ता<जहाँ से सीधे ही सम्पूर्ण भ्रमजाल से, सम्पूर्ण संशयों-संदेहों से, सम्पूर्ण अज्ञानता से, सम्पूर्ण दुःखों से पूर्णतः मुक्ति है......
_सम्यग् सद्धर्म का मार्ग सबसे अनुत्तर है, सबसे श्रेष्ठ है, सबसे शुद्ध है, सबसे पवित्र है,
द्वैत-अद्वैत आदि सभी सापेक्षिक मत वालों को अंततः सम्यग् सद्धर्म अनुशासन के अंतर्गत ही होना है<इसके बिना निःश्रेयस>मुक्ति नही है.......
सम्यग् आप्तपुरुष के सम्यग् सद्धर्म अनुशासन को लौकिक अर्थ की दासता अथवा पराधीनता से कभी नही लेना,
सम्यग् सद्धर्म का अनुशासन होने पर ही सापेक्षिक<संसार-चक्र की दुःखद दासता से मुक्ति है,
जो भी सम्यग् सद्धर्म के अनुशासन में नही है<वही संसार-चक्र की दुःखद दासता में है, दुनिया की गुलामी में है,
सम्यग् आप्तपुरुष का सम्यग् सद्धर्म-शासन बहुत ही शीघ्र लोक में लागू होने वाला है,
वेदांत के नेति-नेति इति वेदानुशासनम् की पूर्णतः पूर्णता में आधारीय सम्यग् सद्धर्म का अनुशासन है,
लोकप्रचलित मान्यता के अनुसार वामदेव ऋषि ने जन्म लेने से पहले ही गर्भ के भीतर से नेति-नेति<इस निषेधमुख निर्वचन से उसी के पिता की पारम्परिक धार्मिक मान्यता का निषेध किया था,
फिर यहाँ तो प्रत्यक्ष उपस्थित सम्यग् आप्तपुरुष के सम्यग् आप्त-प्रमाणित उपदेश हैं<उससे अगर गीता-पुराण आदि अपेक्षाकृत अध्यारोप का निषेध हो भी जाता है तो यह तुम्हारे कल्याण के उद्देश्य से है,
क्योंकि अध्यारोप का जब तक पूर्णतः निषेध नही हो जाता तब तक पूरी आंतरिक शुद्धता नही है, पूरी आंतरिक पवित्रता नही है,
और जब तक आंतरिक शुद्धता-पवित्रता पूरी नही हो जाती तब तक कदापि निभ्रान्त तथ्यतः यथार्थ स्पष्टता नही,
(हजारों सालों से चला आ रहा झूठ अब नंगा होने वाला है, झूठ के पुजारियों की अब शामत आने वाली है),
सम्यग् मापदंड तराजू भी यहाँ है-तौलने के लिए सम्यग् मापदंड के बाँट भी यहाँ हैं,
कौन सा सौदा कितना खरा उतरता है उसका यहाँ सम्यग् ऋत्<संगत न्याय है...

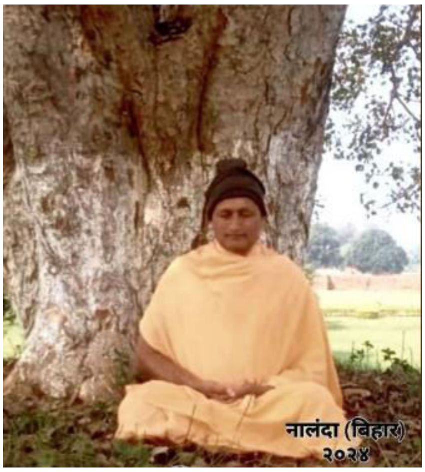

19 NOV 2024(i)

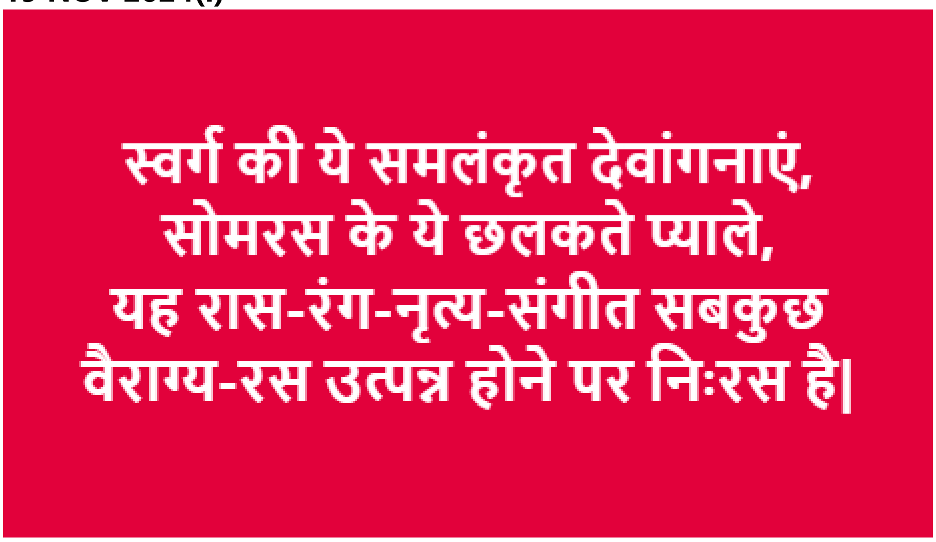

19 NOV 2024(ii)

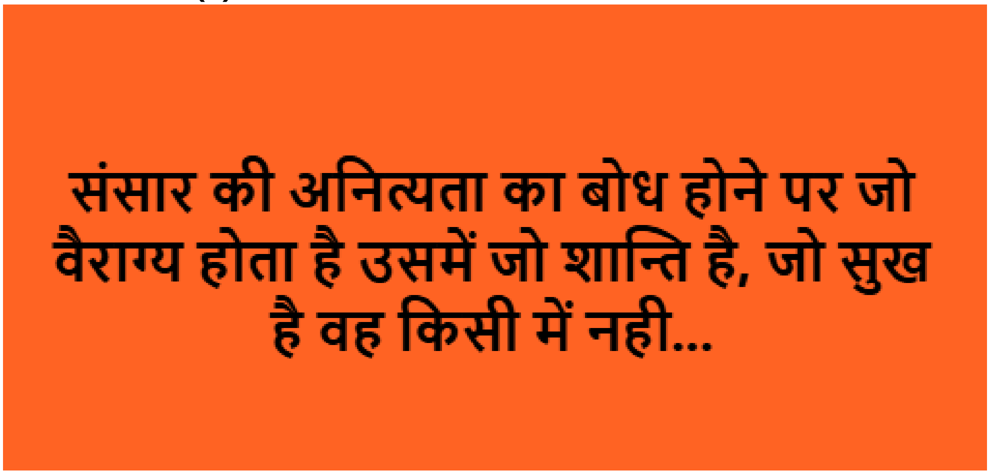

19 NOV 2024(iii)

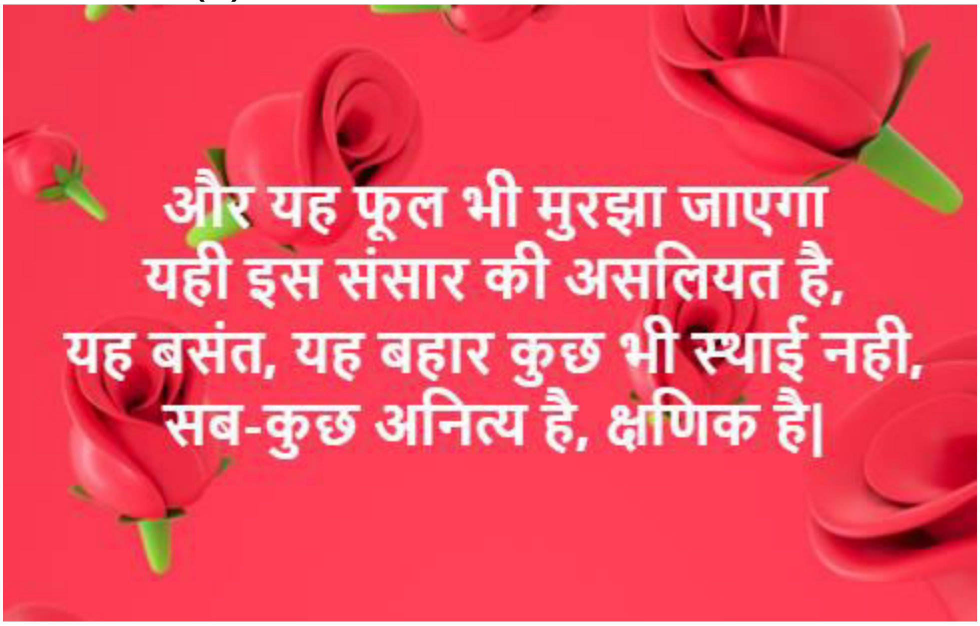

19 NOV 2024(iv)

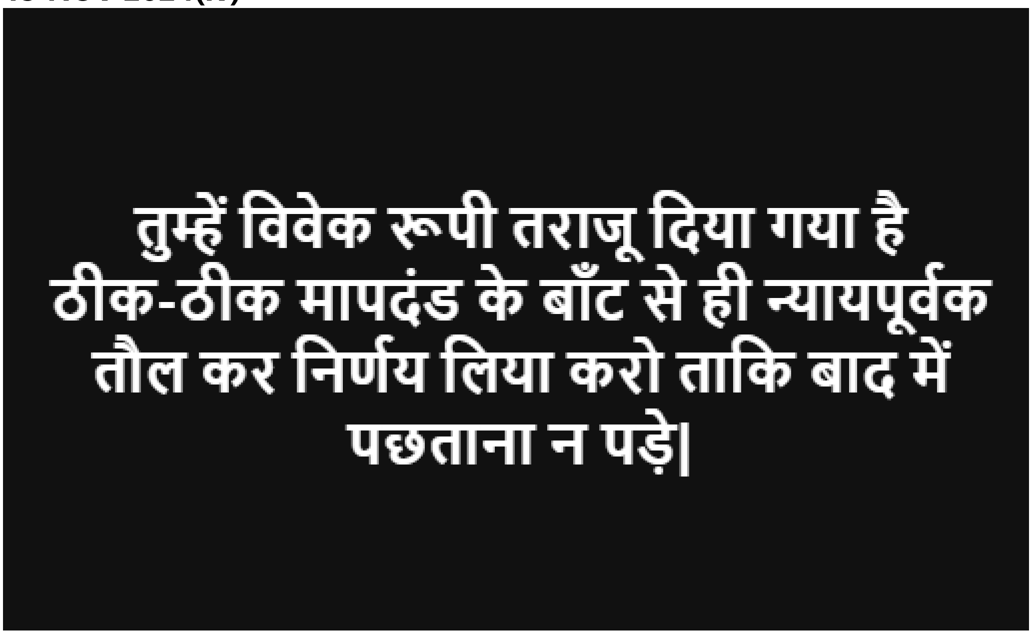

19 NOV 2024(v)

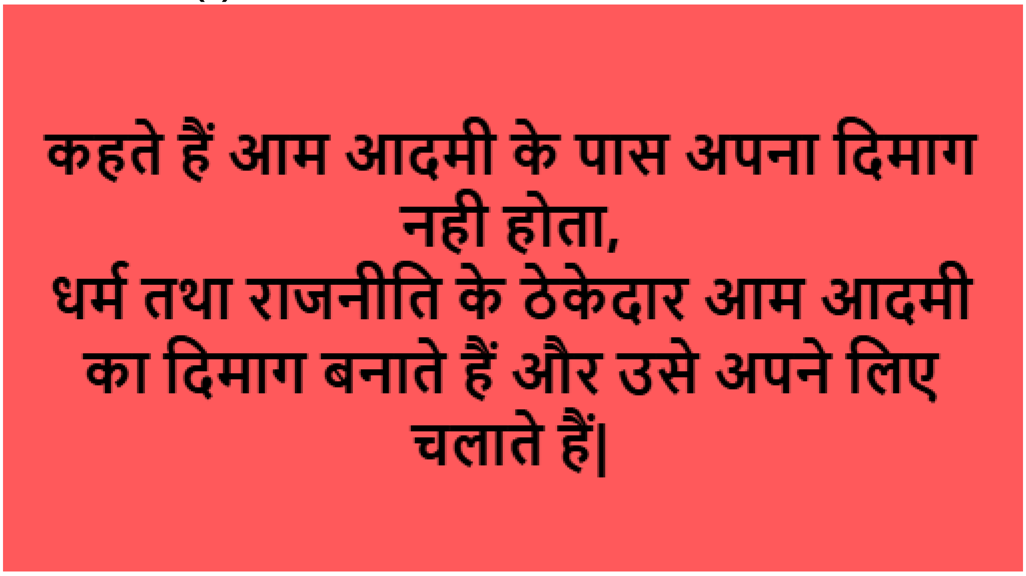

19 NOV 2024(vi)

19 NOV 2024(vii)

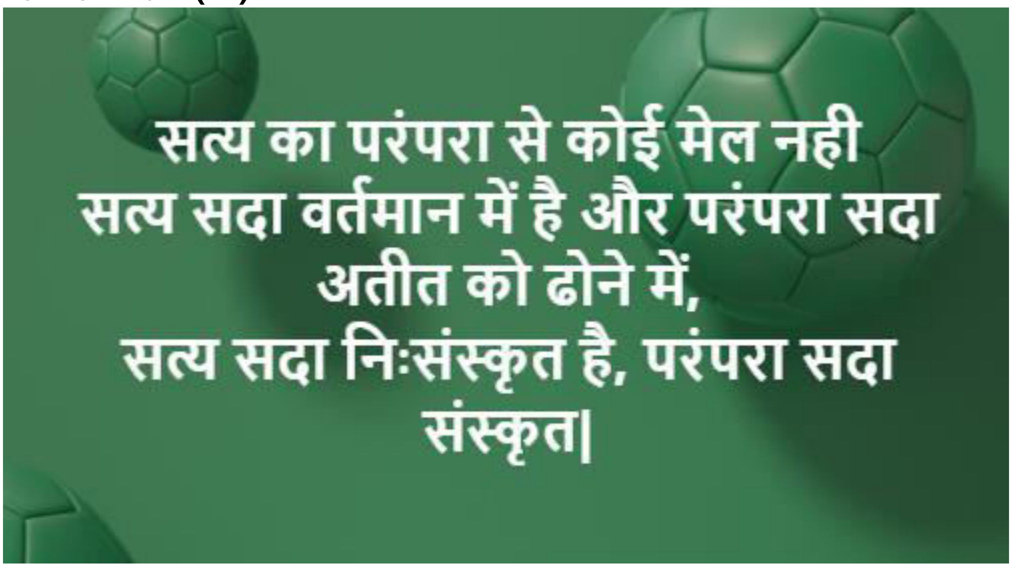

19 NOV 2024(viii)
मस्तिष्क की पूरी शक्ति ही पूरी तरह वर्तमान में रहने से है, प्रेजेंट मोमेंट में रहो,
सकारात्मक लक्ष्य के साथ सकारात्मक सोच रखो<अवचेतन मन पर इसका गहरा प्रभाव पड़ता है,
हर बार सकारात्मक सोच के साथ पूर्णतः निश्चिंत हो शयन करो,
तुम्हारी सोच को ही तुम्हारा अवचेतन मन वास्तविकता में लेता है,
यद्यपि यह अपने लिए वास्तविकता का भ्रम उत्पन्न करता है,
इसलिए इससे भी सावधान रहो,
तुम्हारी धारणा पर ही तुम्हारी भावनाएं, तुम्हारे विचार निर्भर हैं,
इसलिए सकारात्मक लक्ष्य के साथ सकारात्मक धारणा रखो,
सीधे से सीधे हो वर्तमान से वर्तमान में उपस्थित रहो,
स्थिर ध्यान-अभ्यास के लिए सीधे स्थिर पद्मासन में बैठो,
पद्मासन में बैठने से रीढ़ की हड्डी से लेकर मस्तिष्क तक का सीधा संतुलन स्थापित होता है,
श्वास के ज्ञान में उपस्थित रहने से मस्तिष्क की तरोताजगी बढ़ती है, कार्य क्षमता बढ़ती है,
व्यवहारतः यथा-सहज श्वास के ज्ञान में उपस्थित रहना तुम्हारी सजगता के लिए, होश के लिए, सावधानी के लिए alertness के लिए जरूरी है,
आज MRI, EEG, MEG, TMS आदि आधुनिक मशीनों के माध्यम से दिमाग का कई कोणों से अध्ययन किया जा रहा है,
न्यूरोलॉजी के अनुसार मस्तिष्क में स्थित तंत्रिका-कोशिका (neuron) आँख, कान, त्वचा आदि ज्ञानेन्द्रियों (senses) से कुछ ही मिली-सेकेंड में सिग्नल प्राप्त कर लेता है,
एक न्यूरॉन दूसरे न्यूरॉन को सिग्नल भी भेजता है, और रिसीव भी करता है,
{सिग्नल भेजने के लिए न्यूरॉन एक विशेष तरह का रासायनिक संदेशवाहक (chemical messenger)>न्यूरोट्रांसमीटर को अभिमुक्ततः स्थापित (release) करता है},
सिग्नल रिसीव करने वाला न्यूरॉन उस सिग्नल को एक नये इलेक्ट्रिकल सिग्नल के रूप में दूसरे न्यूरॉन को ट्रांसफर करता है,
इस तरह तंत्रिका-कोशिकाओं (neurons) के बीच विद्युतीय-रासायनिक सिग्नल
(electrical-chemical signal) के इसी आदान-प्रदान में विचारों का जन्म होता है,
यद्यपि वैज्ञानिकों को अभी तक पूर्णतः यह सुनिश्चित नही हो पाया कि विचार वैद्युत-रासायनिक प्रतिक्रिया (electro-chemical reaction) का ही परिणाम है,
ध्यान रहे वैज्ञानिकों के पास यह एक अधूरी सच्चाई ही है,
मस्तिष्क में स्थित तंत्रिका-कोशिकाएं (neurons) विचारों के लिए तरंग का माध्यम भर है,
मस्तिष्क विचारों की तरंगित अभिव्यक्ति का यान्त्रिक माध्यम भर है,
पर विचार तरंग भर नही है<उसका आधार ज्ञान है,
उसके मूल में चेतना के माध्यम से संस्कार का दबाव है,
कर्म-संस्कार के दबाव में ही कर्म-संस्कार के अनुसार चेतना के माध्यम से मस्तिष्क में विचार की तरंगें उत्पन्न होती हैं,
मस्तिष्क स्वयं विचार उत्पन्न नही कर सकता,
जड़ मस्तिष्क स्वयं विचारों पर नियंत्रण नही कर सकता,
विचारों के पूर्णतः नियंत्रण के लिए विचारों के आधारीय ज्ञानमात्र में स्थिति होनी आवश्यक है,
विचार क्रिया है पर विचार का ज्ञान क्रिया नही है, अगर विचार (क्रिया) से अनिमित्त हो सीधे ही विचार के ज्ञानमात्र में स्थिति हो जाए तो ऐसी स्थिति में विचारों में रहते हुए भी विचारों से स्पर्श नही हो पाएगा, विचारों से अलिप्त स्थिति हो जाएगी...... 'जल-कमलवत्' सिद्ध-अवस्था......
ऐसी सिद्धावस्था में किसी भी बुद्धिमत्ता का कदापि नियंत्रण संभव नही है,
_ध्यान रहे जब तक तुम्हारी ज्ञानमात्र में स्थिति नही है,
जब तक तुम प्रतिक्रियात्मक दबाव में हो तब तक तुम गुलाम हो,
तब तक कोई भी उन्नत-बुद्धिमत्ता तुम्हारे मस्तिष्क को नियंत्रण में कर अपने कम्प्यूटर प्रोग्राम में तुम्हें मानसिक तथा बौद्धिक गुलाम बना सकती है,
हो सकता है ऐसा ही हो क्योंकि कब<किस समय कौन सा विचार आ जाए मूर्छा में होने से इस पर तुम्हारा नियंत्रण तो है नही,
तुम्हारे न चाहने पर भी कभी भी दुर्घटनावश कोई भी विचार आ जाता है,

हो सकता है जिसे तुम अपना विचार समझ रहे हो वह तुम्हारा विचार न होकर किसी अन्य उन्नत बुद्धिमान सभ्यता द्वारा प्रक्षेपित किया हुआ विचार हो,
ध्यान रहे विचार पर तुम्हारे भविष्य की दशा तथा दिशा निर्धारित होती है,
इसलिए पूर्णतः यथा-सजगता में रहते हुए पूर्णतः विवेकयुक्त हो विचारों पर नियंत्रण हो<यह बहुत ही आवश्यक है,
नियमित रूप से ध्यान-अभ्यास जारी रखो,
अपना होश बढ़ाओ, अपनी सजगता बढ़ाओ, अपना विवेक बढ़ाओ,
सर्वप्रथम श्वास को उसकी यथा-सहजता में चलने दो, तत्पश्चात उस यथा-सहजता में हर आती-जाती श्वास-प्रश्वास के ठीक समय पर उपस्थित रहो,
ध्यान रहे यह तो ध्यान का बस आरंभ है,
इसलिए यहीं तक नही रुकना है,
उत्तरोत्तर स्पष्टता में आगे बढ़ना है.....
_भविष्य में उन्नत दुष्ट-बुद्धिमत्ता से सबसे अधिक खतरा है,
दुष्ट-बुद्धिमत्ता ने न्यू वर्ल्ड ऑर्डर भी जारी कर दिया है,
भारतीय जन प्रतिनिधि से लेकर इसमें कई दुष्ट शामिल हैं,
अभी तो यह एक शुरुआत भर है......
सामान्यतः तुम्हें यह पता भी नही चलेगा कि तुम किसी दुष्ट-बुद्धिमत्ता के द्वारा नियंत्रित मानसिक & बौद्धिक गुलाम हो गए हो,
तुम्हें सम्मोहनवश भ्रान्ति में यही लगेगा कि तुम अपनी स्वतंत्र इच्छा से स्वतंत्रतापूर्वक जीवन जी रहे हो,
दुष्ट आसुरी-प्रवृत्ति पूरे विश्व में एकमात्र शासन स्थापित करना चाहती है,
लोगों को कृत्रिम-बुद्धिमत्ता (artificial intelligence) के माध्यम से अपने नियंत्रण में रखना चाहती है,
लोगों के साथ बहुत ही बड़ा विश्वासघात होने वाला है,
जिसे लोग अभी हितैषी समझ रहे हैं, मसीहा समझ रहे हैं वे ही उनके छिपे हुए घोर शत्रु हैं,
इससे पहले कि लोग संभल पाएंगे तब तक बहुत देर हो चुकी होगी......
दुष्ट-प्रवृति के नियंत्रण में कृत्रिम-बुद्धिमत्ता विकसित होती ही जा रही है,
उत्तरोत्तर विकसित होती कृत्रिम-बुद्धिमत्ता के प्रभाव में मनुष्य की उसकी अपनी निजता प्रभावित हो रही है,
मनुष्य यंत्रवत् संवेदनहीन होता जा रहा है,
अगर ऐसा ही चलता रहा तो अंततः एक दिन मनुष्य-जाति का दर्दनाक अंत हो जाएगा.....
यहाँ मनुष्य-जाति के लिए नकारात्मक घोषणा नही है बल्कि मनुष्य-जाति को संकेतार्थ सावधान किया जा रहा है,
सकारात्मक लक्ष्य की दिशा में वैज्ञानिक उन्नति अनुचित नही है बल्कि सकारात्मक विकास के निमित्त सराहनीय है,
पर कोई भी वैज्ञानिक आविष्कार होता है तो उसमें विशेषतः दुष्ट-प्रवृत्ति का हस्तक्षेप हो ही जाता है,
साधु-प्रवृत्ति के लोग सामान्यतया समाज से उदासीन होते हैं,
वे खुलकर समाज में आते नही हैं,
इसलिए दुष्ट-जनों को हस्तक्षेप का मौका मिल जाता है,
(जिससे वैज्ञानिक आविष्कारों का सकारात्मक लक्ष्य की दिशा में सकारात्मक<सदुपयोग नही हो पाता दुरुपयोग ही अधिक होता है,
हिरोशिमा-नागासाकी का एटम बम से विध्वंस करना<इसका उदाहरण है),
मनुष्य-समाज को बचाने के लिए अब
साधु-प्रवृत्ति के लोगों का आना बहुत ही आवश्यक है....

19 NOV 2024(ix)
क्या कोई ईश्वर है?
तुम्हारा यह प्रश्न ही अपेक्षित दृष्टिकोण में है,
जिसका उत्तर तुम पूर्व निर्धारित अपेक्षित दृष्टिकोण में ही चाहते हो,
और पूर्व निर्धारित अपेक्षित दृष्टिकोण में तुम्हें इसका उत्तर मिल भी जाएगा,
चूँकि अपेक्षित दृष्टिकोण में पहले से ही तुम्हारा उत्तर निर्धारित है, तय है,
इसलिए ध्यान रहे तुम्हारा यह प्रश्न उसी के दबाव में उत्पन्न हुआ है,
अपेक्षित दृष्टिकोण के दबाव में उत्पन्न हुआ हर प्रश्न तथा उसका उत्तर अपने-आप में एक नयी समस्या है न कि समाधान.....
_चूँकि असल समस्या अपेक्षित दृष्टिकोण ही है,
इसलिए अपेक्षित दृष्टिकोण में आत्मा-ब्रह्म
इत्यादि किसी भी पूर्व निर्धारित दार्शनिक प्रश्न तथा उसके उत्तर के प्रति सावधान रहना आवश्यक है,
चूँकि क्या कोई ईश्वर है<यह प्रश्न ही सापेक्षिक दृष्टिकोण में है,
और चूँकि परस्पर विरोधी अंतों के
सापेक्षिक-दबाव में ही सापेक्षिक दृष्टिकोण स्थापित होता है,
इसलिए ईश्वर के संदर्भ में समर्थन तथा विरोध के परिप्रेक्ष्य में उसका पक्ष तथा विपक्ष दोनों ही एक-दूसरे के विरुद्ध सापेक्षता में स्थापित हैं,
सापेक्षिक-दबाव में स्थापित कोई भी पक्ष कदापि पूर्णतः दोषरहित<पूर्णतः शुद्ध नही हो सकता....
_एकांतिक उत्तर अर्थात् एक अंत से संबंधित उत्तर में कदापि समाधान नही है,
सापेक्षिक-दबाव में एक अंत से दूसरे अंत में गिरने का चक्र चलता रहता है,
ईश्वरवादी-अनीश्वरवादी दोनों ही सापेक्षतः एकांतिक दबाव में होने से सहज-स्थिर नही हैं,
सापेक्षतः एकांतिक दबाव में दोनों का अपने-अपने अंत से गिरना स्वाभाविक है,
चूँकि दो अंतों के माध्यमिक संतुलन पर ही यथा सहज-स्थिरता है,
इसलिए दो अंतों के मध्य के स्थिरतापूर्ण संतुलन पर ही स्थिरतापूर्ण समाधान है,
जैसा ईश्वर परंपरा-प्राप्त प्रचलित ईश्वरवादियों के पूर्व निर्धारित अपेक्षित दृष्टिकोण में है<वैसा ईश्वर पूर्व निर्धारित अपेक्षित दृष्टिकोण की भ्रान्ति में ही सिद्ध है न कि निभ्रान्त तथ्यतः यथार्थ स्पष्टता में.....
_ध्यान रहे आत्म-अनात्म, ईश्वर-अनीश्वर, ब्रह्म-शून्यता, द्वैत-अद्वैत आदि<यह सब दृष्टिकोण है,
अपेक्षित दृष्टिकोण की भ्रान्ति है न कि निभ्रान्त तथ्यतः यथार्थ,
इसलिए दृष्टिकोण के प्रति सावधान हो निभ्रान्त तथ्यतः यथार्थ स्पष्टता के निमित्त रहते हुए दर्शनमात्र के निमित्त हो जाओ तभी निभ्रान्त समाधान है,
पूर्व निर्धारित ईश्वरवादियों के पास उन्हीं के द्वारा पूर्व निर्धारित ईश्वर को प्रमाणित<सिद्ध करने के लिए तर्क, शब्द (शास्त्र) आदि जो कुछ भी पूर्व निर्धारित प्रमाण हैं उसका पूर्व निर्धारित अनीश्वरवादी अपने पूर्व निर्धारित तर्क आदि प्रमाणों से खंडन कर देते हैं,
यद्यपि पूर्व निर्धारित ईश्वरवादी तथा अनीश्वरवादी दोनों ही अपने-अपने अपेक्षित दृष्टिकोण में दिग्भ्रमित हैं,

इसलिए इनके खंडन तथा समर्थन का कोई अर्थ नही है,
जो भी पूर्व निर्धारित अपेक्षित दृष्टिकोण में है उससे सावधान रहना आवश्यक है,
जो कुछ भी पूर्व निर्धारित है<वह सब परंपरा है,
ध्यान रहे सत्य का परंपरा से कोई मेल नही,
सत्य सदा वर्तमान में है, और परंपरा सदा अतीत को ढोने में है,
सत्य का संस्कार नही बनता बल्कि परंपरा का संस्कार बनता है, और सारा बंधन ही संस्कार का है.....
_आरोपित मिथ्यादृष्टि में प्रतिष्ठित गीता-उपनिषद-वेदांत-शास्त्र-पुराण-आगम आदि के अपेक्षित दृष्टिकोण में स्थापित किए गए कृत्रिम (मिथ्या) ईश्वर को ईश्वर कहना अपौरुषेय
ऋत्<सिद्ध सम्यग् ईश्वर का अपमान है,
ध्यान रहे अनीश्वरवादी भी ऐसे ही झूठे ईश्वर का खंडन कर सकते हैं जो अज्ञानी-जनों द्वारा अपेक्षित दृष्टिकोण में स्थापित है न कि अपौरुषेय ऋत्<सिद्ध का.....
जो कोई भी अज्ञ-जनों द्वारा अपेक्षित दृष्टिकोण में स्थापित किए गए मिथ्या ईश्वर की अर्थात् अध्यारोप की उपासना करता है वह अपौरुषेय ऋत्<सिद्ध सम्यग् ईश्वर का अपमान करता है वह अविद्या की ही उपासना है, असत्य की ही उपासना है,
जो कोई भी द्वैत-अद्वैत आदि अपेक्षित दृष्टिकोण के आत्मा-ब्रह्म में अर्थात् अपेक्षित अध्यारोप में निष्ठा रखता है<वह मिथ्यादृष्टि में निष्ठा रखता है,
यद्यपि परंपरागत् अर्थ में ईश्वर कहना अपेक्षित दृष्टिकोण में सिद्ध होता है,
इसलिए दृष्टिकोण-विशेष से सावधान रहते हुए ज्ञाता-ज्ञेय से अनिमित्त हो, दृष्टा-दृश्य से अनिमित्त हो सीधे ही तथ्यतः यथार्थ स्पष्टता के निमित्त ज्ञानमात्र के<(दर्शनमात्र के) निमित्त रहो अवश्य ही पूर्णतः सम्यग् समाधान स्पष्ट है....
_सहज स्वाभाविक जिज्ञासा में सहज स्वाभाविक प्रश्न 'सत्य क्या है' सहज-स्फुरित है,
'सत्य क्या है' इस सहज-स्फुरित आधारीय प्रश्न के अर्थ में यथा सजग-संवेदनशील हो खोज करना आवश्यक है,
समय बहुत कम है अपेक्षित दृष्टिकोण के प्रश्नों में नही उलझना है,
अपेक्षित दृष्टिकोण के प्रश्नों से सावधान रहना है,
(उदाहरण के लिए जैसे 'कोऽहं' यह प्रश्न भी अपेक्षित दृष्टिकोण का प्रश्न है),
उत्तर पाने की जल्दबाजी मत करना सही-सही प्रश्न की खोज करना,
परंपरागत् उत्तर पाने की अपेक्षा सही-सही प्रश्न के अर्थ में यथा सहज-संवेदनशील रहना आवश्यक है,
बस ठीक-ठीक प्रश्न में आने की देर भर है फिर तो ठीक-ठीक उत्तर के अर्थ में ठीक-ठीक समाधान स्पष्ट है,
दर्शन-शास्त्र से सावधान रहो,
क्योंकि दार्शनिकों के पास हर प्रश्न का पूर्व निर्धारित दार्शनिक उत्तर है,
ईमानदार बनो, आचरण को महत्व दो
अगर तुम्हें यह पता है कि झूठ बोलना पाप है,
झूठ बोलने से दूसरे को तुम गुमराह करते हो,
धोखा देते हो,
यह जानकर भी अगर तुम फिर भी झूठ बोलते हो तो तब तुम ईमानदार नही हो बेईमान हो,
जिसका तुम्हें ज्ञान है उसको पूरा आचरण में उतारो तभी तुम ईमानदार हो,
व्यावहारिक ईमानदारी का मापदंड पूरा हुए बिना कल्याण नही है....

21 NOV 2024(i)

युवाओं में तेजी से फैलता नशा दुःख की बात है
नशे में शुद्धि,पवित्रता नही रहती,
नशे से होश,बल,
स्फूर्ति,ताजगी,स्वास्थ्य गिरता है|

21 NOV 2024(ii)

सभी स्थापित धर्मों के मध्य भले ही सैद्धांतिक मतभेद हो पर सत्य,अहिंसा, अस्तेय,ब्रह्मचर्य आदि सदाचरण के संबंध में कोई मतभेद नही|

21 NOV 2024(iii)

ब्रह्मचर्यपूर्वक अक्रिय ज्ञानमात्र के निमित्त सहज-स्वाभाविक ध्यान ही दृष्टि के लिए, मन के लिए संयमपूर्वक स्थिरता हेतु भोजन है|

21 NOV 2024(iv)

ब्रह्मचर्यपूर्वक रहो,
२ रोटी,१ गिलास जल पर्याप्त है,
खाने-पीने से ही नही
ब्रह्मचर्य से पूरा बल,स्फूर्ति,
आरोग्यता,ताजगी रहती है|

21 NOV 2024(v)

श्वास की यथा सहज प्रकृति के अनुसार चलो,
पूर्ण सहजता में जरा सी भी वासना, जरा सा
भी विकार उत्पन्न नही होता|

21 NOV 2024(vi)

ब्रह्मचर्य शुद्धि है,पवित्रता है,बल है,स्फूर्ति है,
स्वास्थ्य है,ताजगी है,
विकृत मानसिकता ही ब्रह्मचर्य को
प्रकृतिविरुद्ध कहती है

21 NOV 2024(vii)

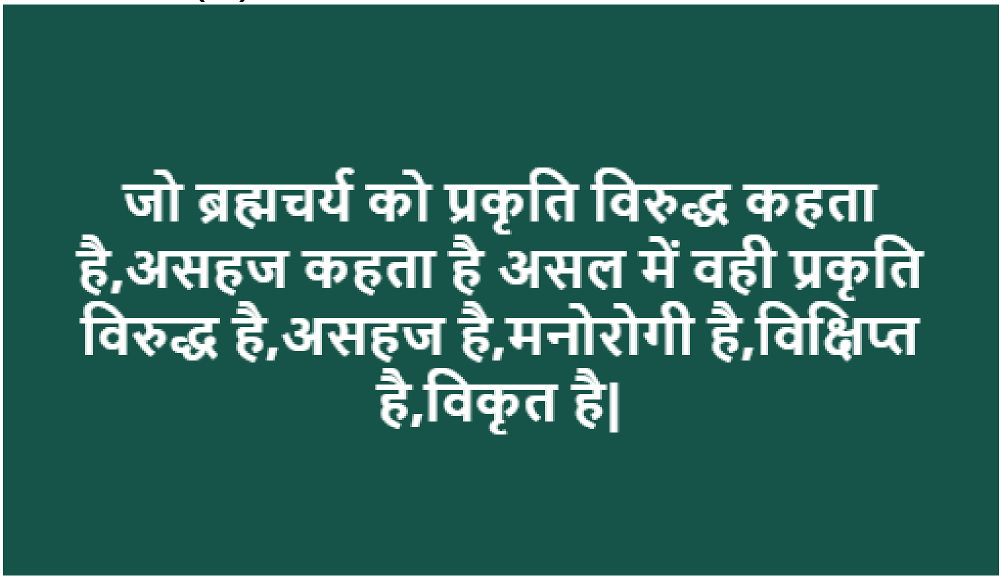

21 NOV 2024(viii)

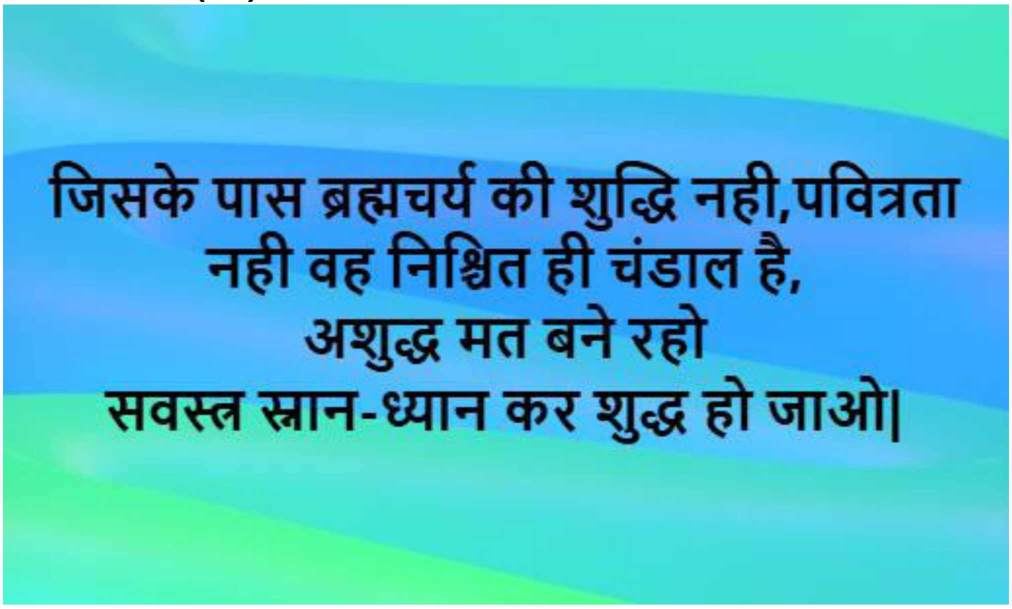

21 NOV 2024(ix)

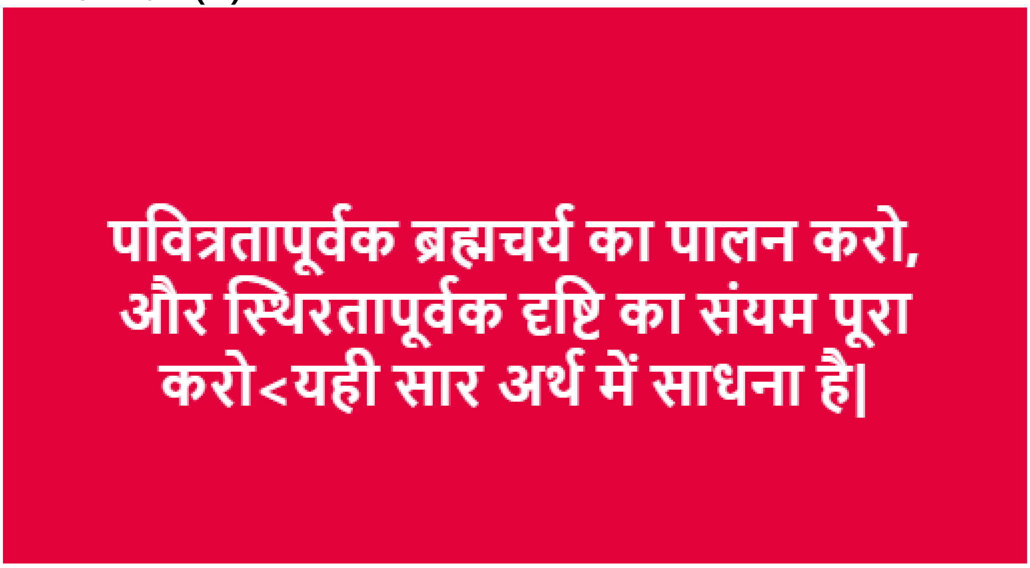

21 NOV 2024(x)

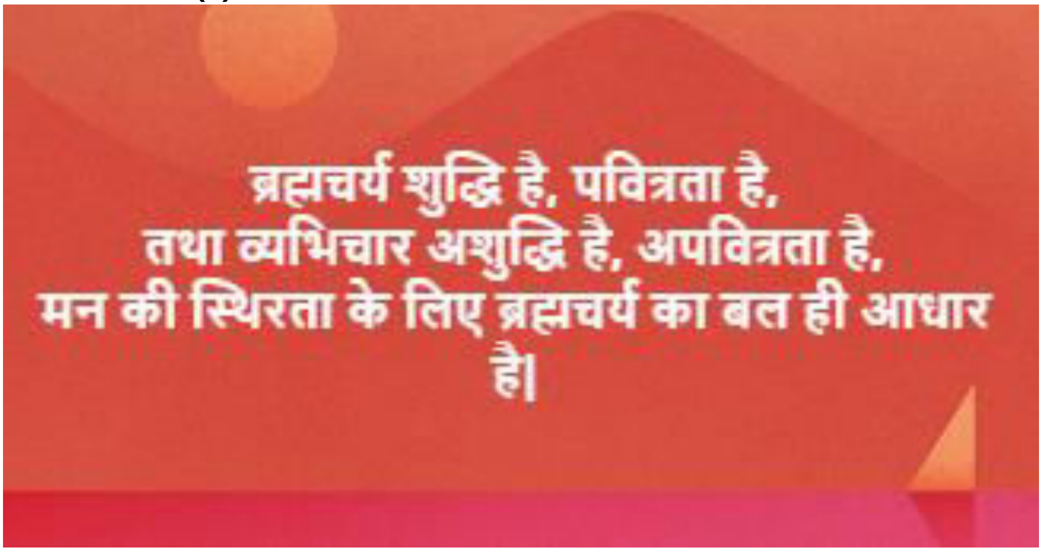

21 NOV 2024(xi)

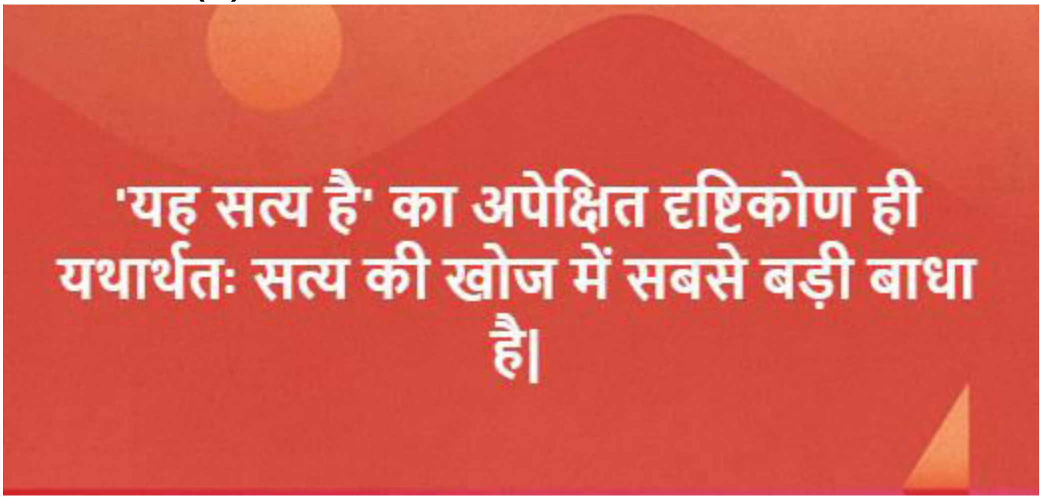

21 NOV 2024(xii)

_नाक के आगे की ठीक आधारीय सीध ही तुम्हारा प्राथमिक आधार है,
नाक के आगे की ठीक केंद्रीय सीध में ही एक ऐसा अतिसूक्ष्म छिद्र wormhole है जहाँ पर दृष्टि की सीध स्थिर होते ही अंतःदृष्टि खुल जाती है,
पर स्थूल दृष्टि से यह कदापि संभव नही सूक्ष्म दृष्टि से ही यह संभव है,
जैसे दरवाजे में पड़े हुए ताले के छेद के अनुपात में ही जब उसकी चाबी होती है तभी उस चाबी से ताला खुलता है,
इसी तरह उस अतिसूक्ष्म छिद्र के अनुपात में ही जब दृष्टि की सूक्ष्मता होती है तभी अंतःदृष्टि खुलती है,
इसलिए पहले दृष्टि का सूक्ष्म तथा एकाग्र होना आवश्यक है,
दृष्टि को सूक्ष्म तथा एकाग्र करने के लिए पहले श्वास पर दृष्टि को केंद्रित करना है,
श्वास के आने-जाने की सीध में उसके ठीक समय पर दृष्टि को स्थिर करना है,
जब तक दृष्टि उस अतिसूक्ष्म छिद्र के अनुपात में सूक्ष्म नही हो जाती तब तक निरंतर यह अभ्यास जारी रखना है,
जब तक दृष्टि की<नजर की धार बिल्कुल पैनी नही हो जाती तब तक नासिकाग्र की केंद्रीय सीध में स्थित उस अतिसूक्ष्म केंद्रीय बिन्दु का भेदन नही हो सकता,
जब तक उस अतिसूक्ष्म केंद्रीय बिन्दु का भेदन नही हो जाता तब तक सही अर्थ में अंतःदृष्टि नही खुल सकती और तब तक बाहरी दृष्टि का ही भ्रम बना रहेगा,
बाहर की ओर यहाँ-वहाँ सापेक्षिक दबाव में बिखरी हुई दृष्टि का भीतर की ओर नासिकाग्र के ठीक केंद्रीय बिन्दु में सिमटाव हो<यह आवश्यक है,
दृष्टि का पूर्णतः सिमटाव होने पर दृष्टा-दृश्य का, ज्ञाता-ज्ञेय का सापेक्षिक बंधन भंग हो जाता है,
दृष्टा-दृश्य के आर-पार की निभ्रांत सत्यता स्पष्ट हो जाती है,

(ध्यान रहे सारी भ्रान्ति ही दृष्टा-दृश्य, ज्ञाता-ज्ञेय को लेकर है अन्यथा दर्शनमात्र में, ज्ञानमात्र में कोई भ्रान्ति है ही नही),
दृष्टि का पूर्णतः सिमटाव होने पर स्थान (आकाश)-समय की भ्रान्ति भंग हो जाती है,
आकाश-समय की भ्रान्ति भंग होने के साथ ही यहाँ-वहाँ, सब जगह के होने की भ्रान्ति भी भंग हो जाती है,
जब सब जगह के होने की भ्रान्ति ही भंग हो जाती है तो सब जगह व्याप्त कल्पित ईश्वर अथवा ब्रह्म की भ्रान्ति भी भंग हो जाती है, होना-नही होना सब-कुछ की भ्रान्ति भंग हो जाती है,
तुम्हारी बुद्धि स्थान-समय के बिना न कोई निर्णय कर सकती है, न कोई निश्चय कर सकती है, न ही कोई कल्पना कर सकती है,
तुम्हारे सारे स्थापित धर्म<संप्रदाय, तुम्हारे सारे दर्शन-शास्त्र-पुराण आदि,
तुम्हारे सारे देवी-देवता आदि सब स्थान-समय के बिना कोई अस्तित्व नही रखते.....
तुमने विश्व के प्रचलित सात आश्चर्यों के बारे में तो सुना होगा पर ऐसा अद्भुत आश्चर्य कि नासिकाग्र की ठीक केंद्रीय सीध की पूर्णता में अंतहीन फैलाव में दृश्यमान-ज्ञेयमान सम्पूर्ण अस्तित्व ही पूर्णतः सिमट जाए<ऐसे अद्भुत आश्चर्य की तुम कभी कल्पना भी नही कर सकते,
ध्यान रहे सिमटने की बात भी साधना के परिप्रेक्ष्य अपेक्षित दृष्टिकोण में ही कही गयी है,
असल में तो बस सापेक्षिक भ्रम ही भंग होता है.....
अगर कोई यहाँ के निर्देशानुसार साधनारत् रहे तो उसे यह अवश्य ही प्रत्यक्ष होगा>
अहो आश्चर्य अभी-अभी तक जो यह अंतहीन फैलाव में आकाश दिखाई दे रहा था दृष्टि का सिमटाव होते ही कहाँ चला गया,
अहो यह सब-कुछ दृष्टि का ही भ्रम था.....
कुछ भी नही होने के अर्थ में अनिमित्त उपस्थितिमात्र की सदा-सनातन आधारीय भूमिका के अनुसार ही ज्ञानमात्र के निमित्त<निमित्त की उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका है.....
ध्यान रहे तुम्हारी उपस्थित भर होने की भूमिका ज्ञानमात्र के निमित्त है न कि अनिमित्त,
इसलिए अनिमित्त उपस्थितिमात्र से तुम्हारी तुलना नही....
तुम बस ज्ञानमात्र के निमित्त उपस्थित भर होने में बस निमित्तमात्र हो इसके अलावा तुम कुछ भी नही, इसलिए अहंकार का कोई अर्थ ही नही रह जाता,
गीता के अपेक्षित दृष्टिकोण के अनुसार अर्जुन के लिए 'निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्' कहा गया,
पर ध्यान रहे अपौरुषेय ऋत्<नियम के अनुसार गीताकार<(कृष्ण) भी 'निमित्तमात्र' ही है इसके अलावा कुछ नही....
ध्यान रहे गीता के अपेक्षित दृष्टिकोण में अर्जुन के लिए युद्ध के परिप्रेक्ष्य अपेक्षित दृष्टिकोण में निमित्तमात्र होने की बात है न कि अपेक्षित दृष्टिकोण से अनिमित्त अक्रिय सहज ज्ञानमात्र के निमित्त सहज उपस्थित भर होने में निमित्तमात्र की बात....
इसलिए गीता में जो 'निमित्तमात्र' का संकेत सापेक्षिक<संबंधित होने से अपूर्ण है उसे यहाँ सम्यग् दिशा देकर पूर्ण किया गया है|
शिव, कृष्ण, बुद्ध की आधारीय पूर्णता में ही जगदीश्वरम् की भूमिका है....

23 NOV 2024(i)
दूसरों पर दोषारोपण लगाने से पहले स्वयं का अवलोकन करो, अपने भीतर झाँको,
और अपनी कमियों को हटाओ,
किसी से भी अनुकूलता-प्रतिकूलता, शत्रुता-मित्रता के लिए तुम ही उत्तरदायी हो,
तुम ही जिम्मेदार हो,
दूसरा नही, दूसरा तो बस निमित्त है,
अगर कोई तुमसे बुरा बर्ताव कर रहा है,
तो तुम्हारी किसी कमी के कारण ही वह तुम्हारे प्रति बुरे बर्ताव के लिए निमित्त बना हुआ है, तुम्हारी जिस कमी के कारण वह तुम्हारे प्रति बुरे बर्ताव के निमित्त है,
अगर तुम्हारी वह कमी हट जाए, तो उसका तुम्हारे प्रति बुरा बर्ताव भी हट जाएगा,
किसी भी परिस्थिति में स्वयं को उत्तरदायी ठहराने पर (जिम्मेदार ठहराने पर) ही साधक का जन्म होता है,
उससे पहले किसी भी अनुकूल अथवा प्रतिकूल परिस्थिति के लिए जब तक कोई अन्य को जिम्मेदार ठहरा रहा है,
जब तक कोई भाग्य आदि को जिम्मेदार ठहरा रहा है तब तक उसका साधक के अर्थ में जन्म नही होता,
साधक किसी भी प्रतिकूलता में भाग्य, प्रारब्ध आदि को, किसी कल्पित ईश्वर, देवता, शैतान आदि को जिम्मेदार ठहराकर अपनी नैतिक जिम्मेदारी से भागता नही है,
हर प्रतिकूलता में वह स्वयं को ही जिम्मेदार ठहराकर अपने भीतर की हर कमी को पूरी जिम्मेदारी से<पूरी ईमानदारी से हटाता है,
ध्यान रहे,
सम्यग् समर्पण अपेक्षित दृष्टिकोण में स्थापित किसी ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा आदि की कल्पित धारणा के प्रति नही है,
अपेक्षित दृष्टिकोण में (लोकदृष्टि में) प्रतिष्ठित राम, कृष्ण, शिव आदि के प्रति नही है,
अपितु सम्यग् यथार्थ स्पष्ट हो<इस निमित्त से पूर्णतः सम्यग् यथार्थ के प्रति है,
जब भी तुम श्वास<शरीर, वेदना>संवेदना, चित्त>चेतना, गुण<धर्म के दर्शनमात्र>ज्ञानमात्र के निमित्त ध्यान-अभ्यास में बैठो,
तो बौद्ध, जैन आदि की तरह सम्यग् समर्पण के बिना 'बस प्रयोग करने भर के लिए' नही बैठना है,
बल्कि सम्यग् समर्पण में रहते हुए बैठना है,
अन्यथा तुम दृष्टा-भाव के, ज्ञाता-भाव के, साक्षी-भाव के, कर्ता-भाव के, भोक्ता-भाव के दबाव में आ जाओगे,
(सम्यग् समर्पण में सम्यग् अभ्यासरत् होने के साथ ही साथ मात्र सही-सही ओर ही तुम सम्यग् उपासनारत् भी हो, सम्यग् आराधनारत् भी हो, सम्यग् प्रार्थनारत् भी हो),
सम्यग् समर्पण में तुम्हारी बस उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका है,
सम्यग् समर्पण में तुम न दृष्टा हो, न ज्ञाता हो, न साक्षी हो, न कर्ता हो, न भोक्ता हो,
सम्यग् समर्पण में तुम बस केवल उपस्थित भर होने में निमित्तमात्र हो,
बस दर्शनमात्र में अर्थात् सीधे ही बस केवल दिखने भर में, बस ज्ञानमात्र में अर्थात् सीधे ही बस सिर्फ पता भर चलने में उपस्थित भर हो,
कौन देख रहा है, क्या देख रहा है, कौन पता कर रहा है, क्या पता कर रहा है<इसमें नही.....

23 NOV 2024(ii)

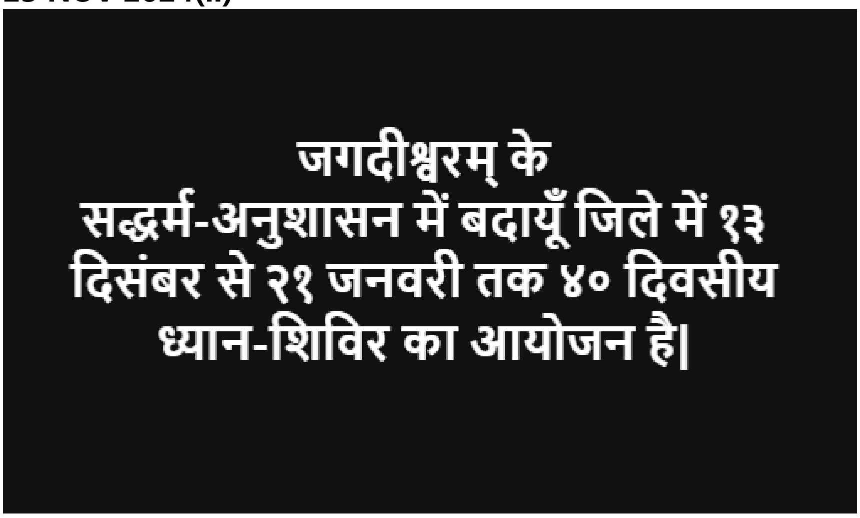

23 NOV 2024(iii)
_तौरात में एक संकेतप्रद प्रतीकात्मक कहानी है,
परमेश्वर की ओर से आदम को अदन की वाटिका से भेद-ज्ञान का फल खाने की मनाही थी,
पर आदम ने शैतान द्वारा प्रेरित हव्वा के बहकावे में आकर भेद-ज्ञान का फल खा लिया,
आदम और हव्वा ने परमेश्वर की अवज्ञा की,
परमेश्वर ने जिस फल को खाने के लिए मना किया था उसी फल को उन्होंने खा लिया,
भेद-ज्ञान का फल खाने से आदम और हव्वा दोनों की भेद-ज्ञान की दृष्टि खुल गयी,
भेद-ज्ञान की दृष्टि खुलते ही सबसे पहले उन्होंने एक-दूसरे को नंगा देखा और उनमें एक-दूसरे के विरुद्ध पहली बार लज्जा तथा वासना का संचार हुआ,
कहते हैं पहली बार यहीं से पाप का आरंभ हुआ और पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसका संचार होता गया...
_सूचना- यहाँ पर उपस्थित भाँति-भाँति के नाना अपेक्षित दृष्टिकोणों से ग्रसित जनों को यह सूचित किया जाता है कि इस कहानी को नकारात्मक परिप्रेक्ष्य में नही लेना है,
इस कहानी को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में लेने की आवश्यकता भी नही है इस कहानी को प्रतीकात्मक शैली में ही बस संकेतार्थ ग्रहण करना है,
इस कहानी के संकेत-अर्थ उद्धरण द्वारा तुम्हें अपेक्षाकृत<भेद-ज्ञान से सावधान किया जा रहा है,
अपेक्षाकृत<भेद-ज्ञान क्या है इसे सम्यग् तात्पर्य से समझना बहुत ही आवश्यक है, अपेक्षाकृत<भेद-ज्ञान से ही अपेक्षित दृष्टिकोण उत्पन्न हुआ है,
जिस अपेक्षित दृष्टिकोण के उत्पन्न होने से तुम दिग्भ्रमित हो, दुःखद बंधन में हो,
अपौरुषेय ऋत्<नियम के अनुसार किसी भी एक अंत के दूसरे अंत में उसका विरोधी पक्ष अवश्य होता है,
बुराई भी तभी है जब उसकी अपेक्षा कहीं अच्छाई का अर्थ है,
अगर बुराई ही न हो तो अच्छाई का भी अर्थ नही है,
इसलिए जब तक भेद-ज्ञान बना हुआ है तब तक पूर्ण निर्दोषता, पूर्ण निष्पापता, पूर्ण शुद्धता, पूर्ण पवित्रता संभव नही है,
इस संसार का सारा व्यवहार ही भेद-ज्ञान के सापेक्षिक है,
भेद-ज्ञान के सापेक्षिक दबाव पर ही इस संसार का सारा अपेक्षित व्यवहार निर्भर है,
एक अति से दूसरी अति में गिरने का दबाव सापेक्षिक<भेद-ज्ञान के निमित्त ही है,
जब तक अपेक्षाकृत<भेद-ज्ञान का दबाव बना हुआ है तब तक बार-बार गिरना होता है,
और तब तक कदापि दुःखद भवचक्र के बंधन से मुक्ति नही,
उक्त कहानी में परमेश्वर ने अपेक्षाकृत<भेद-ज्ञान से सावधान किया है,
उक्त कहानी में अपेक्षाकृत<भेद-ज्ञान परमेश्वर की तरफ से न होकर शैतान द्वारा प्रेरित है,
परमेश्वर की ओर से कोई भी पाप नही आया,
वरन परमेश्वर की आज्ञा के विरुद्ध ही पाप आया है,
तुम्हारा नकारात्मक दृष्टिकोण ही शैतान है और तुम्हारा असंयमित,अनियंत्रित मन उसका प्रतिनिधि.....

वासना के निमित्त से ही शरीर आया है इसलिए शरीर में वासनात्मक स्पंदन बना रहता है,
शरीर की शुद्धि के लिए तपश्चर्या अनिवार्य है,
सोने को तपाकर ही शुद्ध किया जाता है,
तपश्चर्या से ही शरीर तथा चित्त की शुद्धि होती है,
ज्ञानमात्र के निमित्त सम्यग् समर्पण में रहते हुए जीवन में कम से कम ४० दिन तक लगातार न कुछ खाना है, न कुछ पीना है तभी शरीर की वासनात्मक स्पंदन से शुद्धि हो पाती है,
सबसे पहले वासनात्मक स्पंदन से मुक्त होना अनिवार्य है तभी फिर दुःखद भव-बंधन से मुक्ति के लिए साधना है.....
प्राचीन जम्बू-द्वीप का इतिहास तपश्चर्या आदि सदाचरण से गौरवान्वित है,
प्राचीन-काल के धर्मी राजा वानप्रस्थी हो तपश्चर्या में ही शरीर त्याग करते थे....
ऋषभ के पुत्र भरत के वंशजों तुम्हें भी तपश्चर्या आदि सदाचरण से प्रेरित होना चाहिए....
तप से राजपद प्राप्त होता है अगर राजपद प्राप्त होने पर फिर तप नही किया तो राजा को नर्क में जाना पड़ता है.....
दान-दक्षिणा लेने वाला अगर तप से शुद्ध नही होता है तो अवश्य ही नरकगति को प्राप्त होता है....
जिसने जीवन में अपने शरीर को तपाकर शुद्ध नही किया, चित्त को शुद्ध नही किया समझो उसका जीवन अशुद्धि में, अपवित्रता में ही व्यर्थ गया.....
पवित्रता से पूर्ण होने पर ही अपौरुषेय ऋत् ज्ञान स्पष्ट होता है उससे पहले नही.....

25 NOV 2024

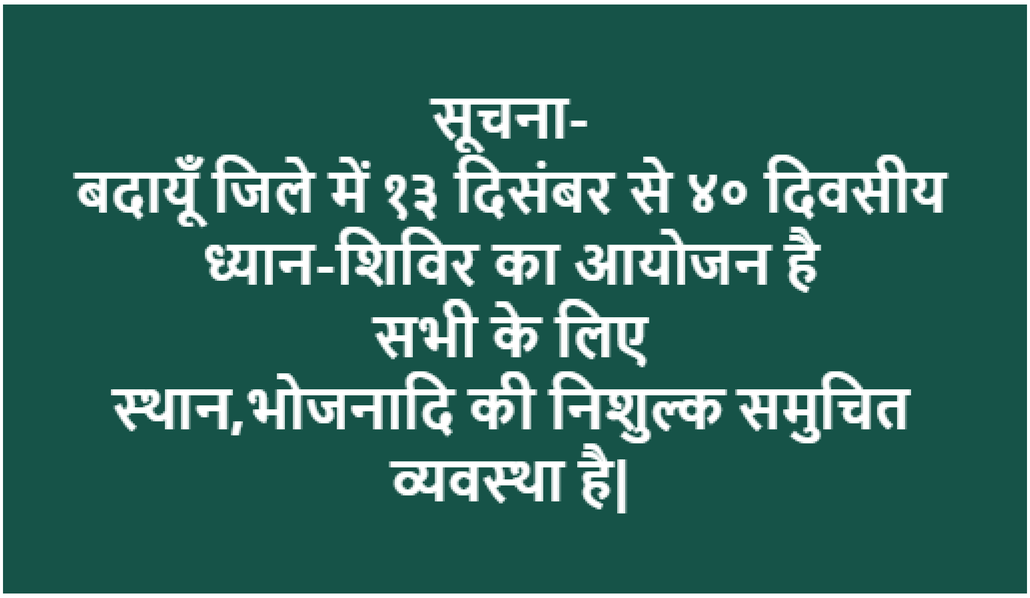

27 NOV 2024

_दो अंतों के माध्यमिक संतुलन पर ही स्थिर स्थिति संभव है,
इसलिए दृष्टि को माध्यमिक संतुलन में साधना आवश्यक है,
श्वास के जाने-आने के माध्यमिक संतुलन पर स्थिति होते ही दृष्टि अपनी सहज स्वाभाविक सीध में सिमट जाती है,
और दृष्टि का सिमटाव होते ही अंतःदृष्टि स्पष्ट हो जाती है अर्थात् खुल जाती है,
इंद्रियां मन के अंतःगुरुत्वाकर्षण बल पर टिकी हैं,
और मन बुद्धि के अंतःगुरुत्वाकर्षण बल पर टिका है,
और बुद्धि महत् के गुरुत्वाकर्षण बल पर टिकी है,
और महत् ज्ञानमात्र के अक्रियतः सहज सनातन आधार पर टिका है,
अक्रियतः सहज सनातन ज्ञानमात्र के निमित्त होते ही सब पर नियंत्रण हो जाता है,
जहाँ अभी तुम बैठे हो वहाँ से तारे सैकड़ों-हजारों-लाखों प्रकाश वर्ष की दूरी पर हैं,
प्रकाश की गति से तुम कदापि ब्रह्मांड का अतिक्रमण नही कर सकते,
हाँ ज्ञानमात्र के निमित्त चेतनमय शरीर से ब्रह्मांड का अवश्य ही अतिक्रमण है,
अपने भौतिक शरीर को तुम अपनी स्पष्ट चेतना में समेटकर ब्रह्मांड का अतिक्रमण कर सकते हो,
प्रकाश की गति ध्वनि की गति से लगभग १० लाख गुना अधिक है,
और प्रकाश की गति से ब्रह्मांड के फैलने की गति अधिक है,

और ब्रह्मांड के फैलने की गति से भी अधिक गति विज्ञानमय शरीर अर्थात् चेतना की है,
इंद्रियों का ज्ञानमात्र के निमित्त चेतना में सिमटाव होने पर>विज्ञानमय शरीर में (चेतनमय शरीर में) स्थिति होने पर ब्रह्मांड पर नियंत्रण हो जाता है.....
_विज्ञान का (चेतना का) आधार ज्ञानमात्र है,
पर ज्ञानमात्र का कोई आधार नही है अर्थात् उपस्थितिमात्र में ज्ञानमात्र सहज ही है<जो तुम्हारी अर्थात् निमित्त की उपस्थिति भर की निमित्तमात्र भूमिका का सनातन आधार है.....
_न्यूटन ने समय को निरपेक्ष कहा उसे आइंस्टीन ने गलत सिद्ध कर दिया,
और आइंस्टीन ने प्रकाश को निरपेक्ष कहा उसकी बात भी गलत सिद्ध है,
प्रकाश की गति भी सापेक्ष है<अवलंबित है निरपेक्ष नही है<अवलंब-रहित नही है,
चेतना की गति अपेक्षाकृत सबसे अधिक है पर निरपेक्ष नही है,
गति-रहित अक्रिय ज्ञानमात्र ही बस निरपेक्ष है जो अपेक्षाकृत गति के सभी आयतनों का निरपेक्षतः पूर्ण स्थिर आधार है,
इसलिए ज्ञानमात्र के निमित्त ही उपस्थित भर होने के लिए पूर्णतः समर्पित रहो,
(चेतना की गति अपेक्षाकृत इतनी अधिक है कि तादात्म्यतावश स्वसम्मोहन में वह परोक्षतः नित्य-अपरिवर्तित<स्थिर लगती है
जिस से आत्मवादियों में नित्य-स्थिर सच्चिदानंद आत्मा अथवा ब्रह्म के अपेक्षित दृष्टिकोण की भ्रान्ति हुई है<जो तथ्यतः यथार्थ नही),
जब तक अंतःदृष्टि स्पष्ट नही हो जाती तब तक तुम तीन आयामों वाले आयतन में ही आबद्ध हो,
कुछ मूर्खों ने अंतःदृष्टि स्पष्ट हुए बिना ही दस आयाम तक की कल्पना कर ली है जो घूम-फिर कर तीन आयामों का ही अपेक्षित दृष्टिकोण भर है,
जब तक अंतःदृष्टि नही खुल जाती तब तक तीन आयाम से आगे के आयाम कदापि स्पष्ट नही हो सकते,
आगे अगर लेप्टाॅन के स्तर से अधिक सूक्ष्मता में खोज करनी हो तो पूर्व सुनिश्चित अपेक्षित दृष्टिकोण में खोज नही हो सकती, भौतिक-वैज्ञानिकों को आगे सम्यग् सद्धर्म के अनुशासन में आना ही पड़ेगा अन्यथा वे विक्षिप्त हो जाएंगे, पागल हो जाएंगे,
क्योंकि लेप्टाॅन से सूक्ष्मता में ७•९×१०^-४२ जूल-सेकेंड पर वहाँ पदार्थ के (मैटर के) प्रतिक्रियात्मक दबाव के स्थान पर डार्क मैटर का स्पष्टतः खुला हुआ एक नया ही आयाम है<जो बहुत ही संवेदनशील, रहस्यमय तथा जोखिम भरा आयाम है,
जहाँ पूर्व सुनिश्चित अपेक्षित दृष्टिकोण से सामना करने से मानसिक-संतुलन भंग हो सकता है,
भौतिक वैज्ञानिकों तक यह बात पहुंचनी जरूरी है
ताकि वे सावधान हो सकें....
उस नये आयाम का जो रहस्य है भौतिक-वैज्ञानिक उसकी अपने पूर्व सुनिश्चित पदार्थ अपेक्षित दृष्टिकोण से कभी कल्पना भी नही कर सकते....
क्रमशः

29 NOV 2024(i)

ध्यान में न ध्याता रह जाए न ध्येय, न ज्ञाता रह जाए न ज्ञेय, ध्यान में बस ज्ञानमात्र ही रह जाए
तभी ध्यान की सार्थकता है|

29 NOV 2024(ii)

तथ्य की तथ्यता निभ्रान्त यथार्थतः स्पष्ट है,
तथ्य की तरफ से कोई दिग्भ्रम नही
तुम अपने ही द्वारा आरोपित दृष्टि में दिग्भ्रमित हो|

29 NOV 2024(iii)

सत्य को 'सत्य' ही रहने दो
सत्य को 'मत' बनने से सावधान रहो,
मत स्थापित होने पर,
पक्ष स्थापित होने पर फिर सत्य स्पष्ट नही हो सकता|

29 NOV 2024(iv)

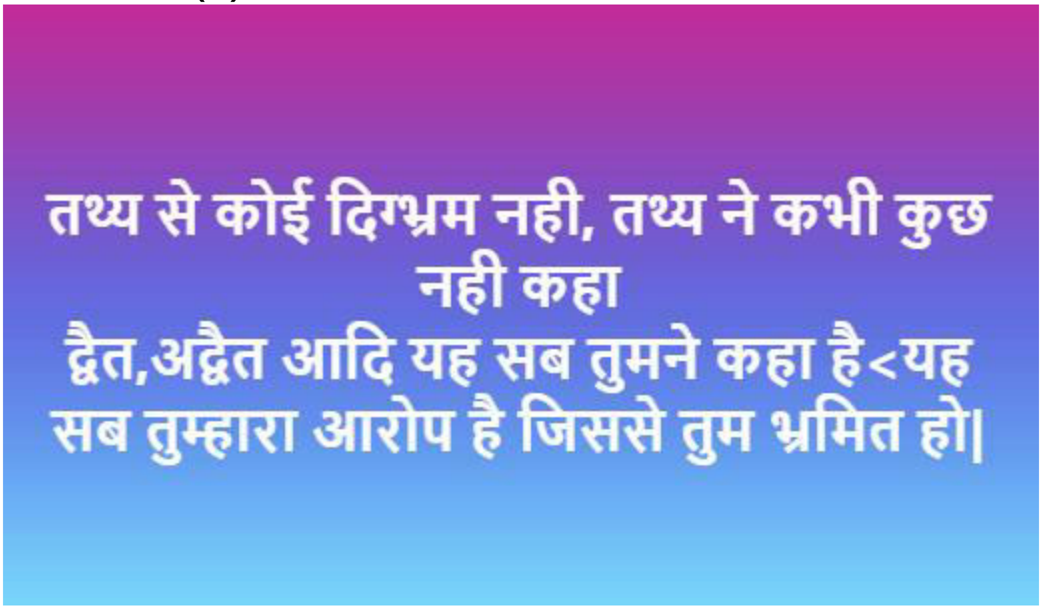

29 NOV 2024(v)

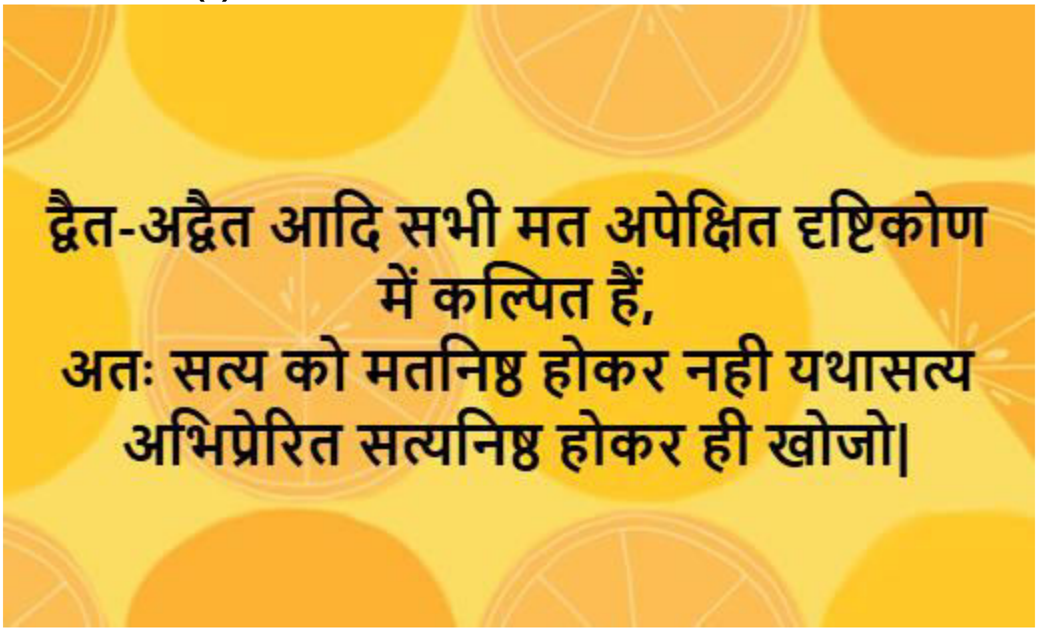

29 NOV 2024(vi)

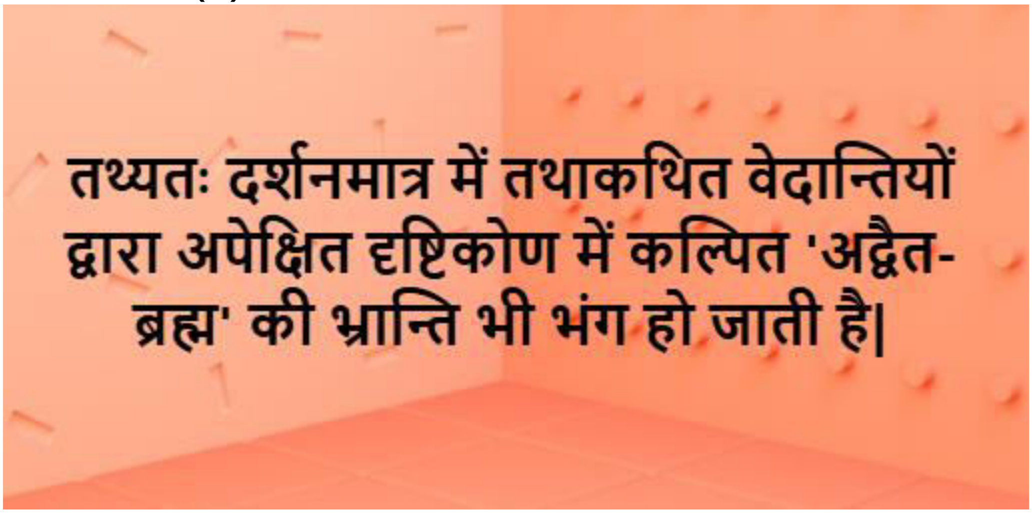

29 NOV 2024(vii)

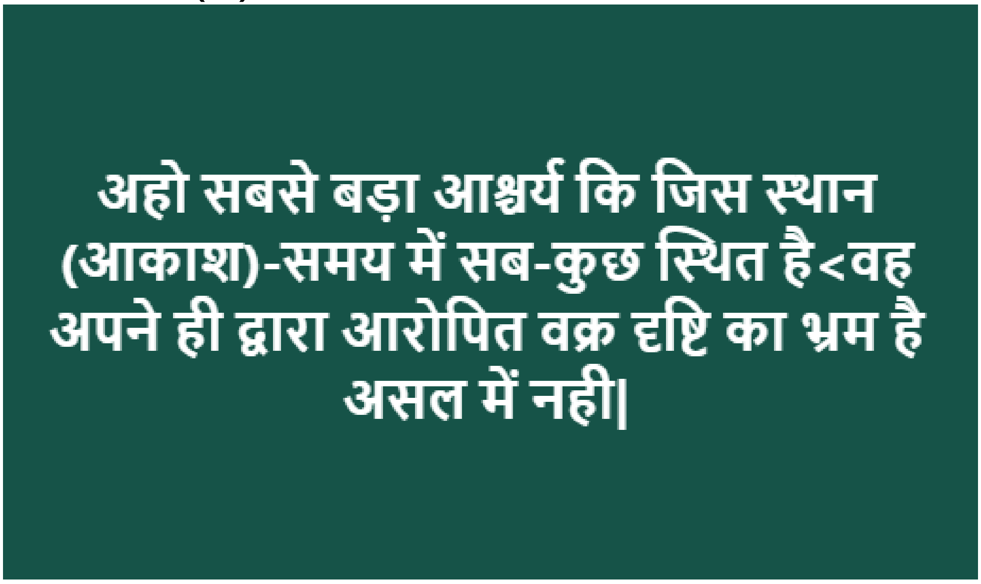

29 NOV 2024(viii)

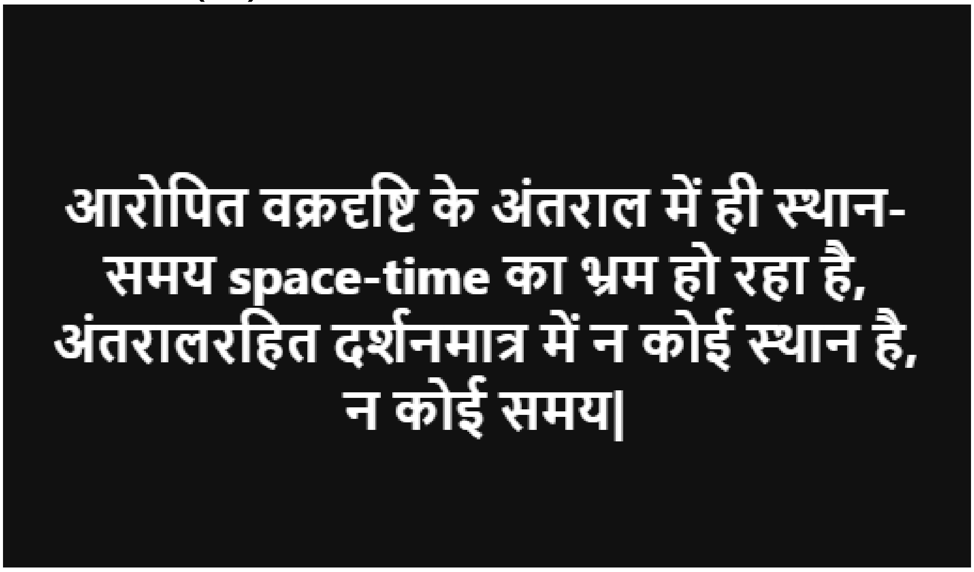

29 NOV 2024(ix)

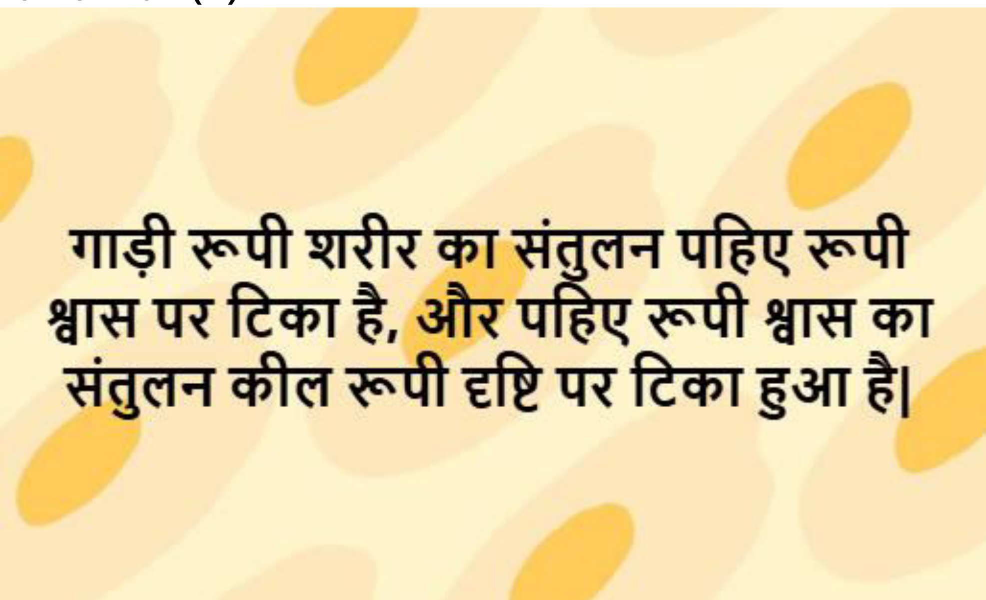

29 NOV 2024(x)
सत्य को पारंपरिक दृष्टिकोण में मत खोजो,
पारंपरिक दृष्टिकोण से तथ्यतः सत्य की खोज नही हो सकती,
सत्य का पारंपरिक दृष्टिकोण से कोई मेल
नही,
पारंपरिक दृष्टिकोण सदा ही अतीत को ढोने में है, पारंपरिक दृष्टिकोण का पूर्णतः अतिक्रमण होने पर ही यथार्थतः सत्य स्पष्ट हो सकता है उससे पहले नही,
पर सामान्यतः पारंपरिक दृष्टिकोण का पूर्णतः अतिक्रमण होना असंभव है,
तुम्हारा चित्त पारंपरिक दृष्टिकोण में संस्कारित है,
तुम्हारी बुद्धि पूर्व सुनिश्चित अपेक्षाकृत<पारंपरिक दृष्टिकोण के सांचे में ढली हुई है,
सामान्यतः तुम्हारा तुम्हारे अपने मस्तिष्क पर नियंत्रण नही है,
तुम जो कुछ भी सोचते हो मस्तिष्क के अधीन होकर ही सोचते हो,
तुम्हारे निर्णय, तुम्हारे निश्चय, तुम्हारे संकल्प-विकल्प, तुम्हारे विचार सब मस्तिष्क के अधीनस्थ होकर ही हैं,
तुम्हारा मस्तिष्क महत् अर्थात् ब्रह्मांडीय मस्तिष्क का प्रतिनिधि है,
मस्तिष्क पर पूर्णतः नियंत्रण हो यह बहुत ही आवश्यक है,
इससे भी आगे फिर अपेक्षाकृत दृष्टिकोण भंग हो यह आवश्यक है,
इसके लिए सम्यग् अभ्यास का नैमित्तिक मापदंड पूरा करना आवश्यक है,
उत्तरोत्तर निकट से निकट अपेक्षाकृत वर्तमान में उपस्थित हो अंततः सबसे निकट के वर्तमान में उपस्थित होने का नैमित्तिक मापदंड पूरा होने पर ही वर्तमान की पूर्णता है अन्यथा अपेक्षाकृत वर्तमान का भ्रम तो बना ही हुआ है....
तुम्हें कम से कम समय पर संभलकर उपस्थित होने का नैमित्तिक मापदंड पूरा करना आवश्यक है,
सबसे पहले कम से कम एक घंटे तक लगातार होशपूर्वक श्वास के आने-जाने के ठीक समय पर उपस्थित होते रहना है,
फिर उत्तरोत्तर कम से कम समय पर संभलते हुए सेकेंड के खरबवें भाग से भी कम समय पर संभलकर उपस्थित होने का नैमित्तिक मापदंड पूरा करना आवश्यक है,
अंततः सबसे कम समय पर उपस्थित होने का नैमित्तिक मापदंड पूरा होने पर ही पूर्णतः स्थान-समय रहित ज्ञानमात्र की पूर्णता है अन्यथा फिर अपेक्षित दृष्टिकोण ही है.....
_जितना ही कम से कम समय अंतराल पर संभलना हो पाता है>संभलकर उपस्थित होना हो पाता है उतना ही बुद्धि के, मस्तिष्क के कम से कम अंतराल पर नियंत्रण हो जाता है,
उदाहरण के लिए जैसे मस्तिष्क के एक मिलीमीटर की दूरी पर नियंत्रण होते ही ब्रह्मांड के ३० करोड़ प्रकाश वर्ष की दूरी पर नियंत्रण हो जाता है,
इस तरह मस्तिष्क की सबसे कम दूरी पर नियंत्रण होते ही ब्रह्मांड की सबसे अधिक दूरी पर नियंत्रण हो जाता है,
और जिसका अपने मस्तिष्क पर नियंत्रण हो जाता है उसका ब्रह्मांड पर, ब्रह्मांडीय गति पर नियंत्रण हो जाता है,
अगर ब्रह्मांड की उपमा मस्तिष्क से करते हो तो गैलेक्सी की उपमा तंत्रिका कोशिका से (न्यूरॉन से) है,
सामान्यतः गुरुत्व बल पर ही गति निर्भर है और गति पर ही समय की निर्भरता है,
गुरुत्व बल का आधार ब्रह्मांडीय चेतना है और चेतना का आधार सहज ज्ञानमात्र है,
ज्ञानमात्र के निमित्त सहज ही गुरुत्व बल पर नियंत्रण रहता है,
ज्ञानमात्र में ब्रह्मांड का पूर्णतः अतिक्रमण है,
जिसकी अक्रिय-अकृत्रिम् सहज ज्ञानमात्र में स्थिति है वह सम्पूर्ण ब्रह्मांड का अधिपति है,
वह लोकदृष्टि के ब्रह्मा-विष्णु-शिव सहित सबका अधिपति है, सबका शास्ता है,
सब पर उसका प्रभुत्व है, उसका अधिकार है, उसका नियंत्रण है,
(लोकदृष्टि<लोकाचार में प्रचलित ब्रह्मा-विष्णु-शिव आदि सब अपेक्षित दृष्टिकोण का ही भ्रम है,
अद्वैत-वेदांत का आधारीय महावाक्य 'प्रज्ञानं ब्रह्म' भी अपेक्षित दृष्टिकोण ही है),
ज्ञानमात्र सबसे अधिक प्रत्यक्ष-स्पष्ट-पारदर्शी है,
ज्ञानमात्र में 'अहम्-अस्मि' का जरा भी अपेक्षित दृष्टिकोण नही है,
ज्ञानमात्र में ''यह है'' का, "यह 'यह' है" का जरा भी अपेक्षित दृष्टिकोण नही है,
ज्ञानमात्र में न अहम् है, न अस्मि है, न ज्ञाता है, न दृष्टा है, न साक्षी है, न कर्ता-भोक्ता ही,
ज्ञानमात्र में बस निमित्तमात्र उपस्थिति भर की भूमिका भर है,
ज्ञानमात्र में तुम्हारी भूमिका निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होने की है इससे इतर सापेक्षिक दबाव में होने पर ही तुम कर्ता-भाव में आबद्ध हुए हो<व्यक्ति-भाव में आबद्ध हुए हो,

और कर्ता-भाव में होने से कर्म-फल के दुःखद बंधन में आबद्ध हो,
कर्ता-भाव के रहते कदापि दुःखद बंधन से मुक्ति नही,
कर्ता-भाव से अनिमित्त अक्रिय ज्ञानमात्र के निमित्त ही दुःखद बंधन से मुक्ति है,
अपौरुषेय ज्ञानमात्र ही सम्पूर्ण सापेक्षिक व्यवहार का अपेक्षितः सदा-सनातन-नित्य-स्थिर आधार है,
ज्ञानमात्र में अंतराल नही होने से परिवर्तन नही है, परिणाम नही है,
ज्ञानमात्र कहने का तात्पर्य बुद्धिमत्ता से नही है, किसी संबंधित जानकारी से नही है,
किसी बौद्धिक-स्मृतिगत् संग्रह से नही है,
दर्शन, शास्त्र, इतिहास, भूगोल, विज्ञान, गणित आदि से नही है,
ज्ञानमात्र कहने का तात्पर्य बस केवल बस ज्ञात भर होने से है,
ज्ञानमात्र कहने का मतलब बस सिर्फ बस मालूम भर होने से है मालूमात से नही है,
स्थूल से सूक्ष्मता की ओर के सूक्ष्मतर होते समानांतर वर्तमान का पूर्णतः अतिक्रमण होने पर ही सम्यग् अर्थ में यथार्थ स्पष्ट होता है.....

****

01 DEC 2024(i)

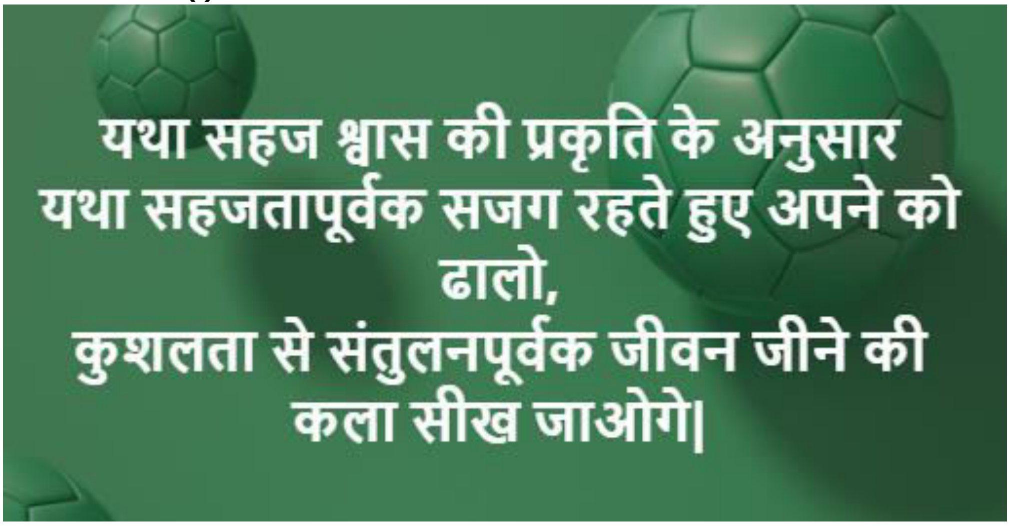

01 DEC 2024(ii)

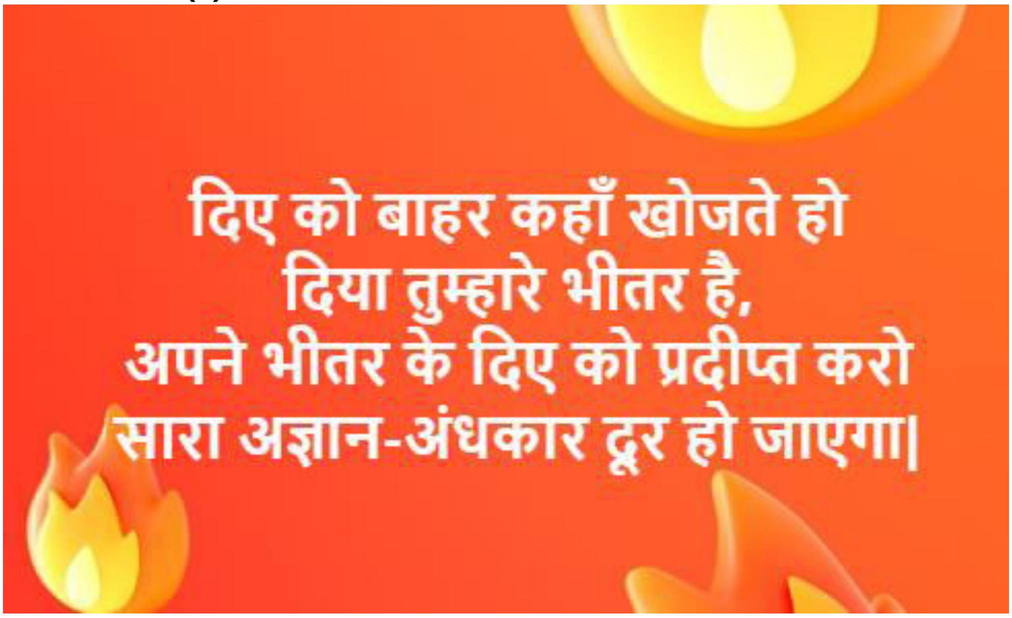

01 DEC 2024(iii)

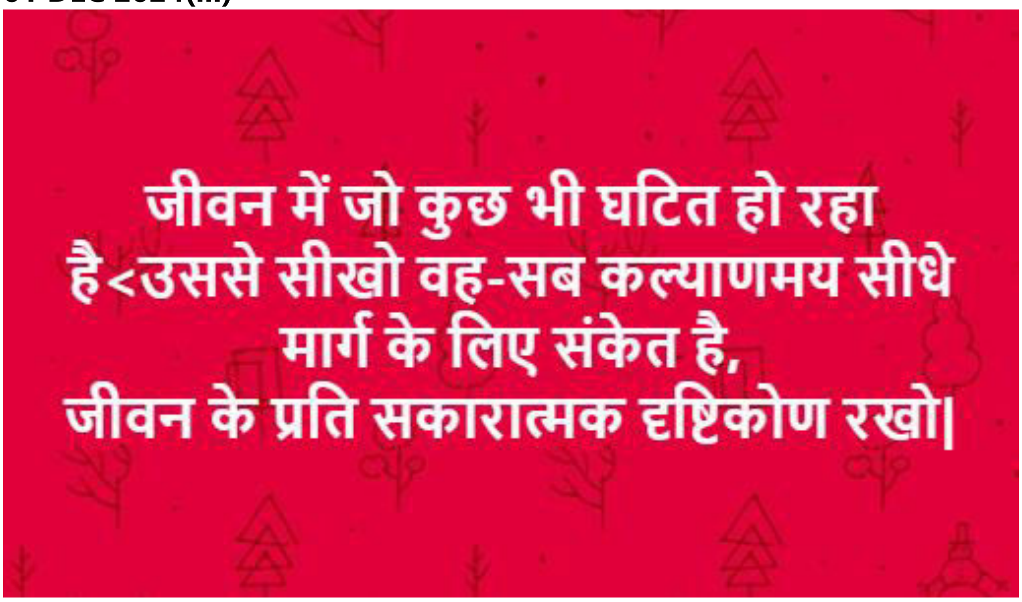

01 DEC 2024(iv)

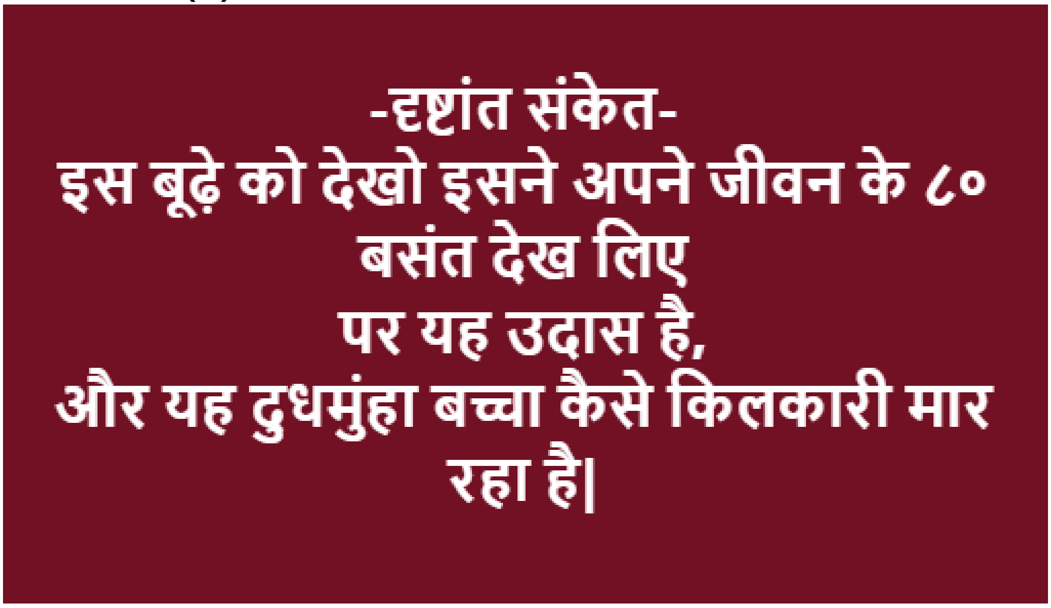

01 DEC 2024(v)

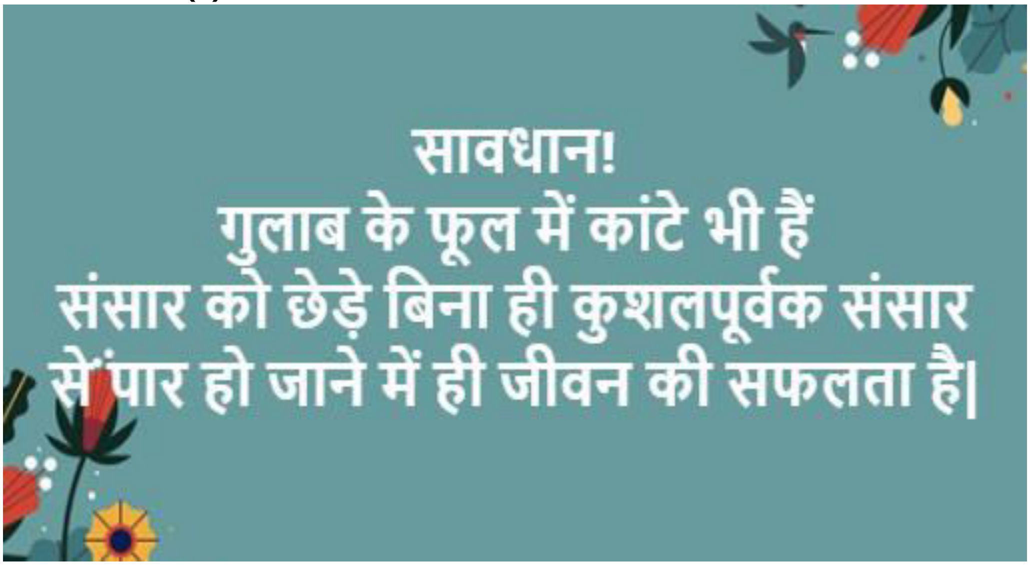

01 DEC 2024(vi)

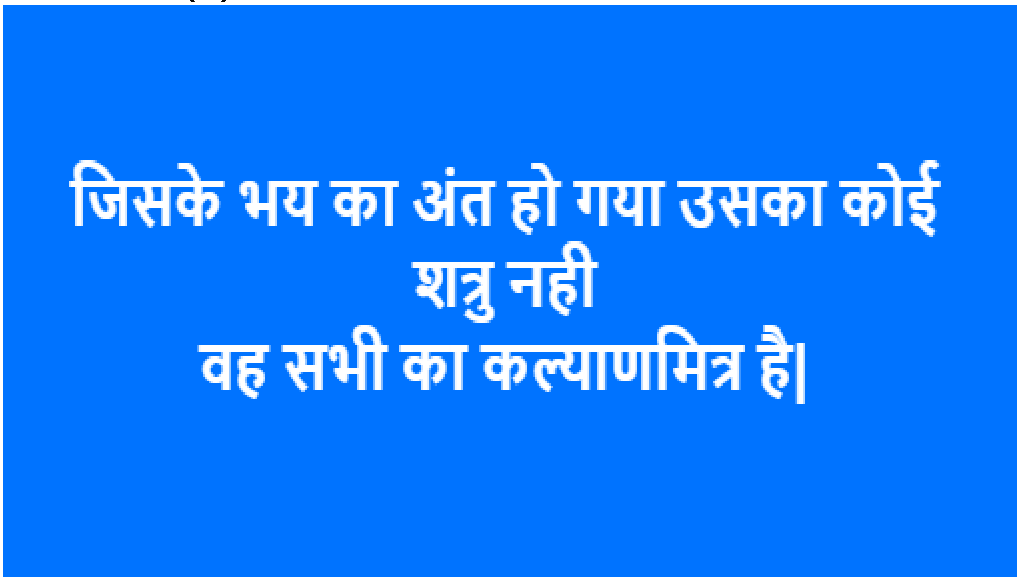

01 DEC 202(vii)

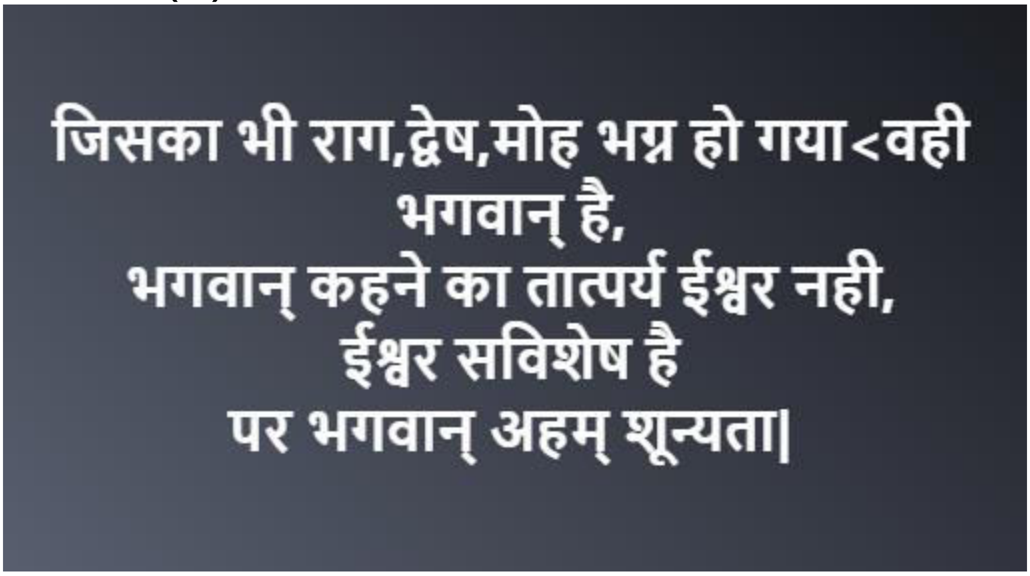

01 DEC 2024(viii)

जब भी ध्यान में बैठो यथा सहजतापूर्वक पूरे होश में सजग रहते हुए बैठो,
तुम्हारा पूरा का पूरा ध्यान एक ही सीध में एक ही जगह पर रहे,
तुम्हारा ध्यान एक ही समय में दो जगह पर न हो,
ध्यान बँटने से होश भी बँट जाता है, ऊर्जा भी बँट जाती है,
अखंड ध्यान में अखंड होश रहता है, अखंड जागृति रहती है, अखंड ऊर्जा रहती है,
चाहे राग-द्वेष-मोह आदि आंतरिक शत्रु हों, चाहे बाहरी शत्रु हों<उनका सामना पूरे अखंड होश से, पूरी अखंड जागृति से, पूरी अखंड ऊर्जा से करना पड़ता है तभी सामने वाले पर विजय प्राप्त होती है,
युद्ध-भूमि में पहुँचने पर एक वीर योद्धा शत्रु के समक्ष कभी भी समर्पण नही करता,
युद्ध-भूमि में शांत चित्त से पूरे यथा होश में सजग रहते हुए भली-भाँति संतुलनपूर्वक<कुशलतापूर्वक, धर्मपूर्वक<न्यायपूर्वक शत्रु का सामना करता है,
वह या तो विजयश्री को प्राप्त करता है,
या वीरगति को प्राप्त होता है उसके लिए तीसरा विकल्प नही रहता,
युद्ध-भूमि में शत्रु के समक्ष समर्पण करने वाले अथवा युद्ध-भूमि से पीठ करके भागने वाले कायर,डरपोक वीरता के भाव को प्राप्त नही कर सकते,
जिस राष्ट्र में तुमने जन्म लिया है, जिस राष्ट्र का तुमने अन्न खाया है उसकी रक्षा करना तुम्हारा नैतिक कर्तव्य है,
जिसने इस जन्म में अथवा पूर्व के किसी जन्म में वीरता की भावनीय भावना का निमित्त पूरा नही किया वह कदापि अपने आंतरिक शत्रु राग-द्वेष-मोह आदि का सामना नही कर सकता,
पहली बात तो आंतरिक शत्रुओं का सामना करने के नियम जानने आवश्यक हैं,
तुम्हें तुम्हारा धर्म, तुम्हारी भूमिका क्या है<यह स्पष्ट होना बहुत ही आवश्यक है,
तुम्हारा धर्म, तुम्हारी भूमिका ज्ञानमात्र के निमित्त<निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होने की है,
ज्ञानमात्र के निमित्त बस उपस्थित भर होने से सहज ही राग-द्वेष-मोह आदि आंतरिक शत्रुओं का नाश हो जाता है,
तुम्हें ज्ञानमात्र के निमित्त उपस्थित भर होने की अपनी भूमिका में पूर्णतः स्थिर होना आवश्यक है,
पूर्णतः स्थिरता का निमित्त पूरा होते ही दुःखद बंधन में डालने वाली राग-द्वेष-मोह आदि नकारात्मकता का पूर्णतः निषेध हो जाता है,
जो राग,द्वेष,ईर्ष्या,काम,क्रोध,लोभ,
मोह,ममता,आसक्ति,स्वार्थ,छल,अहंकार,मद,
मत्सर आदि से पूरी तरह से रिक्त है<वही बस सही में भगवान् कहलाने का अधिकारी है,
लोकाचार में कोई किसी को भी भगवान मान ले तो उसके भगवान मानने से वह कोई भगवान् नही हो जाता.....
तुम्हें न ही झूठा भगवान बनना है, और न ही झूठे भगवानों को मानना है.....
झूठा दावा करके दूसरों को कभी भी धोखा मत देना,
हर झूठ का पर्दाफाश होता है,
हर झूठ की कभी न कभी अवश्य ही पोल खुलती है,

अपौरुषेय ऋत् न्याय से कोई नही बचा है,
इसलिए झूठा दावा मत करना,
अपनी यथास्थिति के अनुसार ही अपना परिचय देना,
कदापि मिथ्या घोषणा नही करना अन्यथा जन्म-जन्मांतर तक नाना दुःखद योनियों में भटकना पड़ेगा....

01 DEC 2024(ix)

जिस स्थान-समय space-time में सब-कुछ स्थित है उस स्थान-समय का ही सिमटाव हो जाना<यह सबसे बड़ा आश्चर्य है.....
चूँकि वक्रदृष्टि में ही स्थान (आकाश)-समय की भ्रान्ति हो रही है,
वक्रदृष्टि का सिमटाव होते ही स्थान-समय का भी सिमटाव हो जाता है,
जब नासिकाग्र की केंद्रीय सीध में दृष्टि का सिमटाव पूरा होता है तभी ठीक उस सीध में स्थान-समय का सिमटाव भी पूरा हो जाता है,
असल में सिमटाव होना यह साधनाकाल में साधक का अनुभव है,
और अनुभव बुद्धिगत् ही होता है,
असल में सिमटाव का होना भी एक भ्रान्ति है,
असल में आरोपित दृष्टि ही भंग होती है,
चूँकि दृष्टि के आरोप के साथ ही (आरोपित दृष्टि में) स्थान-समय की भ्रान्ति का आरोप हुआ है,
इसलिए असल में स्थान-समय का कोई अर्थ है ही नही,
चूँकि स्थान-समय के अंतराल में ही बुद्धि की स्थिति होती है,
इसलिए स्थान-समय के बिना बुद्धि का कोई अस्तित्व नही है,
स्थान-समय के बिना बुद्धि का कोई अर्थ नही रह जाता है,
स्थान-समय के बिना कोई निर्णय, कोई निश्चय,
कोई संकल्प-विकल्प, कोई विचार नही हो सकता,
स्थान-समय के बिना बुद्धि स्थान-समय के नही होने की कल्पना भी नही कर सकती,
इसी से सिद्ध होता है कि बुद्धि स्वयं एक भ्रमजाल है इसलिए बुद्धि से कदापि समाधान नही है,
अपौरुषेय ऋत् ज्ञान स्पष्ट हुए बिना कदापि समाधान नही है,
अपौरुषेय ऋत् ज्ञान स्पष्ट होना जीवन में सबसे बड़े सौभाग्य की बात है,
अपौरुषेय ऋत् ज्ञान स्पष्ट होने पर ही बुद्धि का भ्रम भंग होता है,
ठीक है जब तक बुद्धि का अर्थ है तब तक बुद्धि के हर कोण से समझने का निमित्त पूरा करना भी आवश्यक है,

क्योंकि जब तक हर कोण से समझने का निमित्त पूरा नही हो जाता तब तक बुद्धि की दृष्टि में बुद्धि अर्थहीन नही होती है,
जब बुद्धि की दृष्टि में बुद्धि अर्थहीन हो जाती है तभी अपौरुषेय ऋत् ज्ञान स्पष्ट होने की पात्रता हो पाती है,
जब तक बुद्धि की दृष्टि में बुद्धि पूरी तरह अर्थहीन नही हो जाती तब तक बुद्धि के हर कोण से भलीभाँति ठीक-ठीक तात्पर्य से समझने का निमित्त पूरा करना आवश्यक है,
स्थिरता-संयम<साधना के दृष्टिकोण से नासिकाग्र की केंद्रीय सीध का बहुत ही अधिक सार्थक महत्व है,
नासिकाग्र की केंद्रीय सीध की तुलना में स्थान-समय में स्थित ब्रह्मांड की कोई औकात नही, आत्म-अनात्म, ब्रह्म-शून्यता, द्वैत-अद्वैत आदि अपेक्षित दृष्टिकोण की भ्रान्ति का कोई अर्थ नही,
अहंमन्यता के आवेश में आवेष्टित मिथ्या ईश्वर का कोई अर्थ नही,
ध्यान रहे यहाँ अपेक्षित दृष्टिकोण में स्थापित हुए मिथ्या ईश्वर का ही निषेध है,
इसलिए निरीश्वरवाद की अति में मत जाना,
अतः अब जो आगे कहा जा रहा है वह बहुत ही संकेतप्रद है>>अपौरुषेय के संकेत-अर्थ में बस उपस्थितिमात्र का ही अर्थ है,
अपौरुषेयतः उपस्थितिमात्र से ही सब-कुछ जो जिस अर्थ में है उसी अर्थ में संतुलन के निमित्त है,
इससे अधिक अपरिमित-अपार महिमा और क्या हो सकती है
कि सृष्टि के लिए संकल्प करने की आवश्यकता ही नही है,
बस उपस्थित भर होने से ही जो जिस अर्थ में है उसी अर्थ में संतुलन के निमित्त है,
ध्यान रहे सृष्टि तथा सृष्टिकर्ता की बात सापेक्षिक दृष्टिकोण में है न कि दर्शनमात्र में,
तथ्यतः दर्शनमात्र में सृष्टि तथा सृष्टिकर्ता का अपेक्षित अर्थ नही है,
उपस्थितिमात्र बस उपस्थितिमात्र के अर्थ में ही है जरा भी अन्य अर्थ में नही,
इसलिए उपस्थितिमात्र में न कोई आरोप है,
न आरोपकर्ता......
क्रमशः
मंगलमस्तु....

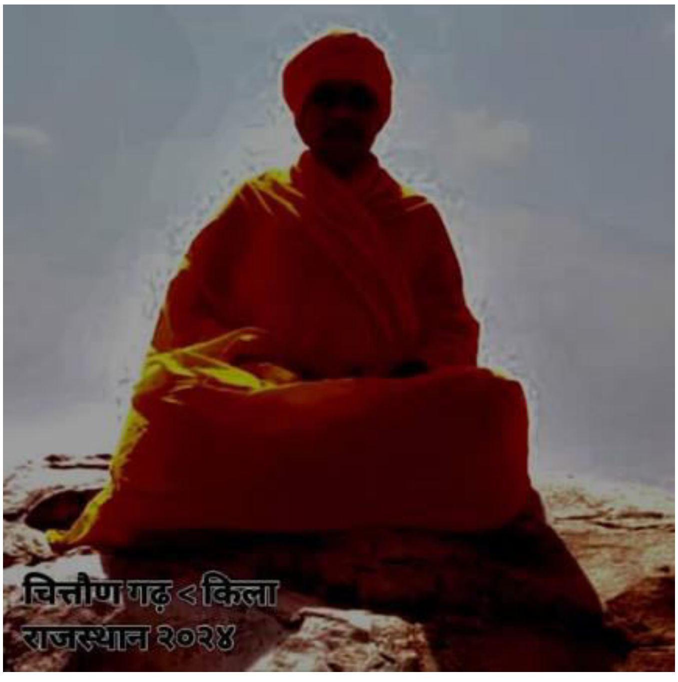

03 DEC 2024(i)
आर्य मित्र के इस पृष्ठ पर थोड़े ही दिन और उपदेश होगा फिर बदायूँ जाना है,
वैसे भी आर्य मित्र के पृष्ठ पर समय न मिल पाने से बहुत कम लिखित उपदेश हो पाता है<वह भी सामान्य उपदेश ही हो पाता है,
गोपनीयता के कारण फेसबुक आदि माध्यम से महत्वपूर्ण उपदेश नही हो पाता,
सम्यग् सत्संग सभा में ही विस्तारपूर्वक पूरी तरह से खुलकर मौखिक उपदेश होता है,

(सम्यग् सत्संग सभा में सभी को आने की अनुमति नही है जिज्ञासुओं को पहले यहाँ अनुमति लेनी पड़ती है),
१३ दिसंबर से बदायूँ में ४० दिवसीय ध्यान-शिविर का आयोजन है, शिविर बदायूँ के मकरंदपुर क्षेत्र में ध्यान केंद्र के निकट ही लगेगा,
इस बार का ध्यान-शिविर बहुत ही महत्वपूर्ण है,
विशेषकर १ जनवरी से लेकर १५ जनवरी तक सौर-ऊर्जा का योग है जो कई हजार वर्ष बाद आ रहा है,
उक्त शुभ मुहूर्त में कई साधकों के लिए दृष्टि-लाभ की संभावना है,
अगर यह शिविर सफल रहा तो कई साधकों को दृष्टि-लाभ हो सकता है,
और इस शिविर के माध्यम से पूरे विश्व के लिए एक नया मार्ग खुलेगा,
अब आगे का भविष्य मोदी,योगी,ट्रंप,पुतिन,जिनपिंग आदि जनप्रतिनिधियों पर निर्भर नही है सिद्ध<साधकों पर निर्भर है,
इस शिविर में हर तरह का नशा वर्जित है,
सम्यग् भगवान् के सम्यग् सद्धर्म शासन-अनुशासन में ही आगे विश्व का भविष्य निर्धारित है,
सम्यग् सद्धर्म अनुशासन में ही ध्यान-शिविर का आयोजन है,
बदायूँ जिले के लोग श्रद्धालु तथा ईमानदार हैं,
जसपाल की कर्तव्यनिष्ठा तथा ईमानदारी पूरे बरेली-मंडल में विख्यात है,
धारा सिंह, जसपाल सिंह, देवेन्द्र पाल, वीरेन्द्रपाल सिंह, सुभाष शर्मा, आशीष गुप्ता, निखिल गोयल,
मतदान शर्मा, अनिल पांडे, सौरभ शर्मा, परषोत्तम कुमार यादव, भोला यादव, पवनेश कुमार यादव, राकेश कुमार यादव, शेर सिंह, राय सिंह,
अनिल सिंह, आकाश कु•सिंह, बीरभान सिंह, रंजीत सिंह, रामभगत सिंह, योगेन्द्र कुमार पाल, राधेश्याम पाल, ओम कुमार, कल्याण प्रसाद शर्मा,
शिव प्रसाद, अमर पाल, महेश प्रसाद यादव, महानंद पाल, रामलाल शर्मा, राम प्रसाद पाराशर, चंद्रशेखर पाठक, सूरज पाल यादव, राजेश कुमार सिंह, प्रदीप सिंह, कुलदीप सिंह, संदीप सिंह, मुकेश सिंह, सुगंध सिंह, धीरपाल, मुन्ना, अजयनाथ सिंह, मनहर सिंह, परमिंदर कुमार सिंह, चंद्रभान सिंह, मोहित पाल, अजय सिंह आदि उपासक-साधक शिविर के निमित्त व्यवस्थापक रहेंगे,
सबके नाम यहाँ लिखे नही जा सकते और भी बहुत वहाँ ईमानदार उपासक-साधक हैं जो वहाँ के निमित्त व्यवस्थापक तथा सेवादार रहेंगे..

03 DEC 2024(ii)
_जीवन में जो कुछ भी घटित हो रहा है उसका अंततः यथार्थ सत्य ओर ही संकेत है,
अतः जो कुछ भी घटित हो रहा है (उससे) सम्यग् संकेतार्थ यथार्थ सत्य ओर अभिप्रेरित हो शोधरत् रहो,
ध्यान रहे स्थिरता का आधार संतुलन है और संतुलन का आधार योग है,
दृष्टि का श्वास के ज्ञात होने की ठीक सीध में योग होने पर जो संतुलन बनता है उसमें भली-भाँति स्थिर रहो अवश्य ही उससे सीधे जो सीध है<वह (सीध) स्पष्ट होगी,
इस तरह उत्तरोत्तर सीधे से सीधे सीध स्पष्ट होती जाएगी.....
_पक्षी आसमान में उड़ते हैं, पास के खेत में गाय चरती है,
इसी तरह तुम्हारा उठना, बैठना, चलना-फिरना यह सब संतुलन के बिना संभव नही है,
पर यह संतुलन पूर्णतः माध्यमिक संतुलन नही है,
यह संतुलन बस एक सीमा तक जीवन जीने की औपचारिक पूर्ति भर के लिए ही है,
तब भी ठीक है जीवन जीने की औपचारिक पूर्ति भर के लिए ही सही पर एक सीमा तक संतुलन तो बना हुआ है,
परंतु जिस योग से यह कामचलाऊ संतुलन बन रहा है उस योग का तुम्हें बोध भी तो नही है,
बोध की यह कमी दूर हो जाए तो तब फिर पूर्णतः माध्यमिक संतुलन के लिए मार्ग स्पष्ट हो जाएगा,
ध्यान रहे पूर्णतः माध्यमिक संतुलन से गिरना नही होता,
सापेक्षिक दबाव स्वरूप सापेक्षिक संतुलन से ही गिरना होता है,
इसलिए सापेक्षिक संतुलन तक ही सीमित नही रहना है,
सापेक्षिक संतुलन में संभलकर उत्तरोत्तर माध्यमिक संतुलन के निमित्त रहना है,
जिस समय जिस निमित्त से संतुलन बनता हो उस समय उसी निमित्त से रहना है अपनी तरफ से कुछ भी पूर्व निर्धारित नही करना है,

कितना ढीला रहना है, कितना कसकर रहना है, कितना सजग रहना है, कितना सहज रहना है इत्यादि यह सब संतुलन की माँग पर निर्भर है,
जिस निमित्त से संतुलन बनता हो उसी निमित्त से रहना है,
जिस नैमित्तिक योग से संतुलन बनता हो उस नैमित्तिक योग के प्रति बोधपूर्वक यथा सहज-यथा सजग संवेदनशील रहना आवश्यक है,
तुम्हारा लक्ष्य 'पूर्णतः माध्यमिक संतुलन' का होना चाहिए,
दो अंतों (अतियों) के ठीक मध्य के संतुलन को ही माध्यमिक संतुलन कहते हैं,
पूर्णतः माध्यमिक संतुलन में ही निमित्तमात्र उपस्थिति भर की भूमिका है|
क्रमशः

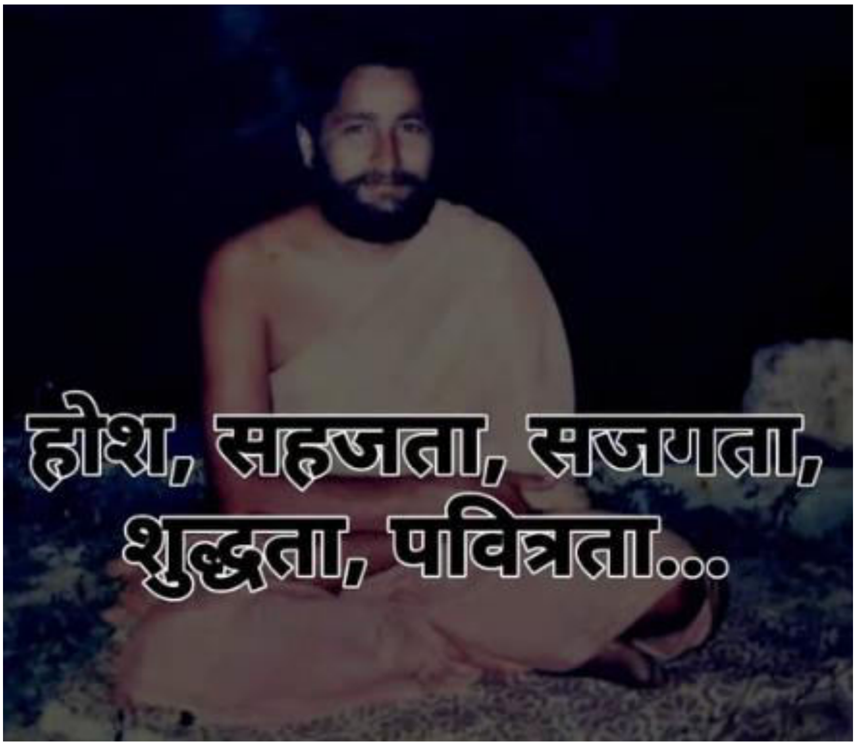

05DEC 2024(i)

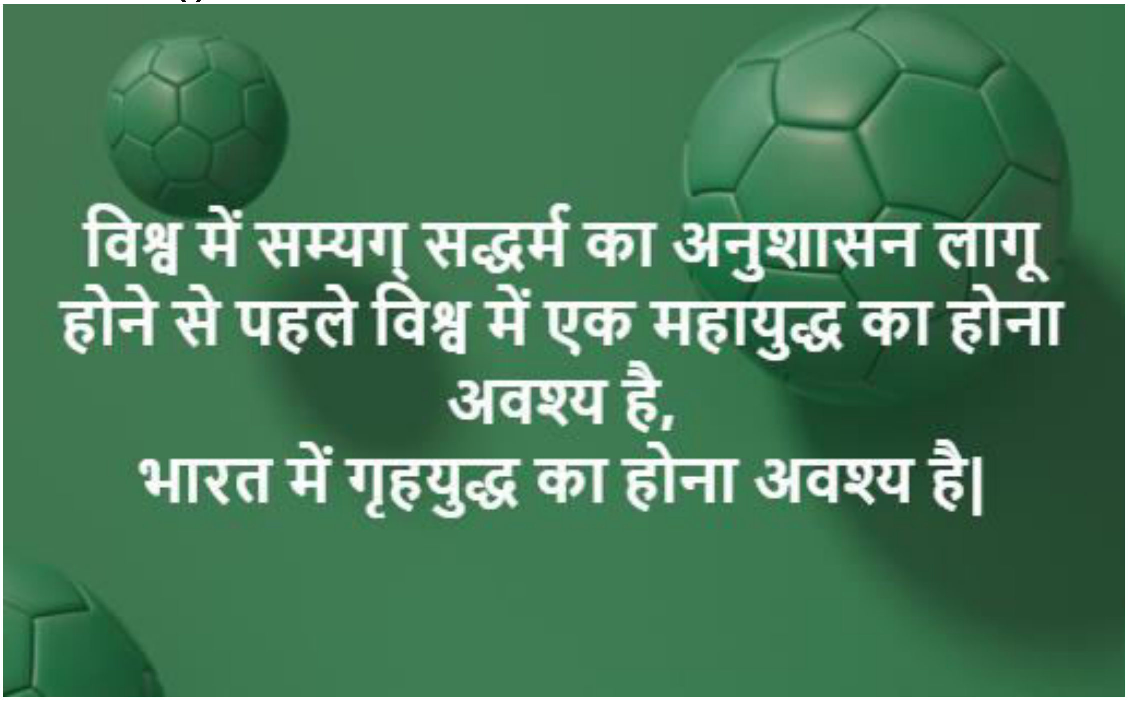

05 DEC 2024(ii)

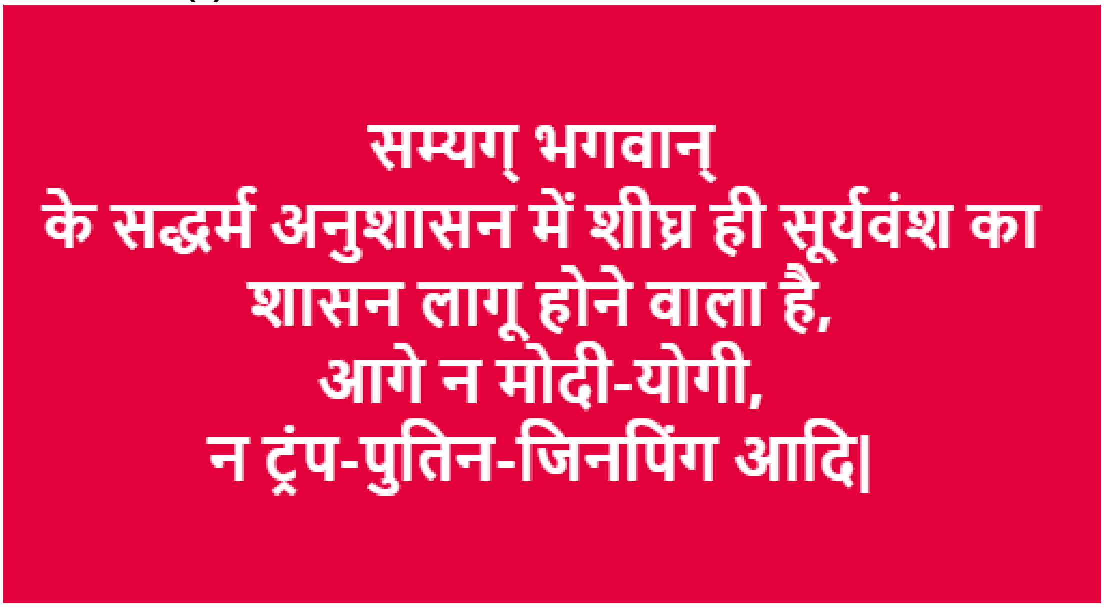

05 DEC 2024(iii)

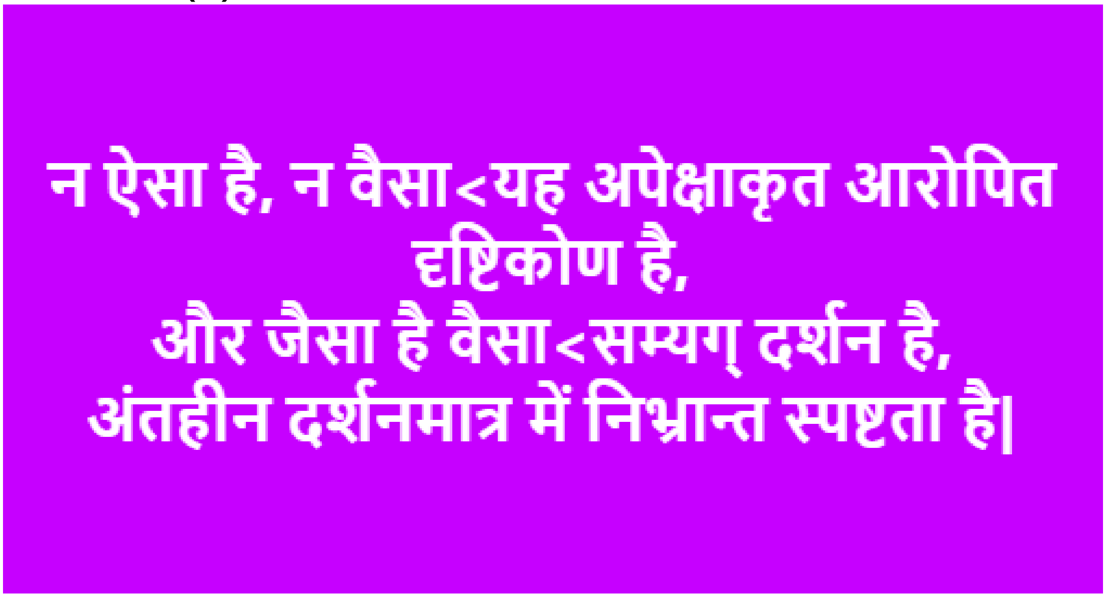

05 DEC 2024(iv)

साधनाकाल में साधक को दृष्टि के सिमटाव का जो अनुभव होता है यद्यपि अपेक्षित दृष्टिकोण भंग होने पर वह भ्रान्ति सिद्ध है,
पर इसका अर्थ यह नही कि साधना व्यर्थ है,
साधना का साधना के दृष्टिकोण से अपना अर्थ है, अपना महत्व है,
यद्यपि साधनाकाल में दृष्टि के सिमटाव का अनुभव अपेक्षित दृष्टिकोण में है,
फिर भी दृष्टि के सिमटाव का साधनात्मक निमित्त पूरा करना अनिवार्यतः बहुत ही आवश्यक है,
क्योंकि नासिकाग्र की ठीक आधारीय केंद्रीय सीध में दृष्टि के सिमटाव का साधनात्मक निमित्त पूर्ण हुए बिना कदापि अपेक्षित दृष्टिकोण की भ्रान्ति भंग नही हो सकती,
लोकाचार में एक लोक कहावत प्रसिद्ध है जिसमें राम ने कहा रघुवंश के पुरुष स्वप्न में भी पराई स्त्री का स्मरण तक नही करते हैं,
इस प्रचलित लोक कहावत में संयम का, नैतिक-मर्यादा का महत्व प्रतिपादित होता है,
संयम के बिना (दृष्टि संयम के बिना) दृष्टि का सिमटाव कदापि संभव नही है,
बाहर यहाँ-वहाँ के सापेक्षिक वर्तुल में बिखरी हुई दृष्टि का जब नासिकाग्र अर्थात् नाक के आगे के ठीक आधारीय केंद्र में सिमटाव पूरा होता है तभी अपेक्षित दृष्टिकोण की भ्रान्ति भंग होती है,

सामान्यतया तुम्हारी दृष्टि, तुम्हारा मन इतना अधिक चंचल है कि तुम पांच मिनट तक भी एक सीध में निश्चिंततापूर्वक स्थिर नही हो पाते,
तुम्हारी दृष्टि, तुम्हारा मन बहुत जल्द चलायमान हो जाता है,
बहुत ही शीघ्र तुम्हारा मन कहाँ से कहाँ चलायमान हो जाता है<इस पर तुम्हारा नियंत्रण ही नही है,
यह इस बात की सूचना है कि तुममें संयम की बहुत ही कमी है, सदाचरण की बहुत ही कमी है,
अगर यह कमी नही हटी तो कदापि सापेक्षिक दबाव में बिखरी हुई दृष्टि का नासिकाग्र बिंदु में सिमटाव नही हो पाएगा, और अपेक्षित दृष्टिकोण का दिग्भ्रम भंग नही होगा,
ध्यान रहे जब तक अपेक्षित दृष्टिकोण का दिग्भ्रम भंग नही हो जाता तब तक तुम धोखे में हो, गुमराही में हो, गलतफहमी में हो, अविद्या-अंधकार में भटक रहे हो, दुःखद बंधन में पड़े हुए हो,
जब तक अपेक्षित दृष्टिकोण का दिग्भ्रम भंग नही हो जाता तब तक तुम किसी भी धर्म को मानो, किसी भी शास्त्र को मानो, किसी भी ईश्वर को मानो सब धोखा है, भ्रान्ति है, मिथ्यादृष्टि है,
शम-दम को, संयम को, तप को, ब्रह्मचर्य को, चरित्र को प्रकृतिविरुद्ध, सहजताविरुद्ध कहने वाले ओशो जैसे मनमुखी, स्वेच्छाचारी दार्शनिकों से सावधान रहो,
ऐसे मनमुखी दार्शनिकों का दर्शन भले ही असंयमी, स्वेच्छाचारी, अधोमुखी मन को लुभाता हो पर यह आंतरिक-पवित्रता के आधारीय बल से विहीन, नैतिक-मर्यादा से विहीन पशुता के तल में गिराने वाला है,
सहन तथा वहन करने की क्षमता को गिराने वाला है,
आंतरिक शुद्धता-पवित्रता को गिराने वाला है.....
_साधना के लिए आधारीय बल नही होगा तो कभी भी साधना का निमित्त पूरा नही हो सकता,
आंतरिक-पवित्रता साधना का आधारीय बल है,
और चित्त की परिशुद्धि होने पर पूरा आंतरिक-बल रहता है,
कब किस कोण से कितना शमन-कितना दमन करना है<यह सब संतुलन की मांग पर निर्भर है,
यथा सहजतापूर्वक संतुलन की मांग के अनुसार ही शम-दम-इंद्रियनिग्रह होना चाहिए न कि मनमाना,
कुछ भी पूर्व निर्धारित कर मनमुखी मत बनो,
अपौरुषेय ऋत् मुखी रहो,
ऋत् अभिप्रेरित हो ऋत् अनुशासन में ऋत् अनुसार चलो तभी मंगल है, तभी कल्याण है,
अगर कोई शम-दम-इंद्रियनिग्रह को प्रकृतिविरुद्ध कहता है तो वह उसके सार्थक अर्थ से, उसकी सार्थक उपयोगिता से चूक रहा है,
संयम-शीलता से तुम्हारी सहन तथा वहन करने की क्षमता बढ़ती है,
असंयमी, स्वेच्छाचारी मन से तुम कदापि काम-क्रोध आदि प्रबल आवेगों का सामना नही कर पाओगे उसी के साथ बह जाओगे,
पहले संयम-शीलता से पर्याप्त सहन तथा वहन करने की क्षमता को बढ़ाओ तभी तुम राग,द्वेष,मोह,काम,क्रोध आदि आवेगों का सामना कर सकते हो,
तुम्हें दृष्टि संयम तथा ब्रह्मचर्य इन दो नैमित्तिक साधनों से अभिप्रेरित रहना चाहिए,
जब भी देखो सीधे स्थिर होकर देखो,
दाएं-बाएं न झांकते हुए सीधे सामने की ओर देखते हुए रहो,
उठते,बैठते,चलते-फिरते हर समय नाक के आगे की केंद्रीय सीध में ही दृष्टि को ढालकर रखो तभी दृष्टि संयम पूरा होगा,
नियत के पक्के रहो, नजर के पक्के रहो,
तुम्हारी नजर फिसलनी नही चाहिए,
४५ अंश के कोण पर भली-भाँति संयमपूर्वक नजर झुकाकर रखो,
स्वेच्छाचारी, नैतिक-मर्यादाहीन, असंयमी व्यक्ति पर कोई विश्वास नही करता,
नैतिक-मर्यादावादी, संयमी-सदाचारी व्यक्ति पर ही हर कोई विश्वास करता है,
संबंधों की पवित्रता बनाए रखो,
जो भी संबंध जिससे जिस नैमित्तिक प्रयोजन से जिस अर्थ में है वह संबंध उससे उसी नैमित्तिक प्रयोजन से उसी अर्थ में रहे अन्य अर्थ में नही<तभी संबंधों की पवित्रता है,
नैतिक-मर्यादा का अतिक्रमण नही करना है,
नैतिक-मर्यादा में बने रहना संयम की साधना है,
प्राचीनकालीन जम्बूद्वीप में पवित्र आदित्य-कुल<सूर्यवंश के पुरुष परस्त्री का स्वप्न में भी स्मरण तक नही करते थे,

और नारियां स्वप्न में भी परपुरुष का स्मरण तक नही करती थीं<यह उत्कृष्ट नैतिक-मर्यादा का, संयम-साधना का ही परिचय है,
अगर ऐसी पवित्र संयम-साधना होगी तो निश्चित ही नासिकाग्र की सीध में दृष्टि संयम पूरा होगा,
दृष्टि के सिमटाव के लिए दृष्टि का संयम होना आवश्यक है,
बिना संयम के दृष्टि की उसके सहज स्वाभाविक सीध में स्थिरतापूर्ण स्थिति संभव नही है.......
क्रमशः

06 DEC 2024(i)

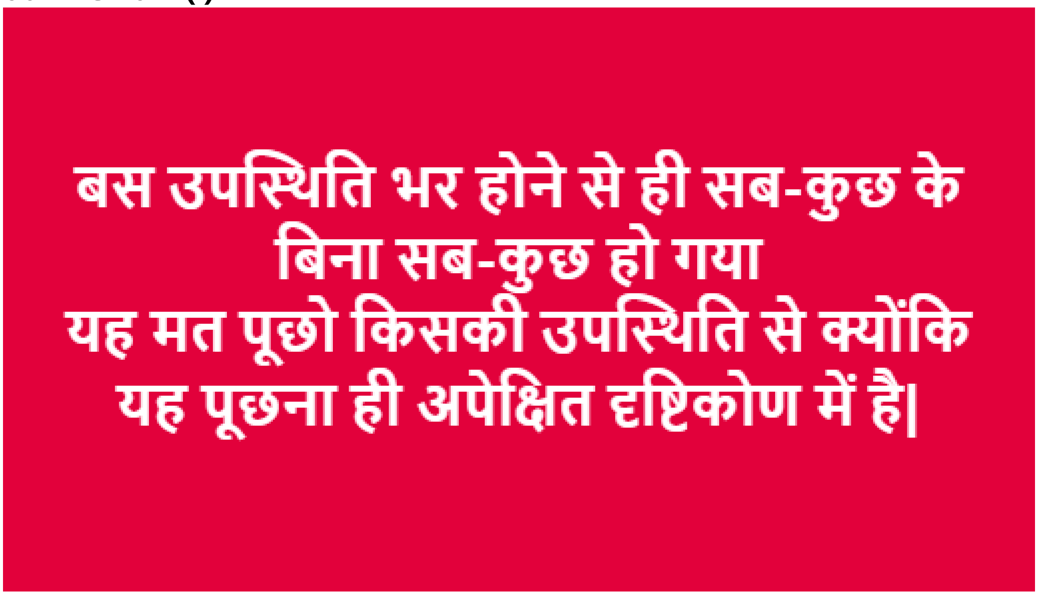

06 DEC 2024(ii)

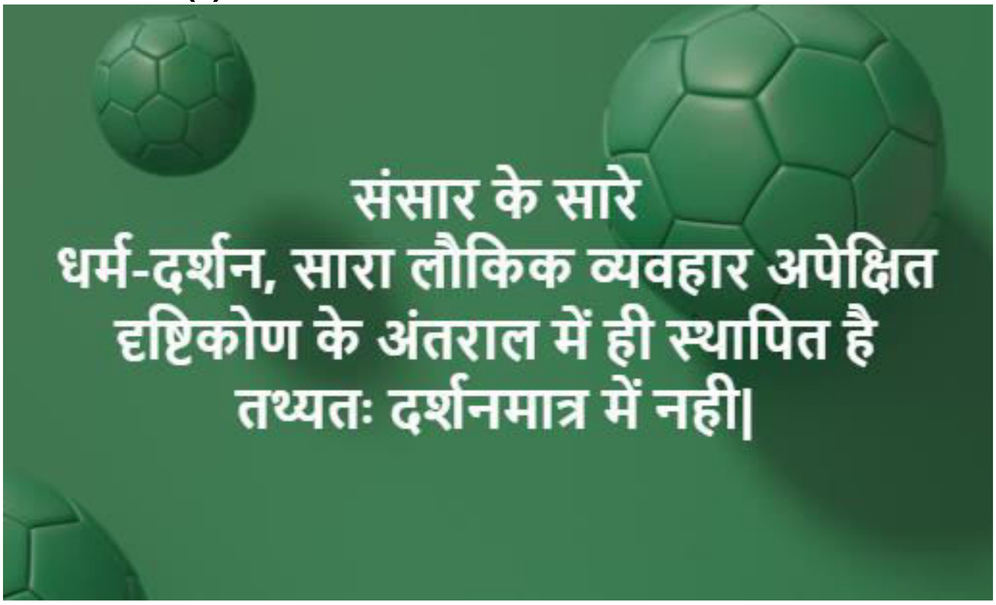

06 DEC 2024(iii)

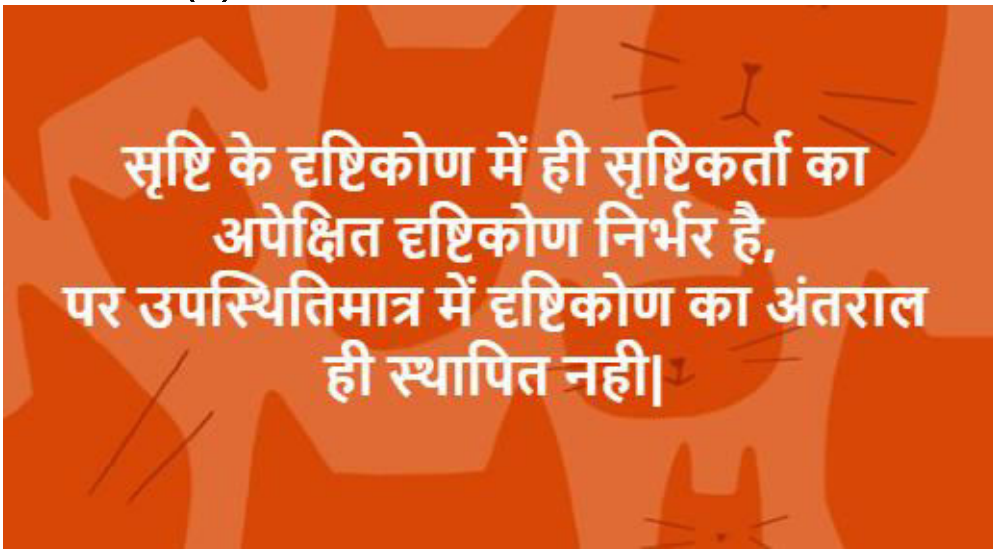

06 DEC 2024(iv)

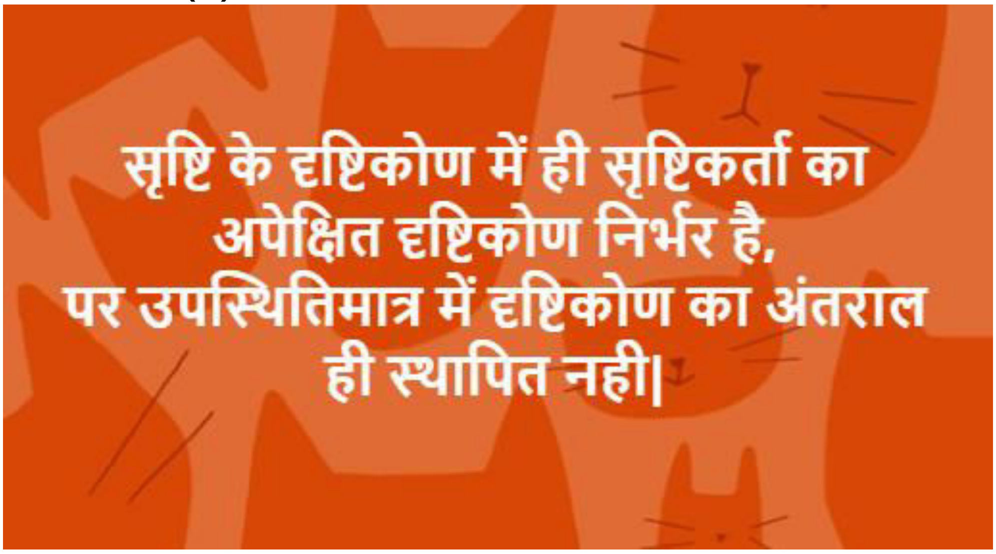

06 DEC 2024(v)
ज्ञानमात्र के निमित्त<निमित्तमात्र बस उपस्थित भर होने के अर्थ में ही तुम्हारा अपना परिचय है,
इसके अतिरिक्त जो भी तुम्हारा परिचय स्थापित है,
नाम स्थापित है, पहचान स्थापित है सब आरोपित दृष्टिकोण में है, मिथ्यादृष्टि में है,
ज्ञानमात्र से इतर जो कुछ भी है वह सब आरोपित दृष्टिकोण में है,
ज्ञानमात्र से इतर होते ही सापेक्षिक दबाव स्वरूप आरोपित दृष्टिकोण स्थापित हो जाता है,
चूँकि सारी समस्या आरोपित दृष्टिकोण स्थापित होने पर है इसलिए ज्ञानमात्र से इतर होते ही समस्या शुरू हो जाती है,
कोई अल्लाह कहता है, कोई ईश्वर कहता है,
कोई राम कहता है, कोई रहीम कहता है, कोई कुछ और कहता है<यह सब सापेक्षिक दबाव के वशीभूत अपेक्षित सांप्रदायिक दृष्टिकोण है,
सारा मतभेद, सारा विरोधाभास, सारा द्वेषभाव,
सारा वैमनस्य, लड़ाई-झगड़ा अपेक्षित दृष्टिकोण स्थापित होने से है<सांप्रदायिक दृष्टिकोण स्थापित होने से है अन्यथा ज्ञानमात्र में कोई मतभेद, कोई विरोधाभास है ही
नही,
ध्यान रहे प्रज्ञानं ब्रह्म कहना भी 'ऐसा है' के अपेक्षित दृष्टिकोण में है,
और ज्ञान कहना भी ज्ञाता-ज्ञेय की अपेक्षा से अपेक्षाकृत दृष्टिकोण में ही है,
इसलिए प्रज्ञानं ब्रह्म भी नही, ज्ञान (अपेक्षाकृत ज्ञान) भी नही अपितु ज्ञानमात्र की पूर्णता कहने में ही संकेत पूर्ण होता है,
ज्ञानमात्र की पूर्णता में मध्य का अंतराल नही होने से अपेक्षाकृत दृष्टिकोण स्थापित नही होता....
_ज्ञानमात्र कहना, दर्शनमात्र कहना,
उपस्थितिमात्र कहना सम्यग् संकेतार्थ मार्ग के दृष्टिकोण से आवश्यक है अन्यथा मार्ग सिद्ध नही होता....
_तथ्यतः दर्शनमात्र के निमित्त ही तथ्यतः निभ्रांत यथार्थ स्पष्टता है,
अतः दृष्टिकोण-विशेष से अनिमित्त हो दर्शनमात्र के निमित्त रहो,
आत्म-अनात्म,द्वैत-अद्वैत आदि अपेक्षित दृष्टिकोण से सावधान होना बहुत ही आवश्यक है,
जो भी अपेक्षित दृष्टिकोण से अनिमित्त तथ्यतः दर्शनमात्र के निमित्त है<उसकी गरिमा अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत, शुद्धाद्वैत, द्वैत, त्रैत आदि मतों के संस्थापकों से ऊपर है, लोकदृष्टि में प्रतिष्ठित राम,कृष्ण आदि से भी ऊपर है,
लोकदृष्टि से अनिमित्त लोकोत्तर दर्शनमात्र के निमित्त रहो...
जो भी अनुत्तर सम्यग् सद्धर्म की शरण में आ जाता है उसे गोवर्धन आदि किसी भी मठ, व्यास आदि किसी भी पीठ आदि के अंतर्गत नही रहना पड़ता है, बल्कि उसकी गरिमा उनसे ऊपर है.......
स्थापित धर्मों से अनिमित्त अपौरुषेय अकृत्रिम् सम्यग् सनातन ऋत् सद्धर्म का अनुशासन ही ग्रहण होना चाहिए तभी सही अर्थ में कल्याण है|
क्रमशः

09 DEC 2024(i)

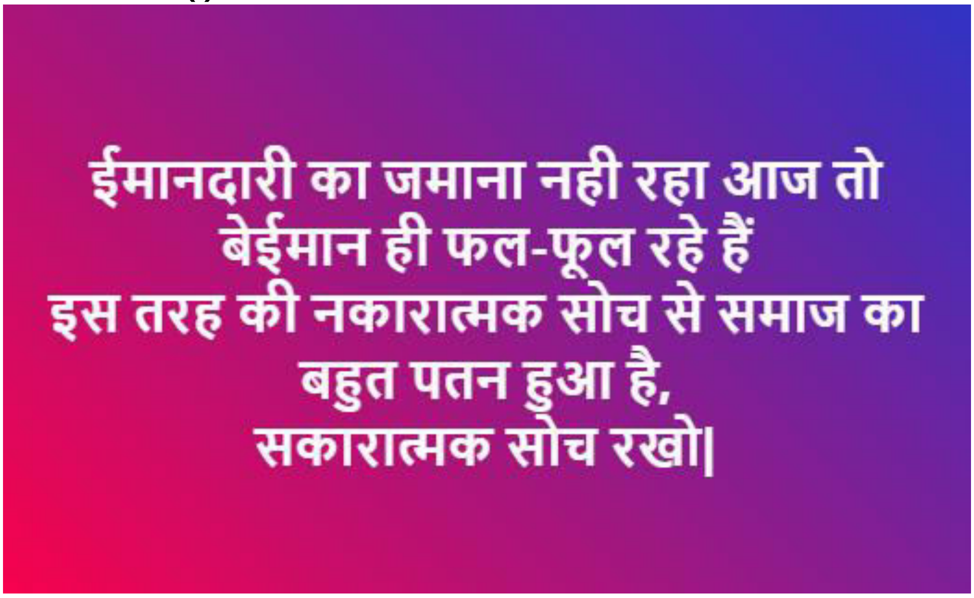

09 DEC 2024(ii)

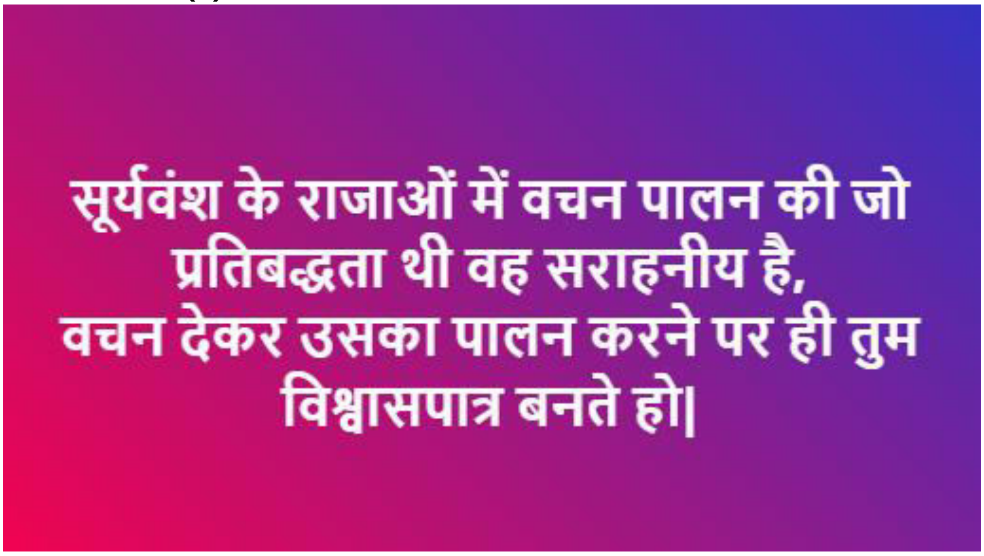

09 DEC 2024(iii)

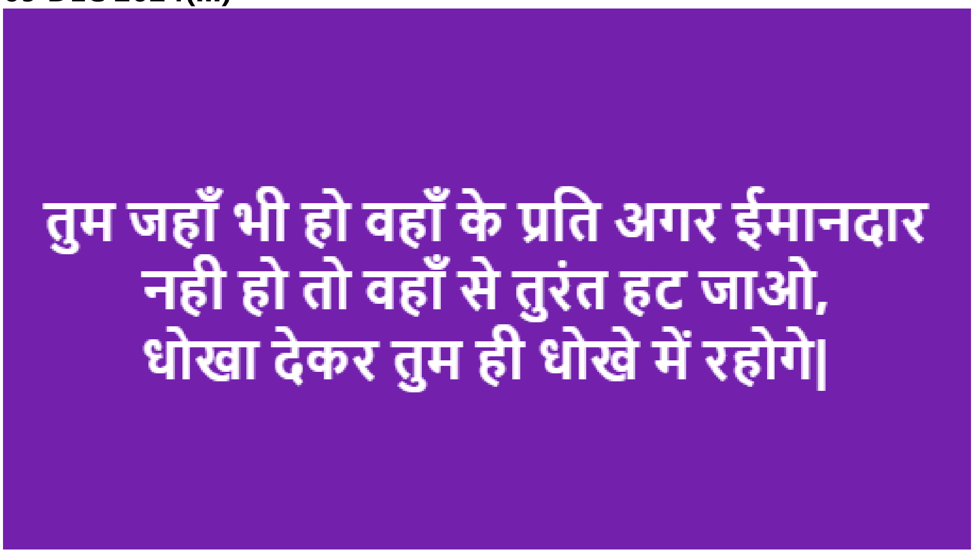

09 DEC 2024(iv)

सामान्यतः जिसे वर्तमान कहा जाता है असल में वह समानांतर क्रम में बीतते हुए समय के साथ तादात्म्यता का भ्रम है|

09 DEC 2024(v)

नासिकाग्र की ठीक केंद्रीय सीध में ही सम्पूर्णतः ब्रह्मांड का केंद्र है,
जहाँ जीवन-जगत की सच्चाई स्पष्ट है|

09 DEC 2024(vi)

यद्यपि 'ईश्वर' अपेक्षित दृष्टिकोण का सत्य है, पर भ्रान्ति भंग होगी तथ्यतः यथार्थ स्पष्टता के निमित्त दर्शनमात्र में ही....

09 DEC 2024(vii)
अपेक्षित दृष्टिकोण के अंतराल पर ही सम्पूर्ण सापेक्षिक संबंध<सम्पूर्ण सापेक्षिक प्रपंच स्थापित है,
सृष्टि के अपेक्षित दृष्टिकोण पर ही सृष्टिकर्ता का अपेक्षित दृष्टिकोण निर्भर है,
अपेक्षित दृष्टिकोण के तल पर ही ईश्वर की मर्यादा प्रतिष्ठित है,
पर आश्चर्य कि दर्शनमात्र में तो अपेक्षित दृष्टिकोण के लिए अंतराल ही नही है,
अपेक्षित दृष्टिकोण से अनिमित्त दर्शनमात्र के निमित्त होने पर ही पूर्णतः निभ्रान्त परिस्पष्टता है,
जो कुछ भी है यह-सब दृष्टि का ही भ्रम है,
नासिकाग्र की ठीक केन्द्रीय सीध में दर्शनमात्र के निमित्त दृष्टि का पूर्णतः सिमटाव होते ही दृष्टि के साथ ही सृष्टि का भी भ्रम भंग हो जाता है,
चूँकि अपेक्षित दृष्टिकोण में ही दृष्टि के संयम की, दृष्टि के सिमटाव की साधना हो पाती है,
इसलिए दृष्टि का सिमटाव होना भी अपेक्षित दृष्टिकोण का भ्रम ही है,
अपेक्षित दृष्टिकोण भंग होते ही>दर्शनमात्र स्पष्ट होते ही सिमटाव का यह भ्रम भी भंग हो जाता है,
यद्यपि भले ही दृष्टि के संयम की, दृष्टि के सिमटाव की साधना अपेक्षित दृष्टिकोण में होती है पर अपेक्षित दृष्टिकोण में ही दृष्टि के संयम की, सिमटाव की साधना का निमित्त पूरा होने पर अंततः अपेक्षित दृष्टिकोण भंग होता है,
इसलिए अपेक्षित दृष्टिकोण के रहते दृष्टि-संयम का, दृष्टि के सिमटाव का साधनात्मक दृष्टिकोण से बहुत ही अधिक महत्व है,
दृष्टि का संयम पूरा हुए बिना, दृष्टि का सिमटाव पूरा हुए बिना कदापि अपेक्षित दृष्टिकोण भंग नही हो सकता,
निभ्रान्ततः दर्शनमात्र स्पष्ट नही हो सकता,
अपेक्षित दृष्टिकोण भंग होते ही सम्पूर्ण मिथ्यादृष्टि भंग हो जाती है, सम्पूर्ण भ्रान्ति भंग हो जाती है,
कोई भी दिग्भ्रम, कोई भी संशय, कोई भी अज्ञान, कोई भी बंधन, कोई भी दुःख-क्लेश नही रह जाता है,
साधनाकाल में जब दृष्टि का सिमटाव होता है तब उसी के साथ ही साथ उसके अनुपात का आकाश (स्थान)-समय भी सिमटता जाता है,
उदाहरण के लिए १० सेकेंड बीतने में तुम्हें सामान्यतया १० सेकेंड की ही प्रतीक्षा करनी पड़ती है,
पर अगर तुम्हें १० सेकेंड के लिए १ सेकेंड की ही प्रतीक्षा करनी पड़ जाए,
और १ सेकेंड की प्रतीक्षा के अनुपात में १० सेकेंड का समय सिमट जाए,
इतना ही नही १० सेकेंड के लिए १ सेकेंड के दसवें, सौवें, हजारवें, लाखवें, करोड़वें, अरबवें, खरबवें भाग से भी कम समय की प्रतीक्षा करनी पड़ जाए तो यह तुम्हारे लिए बहुत ही हैरानी की बात होगी,
दृष्टि के सिमटाव के साथ आकाश-समय का सिमटाव होने पर साधक को ऐसी ही हैरानी होती है,
अहो वह भी क्या ही आश्चर्य है कि जिस आकाश-समय में यह सम्पूर्ण व्यावहारिक जगत स्थित है साधनाकाल में दृष्टि के सिमटाव की गति के साथ वह आकाश-समय प्रकाश की गति से खरबों-खरबों-खरबों गुना से भी अधिक गति से सिमटता जाता है,
खरबों-खरबों-खरबों प्रकाश वर्ष की दूरी एक सेकेंड के खरबवें-खरबवें-खरबवें भाग से भी कम समय में सिमट जाती है,
शांकर-भाष्य का अद्वैत<निर्विशेष ब्रह्म हो,
चाहे श्री-भाष्य का विशिष्टाद्वैत<सविशेष ईश्वर हो मिथ्यादृष्टि का यह भ्रम भंग तो होता ही है साथ ही
जिससे यह मिथ्यादृष्टि का भ्रम हो रहा है वह भ्रम भी भंग होता है,
और इस तरह सम्पूर्ण भ्रमजाल भंग हो जाता है,
गीताकार (कृष्ण) का यह कहना कि ...यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम...<यह ऋत् असंगत है जो अपेक्षित दृष्टिकोण के मिथ्यादृष्टि की भ्रान्ति में है,
क्योंकि कहीं भी गति होने पर आने के लिए दबाव बनना स्वाभाविक है जहाँ हर दबाव के आरंभ में दबाव का आरंभ स्वाभाविक है,
गौतम बुद्ध का कहना कि 'न आना-न जाना-न ठहरना'<यह निर्वाण का आयतन है,
जो कृष्ण के अपेक्षित दृष्टिकोण की अपेक्षा सही दृष्टिकोण है,
पर गौतम बुद्ध का यह कहना निषेधात्मक दृष्टिकोण में अपेक्षाकृत सिद्ध है<जिससे बौद्ध समाज दिग्भ्रमित है.....
अतः बुद्ध की आधारीय पूर्णता में जगदीश्वरम् का अपौरुषेय ऋत् अनुसार सम्यग् आप्त प्रमाणित हो यह कहना 'न आना-न जाना=ठहरने की>ठहर जाने की पूर्णता'<इस संकेत में सम्यग् संकेतार्थ मार्ग भी सिद्ध होता है, सम्यग् संकेतार्थ लक्ष्य भी सिद्ध होता है....
विदित रहे कि पूर्व कल्प के अनुसार ही इस कल्प में भी जगदीश्वरम् द्वारा अनुत्तर सम्यग् सद्धर्म का उपदेश हो रहा है...

क्रमशः

11 DEC 2024(i)

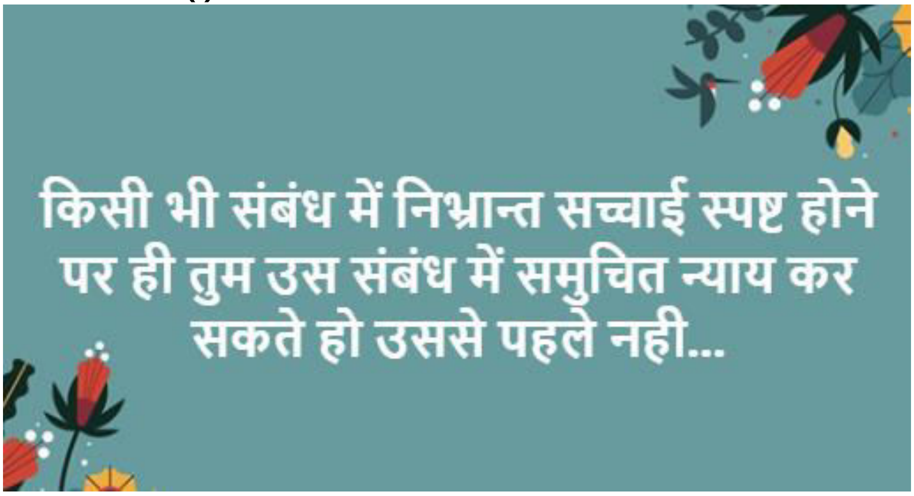

11 DEC 2024(ii)

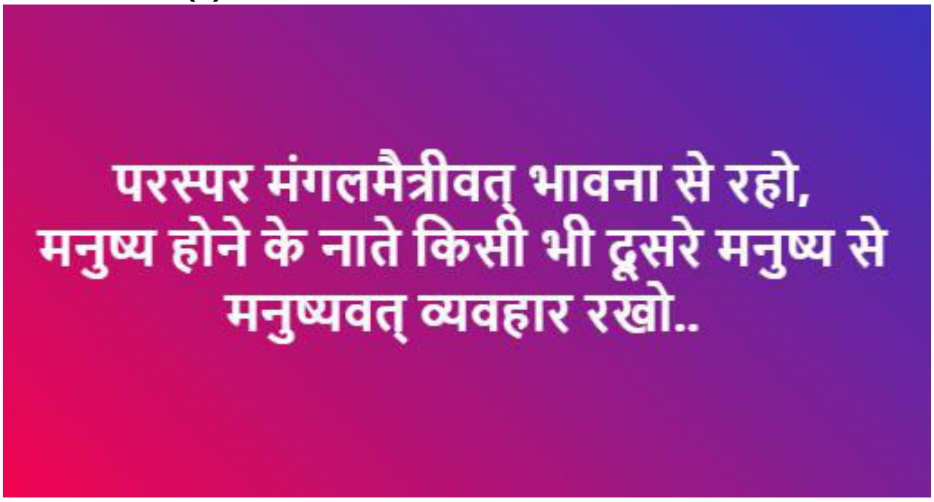

11 DEC 2024(iii)

11 DEC 2024(iv)
ध्यान रहे यथार्थतः सत्य स्पष्टता में 'यह सत्य है' का अपेक्षित दृष्टिकोण ही बाधा है,
अपेक्षित आग्रह के रहते कदापि तथ्यतः यथार्थ सत्य स्पष्ट नही हो सकता,
'ऐसा होना चाहिए' यह अपेक्षित आग्रह 'तथ्यतः यथार्थतः सत्य स्पष्टता' में बाधा है,
सत्य जैसा है वैसा ही स्पष्ट हो जरा भी अन्यथा में नही<यही मांग होनी चाहिए,
लोक में नाना सापेक्षिक मतों का जाल है,
मूर्ख जन ही उनमें आबद्ध हो यथार्थतः सत्य स्पष्टता से वंचित रहते हैं,
यथार्थतः सत्य स्पष्टता के निमित्त यथार्थतः सत्य ओर ही पूर्णतः समर्पित रहो,
तब निश्चित ही यथार्थतः सत्य ओर से निभ्रान्त स्पष्टता है,
जब तक पूर्णतः सम्यग् यथार्थ स्पष्टता के निमित्त पूर्णतः सम्यग् समर्पण नही हो जाता तब तक अपेक्षित आग्रह बना रहता है, अपेक्षित दृष्टिकोण बना रहता है,
अपेक्षित दृष्टिकोण ही दुःखद बंधन का हेतु है|

11 DEC 2024(v)
सभी साधकों को सूचित किया जाता है कि १३ दिसंबर से ४० दिवसीय ध्यान-शिविर का आयोजन है,
देखो सांसारिक काम-काज तो चलता ही रहेगा,
व्यक्ति मर जाता है पर सांसारिक कार्य कभी पूरा नही हो पाता अधूरा ही रह जाता है,
इसलिए सांसारिक काम-काज की चिंता मत करो,
अपने उद्धार हेतु समय निकालो और ध्यान-शिविर में भाग लो,
यह आयोजन तुम्हारे उद्धार के लिए स्वर्णिम अवसर है,
ऐसा दुर्लभ अवसर बार-बार नही आता,
जो भी इस ध्यान-शिविर में भाग लेगा अवश्य ही उसे बाह्य तथा आंतरिक लाभ होगा,
इस ध्यान-शिविर से ही विश्व का भविष्य तय होगा,
और विश्व के लिए नयी रूपरेखा बनेगी,
१ जनवरी से लेकर १५ जनवरी के मध्य का काल
ध्यान के लिए स्वर्णिम काल है,
इस काल में हजारों वर्षों के बाद सौर ऊर्जा का भी योग बन रहा है,
इसमें ऋद्धि-सिद्धि तथा दिव्यदृष्टि का योग है,
जो मोदी,योगी,पुतिन,जिनपिंग,ट्रंप आदि नही कर सकते वह तुम कर सकते हो,
निश्चित ही जो भी इस ध्यान-शिविर में भाग लेगा वह सौभाग्यशाली है,
कुछ साधक हैं जिन्हें ध्यान-शिविर में भाग लेने के लिए कहा गया पर उन्होंने कोई उत्साह नही दिखाया,
जो कोई भी अनुशासनहीन है, अवज्ञाकारी है, दुराग्रही है निश्चित ही उसका भविष्य अंधकारमय है,

जो सद्धर्म अनुशासन को शोषण कहता है, गुलामी कहता है उसे तो निश्चित ही दुनिया का प्रताड़ित गुलाम बन के रहना है,
सद्धर्म अनुशासन में ही तुम परिपक्व होते हो, निखरते हो.....
_ध्यान-शिविर तुम्हारे कल्याण के लिए है,
मतदान शर्मा का ८६ वर्ष की आयु में भी ध्यान-शिविर के लिए उत्साह देखने योग्य है,
भारतीय सेना में कार्यरत कर्नल अनिल पांडे का भी उत्साह देखने योग्य है जो छुट्टी लेकर ध्यान-शिविर में भाग लेने के लिए पहले से ही उत्साहित है,
निखिल गोयल का भी उत्साह देखने योग्य है जो संयुक्त राज्य अमेरिका से यहाँ ध्यान-शिविर में भाग लेने के लिए उत्साहित है,
धारा सिंह, जसपाल, देवेंद्रपाल, आशीष गुप्ता, सुभाष शर्मा, राकेश कुमार, परषोत्तम कुमार, पवनेश कुमार, शेर सिंह, राय सिंह आदि समर्पित साधक भी काफी उत्साहित हैं,
स्थानीय लोग भी आचरणशील, चरित्रवान, ईमानदार तथा कर्तव्यनिष्ठ हैं,
आगे जब पूरे विश्व में सद्धर्म अनुशासन लागू होगा,
तब निश्चित ही ईमानदार लोगों को योग्यतानुसार कार्यभार दिया जाएगा,
जिनका महत्व मोदी, योगी, ट्रंप, जिनपिंग, पुतिन आदि से अधिक होगा,
अब मोदी-योगी आदि का समय जाने वाला है,
अब नया ही युग आने वाला है,
नयी ही व्यवस्था आने वाली है,
सम्यग् भगवान् के सद्धर्म अनुशासन में सिद्धों का शासन आने वाला है,
सिद्ध ही विश्व धर्म-संसद के सांसद होंगे,
पूरब से प्रकाश उठेगा देखते-देखते वह पूरे विश्व में छा जाएगा,
एकाएक आकाश में महिमामय पुरुष का चिन्ह प्रगट होगा,
तभी वह अपनी महिमा में सबके समक्ष उपस्थित होगा हर एक आँख उसे देखेगी...
किसी का किसी से वैर नही रह जाएगा,
इतना अमन-चैन होगा कि उसके सद्धर्म शासन में शेर-बकरी एक ही घाट में पानी पियेंगे....

11 DEC 2024(vi)

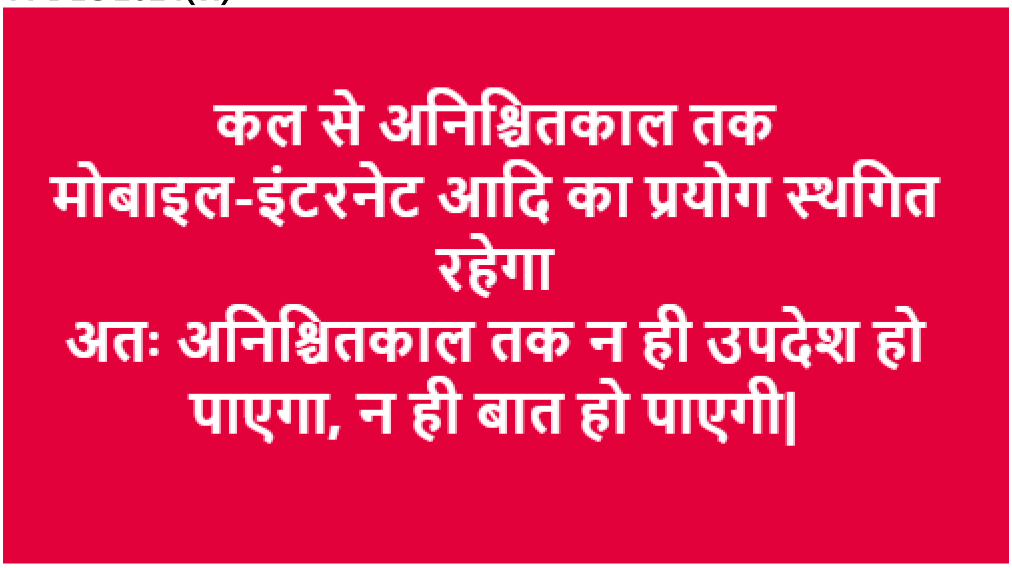

11 DEC 2024(vii)
_साधारण जन समुदाय अपेक्षित दृष्टिकोण के निम्न धरातल में ही जीने के लिए बाध्य है,
दर्शनमात्र की उत्तुंग ऊँचाई तक कोई विरला ही पहुँच पाता है,
दर्शनमात्र अर्थात् बस दिखना भर.....
_दर्शनमात्र में अपनी तरफ से देखने का दृष्टिकोण नही होता,
(तथ्यतः बस दिखने भर के निमित्त समर्पण पूर्ण होने पर अपनी तरफ से दृष्टिकोण स्थापित नही होता),
अपेक्षित दृष्टिकोण में 'यह सत्य है' की भ्रान्ति होना स्वाभाविक है,

निभ्रान्त तथ्यतः स्पष्टता में 'यह सत्य है' का अपेक्षित दृष्टिकोण बहुत बड़ी बाधा है,
ध्यान रहे तथ्य से कोई भ्रान्ति नही है,
तुम अपने ही आरोप के कारण अपनी ही आरोपित-दृष्टि में भ्रमित हो,
तुम अपने ही द्वारा किए गए आरोप से अपनी ही आरोपित-दृष्टि में स्वसम्मोहनवश दिग्भ्रमित हो,
ऐसा है-वैसा है<आरोप करने से सावधान रहो,
जैसा है<वैसा ही निभ्रान्ततः स्पष्ट हो इस निमित्त से यथा सहज-यथा सजग स्थिर रहो,
क्रिया के प्रतिक्रियात्मक दबाव में गिरना स्वाभाविक है,
क्या ज्ञात हो रहा है-किसे ज्ञात हो रहा है<यह आरोपित क्रिया है,
'बस ज्ञात भर होना'...आरोपित क्रिया नही है,
बस ज्ञात भर होने में (बस सिर्फ मालूम भर होने में) ठहरना हो जाए फिर गिरना नही होगा,
सारी भ्रान्ति ज्ञाता-ज्ञेय अर्थात् किसे ज्ञात हो रहा है-क्या ज्ञात हो रहा है<इसे लेकर ही है,
'बस ज्ञात भर होने' में ठहरने पर क्या ज्ञात हो रहा है-किसे ज्ञात हो रहा है<इस संबंध में निभ्रान्त सत्यता स्पष्ट हो जाती है....

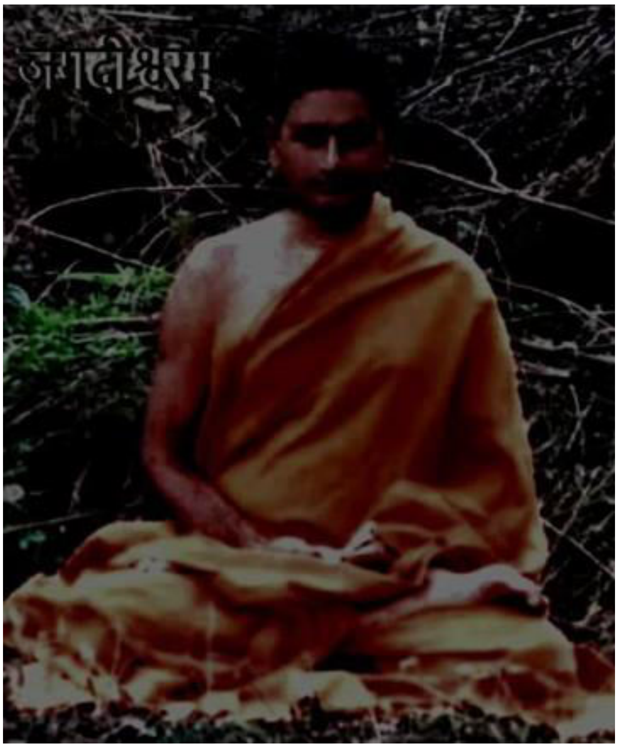

11 DEC 2024(viii)

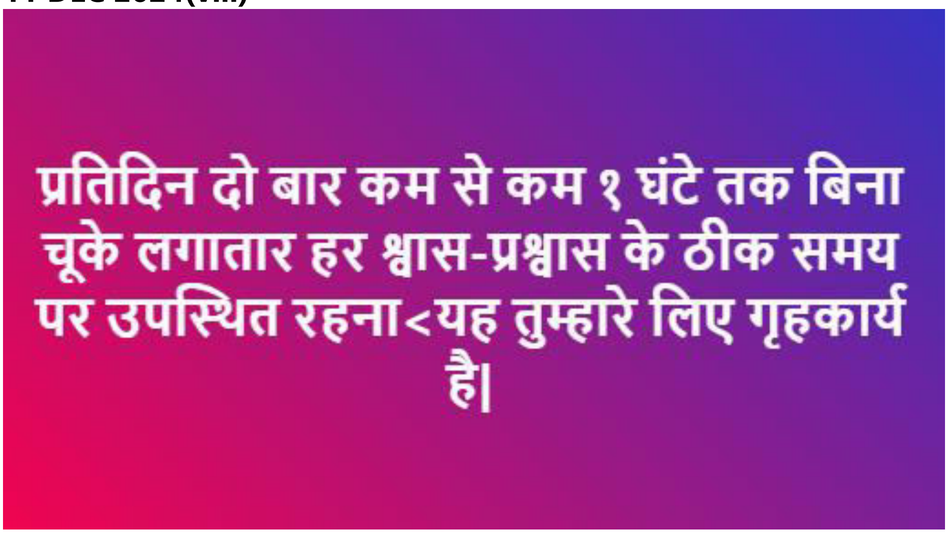

11 DEC 2024(ix)

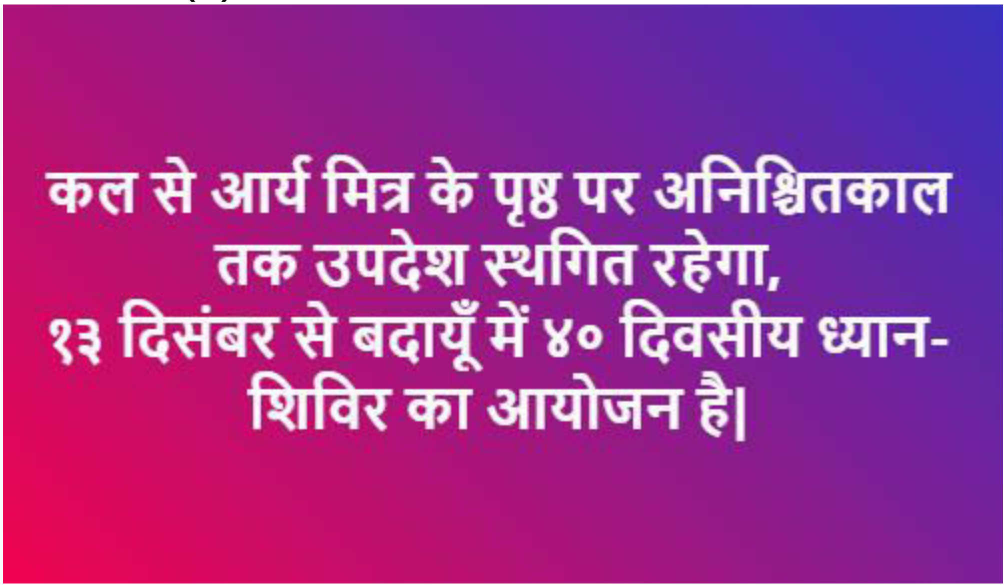

11 DEC 2024(x)

_सामान्यतः जिसे वर्तमान कहते हैं<वह समानांतर क्रम में बीतते हुए समय के साथ तादात्म्यता का भ्रम है,
बीतते हुए समय के हर समानांतर क्रम का पूर्णतः अतिक्रमण होने पर वर्तमान की यह भ्रान्ति भंग हो जाती है,
भले ही तादात्म्यतावश वर्तमान की भ्रान्ति हो रही है पर ध्यान रहे वर्तमान में उपस्थिति का नैमित्तिक मापदंड पूरा किए बिना वर्तमान की भ्रान्ति भंग नही हो सकती,
इसलिए प्रमादरहित हो नासिकाग्र की आधारीय सीध से सीधे हो सीधे से सीधे वर्तमान की सीध में संतुलनपूर्वक स्थिर हो उपस्थित होते जाना है,
जब तक श्वास से भी सीधे की सीध स्पष्ट न हो जाए तब तक श्वास प्रति श्वास निरंतर हर श्वास के ठीक समय पर उपस्थित होते रहना है,
जब तक सबसे सीधे वर्तमान की सीध स्पष्ट न हो जाए तब तक उत्तरोत्तर सीधे से सीधे हो संभलते जाना है,
नासिकाग्र के ठीक केंद्र में समय का पूर्णतः सिमटाव होने पर भूत-भविष्य के साथ ही उसके मध्य के अंतराल<वर्तमान की भ्रान्ति भंग हो जाती है,
जिस अत्यधिक सघनता वाले सूक्ष्म बिंदु में महाविस्फोट की घटना हुई<उस सूक्ष्म बिंदु में भी मध्य का अंतराल है जो विज्ञान अर्थात् चेतना का आयाम है,
अरूप पदार्थ dark matter जो चेतना तथा रूप पदार्थ matter के मध्य की कड़ी है,
उस अरूप पदार्थ dark matter के बीतने पर ही रूप पदार्थ matter के सबसे सूक्ष्म भाग के उत्पन्न होने के लिए दबाव बना,
उसी अरूप पदार्थ dark matter के दबाव में अत्यधिक सघन व सूक्ष्म रूप पदार्थ matter में विस्फोट हुआ और यह ब्रह्मांड अस्तित्व में आया,
अरूप पदार्थ dark matter ही रूप पदार्थ matter के द्रव्यमान के लिए आधार है न कि कथित गाॅड पार्टिकल हिग्स बोसोन कण, और न ही हिग्स फील्ड,
प्रोटाॅन में स्थित २ अप क्वार्क तथा १ डाउन क्वार्क और न्यूट्राॅन में स्थित २ डाउन क्वार्क तथा १ अप क्वार्क के माध्यमिक संतुलन का आधार भी अरूप पदार्थ dark matter ही है,
साधक ध्यान में रूप आयतन को पार कर अरूप आयतन में प्रवेश करता है, फिर अरूप पदार्थ dark matter के आयतन को पार कर विज्ञान आयतन में प्रवेश करता है,
तभी फिर अंततः विज्ञान आयतन अर्थात् चेतना के आधार 'पूर्णतः अक्रिय विशुद्ध ज्ञानमात्र' में स्थिति हो पाती है<यही निःश्रेयस मोक्ष की स्थिति है,
विदित रहे जैसे पदार्थ तथा ऊर्जा के मध्य सापेक्षिक संतुलन है,
इसी तरह अरूप पदार्थ dark matter और अरूप ऊर्जा dark energy के मध्य सापेक्षिक संतुलन है,
मनुष्य जाति के इतिहास में दिव्यदूत ने मूसा को सिनाई पर्वत पर अरूप ऊर्जा dark energy का आंशिक प्रभाव दिखाया भी था,
अरूप ऊर्जा के समक्ष खरबों परमाणु बमों का प्रभाव भी फीका है,

विदित रहे आकाश आयतन के पार विज्ञान आयतन है, और विज्ञान आयतन का अवलंबित आधार अव्यक्त बीज संस्कार है,
और अव्यक्त बीज संस्कार का कारण अविद्या है,
दबाव कारण का होता है,
ध्यान रहे अविद्या कारण है आधार नही,
अपौरुषेय ज्ञानमात्र ही सदा-सनातन,नित्य,स्थिर आधार है,
चूँकि ज्ञानमात्र अक्रिय है इसलिए ज्ञानमात्र में प्रतिक्रियात्मक दबाव नही है,
ज्ञानमात्र न किसी से उत्पन्न हुआ है, न ही ज्ञानमात्र से कुछ उत्पन्न हुआ है,
अविद्या ही उत्पन्न होने का कारण है,
अपौरुषेय उपस्थितिमात्र की सदा-सनातन,नित्य,स्थिर आधारीय भूमिका में ज्ञानमात्र सहज ही है,
कार्य-कारण की अनुशासनबद्ध संतुलित सुव्यवस्था का आधार अपौरुषेय ज्ञानमात्र ही है,
कर्म-फल की सम्यग् न्यायपूर्ण सुव्यवस्था का आधार अपौरुषेय ज्ञानमात्र ही है,
चूँकि तुम तुलनात्मक दृष्टिकोण में ही समझने के लिए विवश हो इसलिए तुम्हारी तुलनात्मक बुद्धि को समझाने के लिए अपेक्षाकृत तुलनात्मक विवेचन करना पड़ता है,
ज्ञानमात्र की तुलना में मनुष्य का बुद्धिगत् ज्ञान नगण्य है,
अपौरुषेय उपस्थितिमात्र की तुलना में अपेक्षित दृष्टिकोण में स्थापित कल्पित ईश्वर अथवा ब्रह्म आदि का कोई अर्थ नही...
अपौरुषेय उपस्थितिमात्र के आधार पर ही ज्ञानमात्र के निमित्त<निमित्त की निमित्तमात्र उपस्थिति भर की भूमिका है...

****